हिन्दी परामर्श समिति ग्रन्थमाला—१

भारतीय ज्योतिष का इतिहास

लेखक
गोरख प्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)
रीडर, गणित विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

प्रकाशन ब्यूरो
उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ

प्रथम सस्करण
१९५६

मूल्य
चार रुपये

मुद्रक
टेकनिकल प्रेस प्रयाग

प्रकाशकीय

भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के पश्चात यद्यपि इस देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है, किन्तु इससे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रो के विशेष उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की कमी नही आती। हमे सविधान मे निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राज कार्यो मे व्यवहृत करना है, उसे उच्चतम शिक्षा के लिए भी परिपुष्ट वनाना है। इसके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी में वाङ्मय के सभी अवयवो पर प्रमाणित ग्रन्थ हो और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध न रह जाय।

इसी भवना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने अपने शिक्षा विभाग के अन्तर्गत साहित्य को प्रोत्साहन देने और हिन्दी के ग्रन्थो के प्रणयन की एक योजना परिचालित की है। शिक्षा विभाग की अवधानता में एक हिन्दी परामर्श समिति की स्थापना की गयी है। यह समिति विगत वर्षों में हिन्दी के ग्रन्थो को पुरस्कृत करके साहित्यकारो का उत्साह वढ़ाती रही है और अव इसने पुस्तक प्रणयन का कार्य आरम्भ किया है।

समिति ने वाङ्मय के सभी अगो के सम्वन्ध में पुस्तको का लेखन और प्रकाशन कार्य अपने हाथ में लिया है। इसके लिए एक पच वर्षीय योजना वनायी गयी है जिसके अनुसार ५ वर्षों में ३०० पुस्तको का प्रकाशन होगा। इस योजना के अन्तर्गत प्राय वे सव विपय ले लिये गये है जिन पर ससार के किसी भी उन्नतिशील साहित्य में ग्रन्थ प्राप्त है। इस वात का प्रयत्न किया जा रहा है कि इनमें से प्राथमिकता उसी विषय अथवा उन विपय में दी जाय जिनकी हिन्दी में नितान्त कमी है।

प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशन का कार्य आरम्भ करने का यह आशय नही है कि व्यवसाय के रूप मे यह कार्य हाथ में लिया गया है। हम केवल ऐसे ही ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहते हैं जिनका प्रकाशन कतिपय कारणो से अन्य स्थानो से नहीं हो पाता। हमारा विश्वास है कि इस प्रयास को सभी क्षेत्रो से सहायता प्राप्त होगी और भारती के भडार को परिपूर्ण करने में उत्तर प्रदेश का शासन भी किंचित योगदान देने में समर्थ होगा।

भगवती शरण सिंह
सचिव
हिन्दी परामर्श समिति

भूमिका

यह पुस्तक लोकप्रिय साहित्य की श्रेणी की है। इसमें निजी नवीन खोजो का या वर्तमान ज्ञान के सभी व्योरो का विवरण देने की चेष्टा नही की गयी है। उद्देश्य यह रहा है कि पाठक विषय को सुगमता से समझ सके और सब महत्त्वपूर्ण बातो को जान सके। मुझे आशा है कि ज्योतिष न जानने वाले भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकेंगे, क्योकि ज्योतिष के वे पारिभाषिक शब्द जो प्रयुक्त हुए है सरल रीति से समझा दिये गये है।

इस पुस्तक के प्रथम सात अध्याय लिखने मे शकर बालकृष्ण दीक्षित के अपूर्व मराठी ग्रथ "भारतीय ज्योतिषशास्त्र अथवा भारतीय ज्योतिषशास्त्राचा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास" से विशेष सहायता मिली है। ज्योतिष के प्रकाड विद्वान स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने मेरे आग्रह से मेरी पुस्तक "सरल विज्ञान-सागर" के लिए एक लेख भारतीय ज्योतिष पर लिखा था। मैने उसका भी विशेष उपयोग किया है। अधिकाश सस्कृत श्लोको के जो अर्थ यहाँ छापे गये है उनके लिए मै श्री गगा प्रसाद उपाध्याय, श्री क्षेत्रेशचद्र चट्टोपाध्याय अथवा डाक्टर आद्या प्रसाद मिश्र का ऋणी हूँ। प्रूफ-सशोधन मे डाक्टर कृपाशकर शुक्ल ने बडी सहायता की है, जिसके लिए मै उनका आभारी हूँ। श्री के महोदय की "जयसिह की ज्योतिष वेधशालाएँ" नामक अँग्रेजी पुस्तक से मैने कुछ चित्र लिये है और मै उनका अनुगृहीत हूँ।

गोरख प्रसाद

विषय-सूची

अध्याय १

प्रारम्भिक बातें

ज्योतिष की महत्ता

भारतीय ज्योतिष का प्राचीनतम इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ मे छिपा हुआ है। केवल ऋग्वेद आदि अति प्राचीन ग्रथो के स्फुट वाक्याशों से आभास मिलता है कि उस समय ज्योतिष का ज्ञान कितना रहा होगा।

ज्योतिष का अध्ययन अनिवार्य था। जगली जातियो में भी ज्योतिष का थोडा-बहुत ज्ञान रहता ही है क्योकि इसकी आवश्यकता प्रति दिन पडा करती है; इसलिए आर्यो के ज्योतिष-ज्ञान का समुन्नत दिशा मे पहुँचना आश्चर्य की बात नहीं है। ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन उस समय भी होता था इसका प्रमाण यह है कि यजुर्वेद में 'नक्षत्रदर्श' (=ज्योतिषी) की चर्चा है[1]। छादोग्य उपनिषद में नक्षत्रविद्या का उल्लेख है[2]। ज्योतिष अति प्राचीन काल से वेद के छ. अगो मे गिना जाता रहा है[3]।

ज्योतिष के ज्ञान की आवश्यकता कृषको को भी पडती है और पुजारियो को भी। यो तो सभी को समय-समय पर ऐसी बातो के जानने की आवश्यकता पड़ जाती है जिसे ज्योतिषी ही बता सकता है, परन्तु कृषक विशेष रूप से जानना चाहता है कि पानी कब बरसेगा, और खेतो के बोने का समय आ गया या नहीं। पुजारी तो बहुत-सी बातें जानना चाहता है। प्राचीन समय मे साल-साल भर तक चलनेवाले यज्ञ हुआ करते थे और अवश्य ही वर्ष मे कितने दिन होते हैं, वर्ष कब आरम्भ हुआ, कब समाप्त होगा, यह सब जानना बहुत आवश्यक था।

[1] ३०।१०।

[2] ७।१।२; ७।१।४, ७।२।१, ७।७।१।

[3] आपस्तंब धर्मसूत्र, ४।२।८।१०।

आजकल पंचांग इतना सुलभ हो गया है और उसके नियम इतने सुगम हो गये हैं कि इसकी कल्पना ही प्राय असम्भव है कि अत्यन्त प्राचीन समय में क्या-क्या कठिनाइयाँ पड़ती रही होंगी। इसलिए इस प्रश्न पर विचार करना कि प्राचीनतम ज्योतिषी का वातावरण कैसा रहा होगा लाभदायक होगा।

समय की तीन एकाइयाँ

प्राचीनतम मनुष्य ने भी देखा होगा कि दिन के पश्चात रात्रि, रात्रि के पश्चात दिन होता है। एक रातदिन—ज्योतिष की भाषा में एक अहोरात्र और साधारण भाषा में केवल दिन—समय नापने की ऐसी एकाई थी जो मनुष्य के ध्यान के सम्मुख बरबस उपस्थित हुई होगी। परन्तु कई कामों के लिए यह एकाई बहुत छोटी पड़ी होगी। उदाहरणत, बच्चे की आयु कौन जोड़ता चलेगा कि कितने दिन की हुई। सौ दिन के ऊपर असुविधा होने लगी होगी।

सौभाग्यवश एक दूसरी एकाई थी जो प्राय इतनी ही महत्वपूर्ण थी। लोगों ने देखा होगा कि चन्द्रमा घटता-बढ़ता है। कभी वह पूरा गोल दिखायी पड़ता है, कभी वह अदृश्य भी रहता है। एक पूर्णिमा से दूसरी तक, या एक अमावस्या से दूसरी तक के समय को एकाई मानने में सुविधा हुई होगी। यह एकाई—एक मास या एक चान्द्र मास—कई कालों के नापने में सुविधाजनक रही होगी, परन्तु सबके नहीं। कुछ दीर्घ काल, जैसे बालक-बालिकाओं की आयु, बताने में मासों का उपयोग भी असुविधाजनक प्रतीत हुआ होगा इससे भी बड़ी एकाई की आवश्यकता पड़ी होगी।

परन्तु लोगों ने देखा होगा कि ऋतुएँ बार-बार एक विशेष क्रम में आती रहती हैं—जाड़ा, गरमी, बरसात, फिर जाड़ा, गरमी, बरसात, और सदा यही क्रम लगा रहता है। इसलिए लोगों ने बरसातों की संख्या बताकर काल-मापन आरम्भ किया होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वर्ष शब्द की उत्पत्ति वर्षा से हुई है, और वर्ष के पर्यायवाची शब्द प्राय सभी ऋतुओं से सम्बन्ध रखते हैं, जैसे शरद, हेमन्त, वत्सर, संवत्सर, अब्द, इत्यादि। शरद और हेमन्त दोनों का सम्बन्ध जाड़े की ऋतु से है, वत्सर और संवत्सर से अभिप्राय है वह काल जिसमें सब ऋतुएँ एक बार आ जायँ। अब्द का अर्थ जल देने वाला या बरसात है।

समय की एकाइयों में सम्बन्ध

कैसे तो वर्षों तक अहोरात्र, मास और वर्ष के सम्बन्ध को सूक्ष्म रूप से जाने बिना ही काम चल गया होगा, परन्तु जैसे-जैसे गणित का ज्ञान बढ़ा होगा जैसे-जैसे राजकाज में समय का ठीक-ठीक हिसाब वर्षों तक रखने की आवश्यकता पड़ी होगी, या अन्य-

लम्बे एक या अधिक वर्षो के यज्ञ होने लगे होंगे, तैसे-तैसे इन तीन एकाइयो के सम्बन्ध को ठीक-ठीक जानने की आवश्यकता तीव्र होती गयी होगी।

मनुष्य के दोनो हाथो मे कुल मिलाकर दस अँगुलियाँ होती है और इसी कारण गणित में दस की विशेष महत्ता है। सारा गणित दस अको से लिख लिया जाता है—१ से ९ तक वाले अक और शून्य ०, इन्ही से वडी-से-वडी सख्याएँ लिख ली जाती है। प्राचीनतम मनुष्य ने जब देखा होगा कि एक मास में लगभग तीस दिन होते है तो मास मे ठीक-ठीक तीस दिन मानने में उसे कुछ भी सकोच न हुआ होगा। उसे मास में तीस दिन का होना उतना ही स्वाभाविक जान पडा होगा जितना दिन के वाद रात का आना।

परन्तु सच्ची बात तो यह है कि एक मास में ठीक-ठीक तीस दिन नही होते। सव मास ठीक-ठीक वरावर भी नही होते। इतना ही नही, सव अहोरात्र भी वरावर नही होते। इन सव एकाइयो का सूक्ष्म ज्ञान मनुष्य को वहुत पीछे हुआ। आज भी जव सेकेण्ड के हजारवें भाग तक वैज्ञानिक लोग समय नाप सकते है और डिगरी के दो हजारवे भाग तक कोण नाप सकते है, इन एकाइयो का इतना सच्चा ज्ञान नही है कि कोई ठीक-ठीक वता दे कि आज से एक करोड दिन पहले कौन-सी तिथि थी—उस दिन चन्द्रमा पूर्ण गोल था, या चतुर्दशी के चन्द्रमा की तरह कुछ कटा हुआ।

ऋग्वेद मे वर्षमान

निस्सन्देह इन तीन एकाइयो के सम्वन्ध की खोज ही से ज्योतिष की उत्पत्ति हुई और यदि किसी काल की पुस्तक में हमें यह लिखा मिल जाता है कि उस समय मास में और वर्ष में कितने दिन माने जाते थे तो हमको उस समय के ज्योतिष के ज्ञान का सच्चा अनुमान लग जाता है।

ऋग्वेद हमारा प्राचीनतम ग्रथ है। परन्तु वह कोई ज्योतिष की पुस्तक नही है। इसलिए उसमे आनेवाले ज्योतिष-सम्वन्धी सकेत वहुधा अनिश्चित से है। परतु इसमें सदेह नही कि उस समय वर्ष में वारह मास और एक मास मे तीस दिन माने जाते थे। एक स्थान पर लिखा है—

"सत्यात्मक आदित्य का, वारह अरो (खूंटो या डडो) से युक्त चक्र स्वर्ग के चारो ओर वार-वार भ्रमण करता है और कभी भी पुराना नही होता। अग्नि, इस चक्र में पुत्रस्वरूप, सात सौ वीस (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते है[1]।"

[1] १।१६४।४८, रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा का अनुवाद।

परन्तु यह मानने मे कि मास मे बराबर ठीक तीस दिन के होते है एक विशेष कठिनाई पडती रही होगी। वस्तुत एक महीने मे लगभग २९½ दिन होते है। इसलिए यदि कोई बराबर तीस-तीस दिन का महीना गिनता चला जाय तो ३६० दिन मे लगभग ६ दिन का अन्तर पड जायगा। यदि पूर्णिमा से मास आरम्भ किया जाय तो जब बारहवे महीने का अन्त तीस-तीस दिन बारह बार लेने से आवेगा तब आकाश मे पूर्णिमा के बदले अधकटा चन्द्रमा रहेगा। इसलिए यह कभी भी माना नही जा सकता कि लगातार बारह महीने तक तीस-तीस दिन का महीना माना जाता था।

मास में दिनो की संख्या

पूर्णिमा ऐसी घटना नही है जिसके घटित होने का समय केवल चन्द्रमा की आकृति को देखकर कोई पल-विपल तक बता सके। यदि इस समय चन्द्रमा गोल जान पडता है तो कुछ मिनट पहले भी वह गोल जान पडता रहा होगा और कुछ मिनट बाद भी वह गोल ही जान पडेगा। मिनटो की क्या बात, कई घण्टो मे भी अधिक अन्तर नही दिखायी पडता। इसलिए एक मास मे २९½ दिन के बदले ३० दिन मानने पर महीने, दो महीने तक तो कुछ कठिनाई नही पडी होगी, परन्तु ज्योही लोगो ने लगातार गिनाई आरम्भ की होगी, उनको पता चला होगा कि प्रत्येक मास मे तीस दिन मानते रहने से साल भर मे गणना और वेध मे एकता नही रहती। जब गणना कहती है कि मास का अन्त हुआ तब आकाश मे चन्द्रमा पूर्ण गोल नही रहता, जब वेध बताता है कि आज पूर्णिमा है तब गणना बताती है कि अभी महीना पूरा नही हुआ।

अवश्य ही कोई उपाय रहा होगा जिससे लोग किसी-किसी महीने मे केवल २९ दिन मानते रहे होगे। इन २९ दिन वाले महीनो के लिए ऋग्वेद के समय में क्या नियम थे यह अब जाना नही जा सकता, परन्तु कुछ नियम रहे अवश्य होगे। पीछे तो भारतीय ज्योतिष मे ऐसे पक्के नियम बन गये कि लोग उन नियमो के दास बन गये, ऐसे दास कि आज भी हिन्दू ज्योतिषी तभी ही पूर्णिमा मानते है जब उनकी गणना कहती है कि पूर्णिमा हुई, चाहे वेध (आँख से देखी बात) कुछ बताये। मुसलमान वेध के भक्त है, हिन्दू गणित के। चाहे गणना कुछ भी कहे, जब तक मुसलमान ईद के चाद को आखो से देख न लेगा—चाहे निजी आँखो से, चाहे विश्वस्त पुजारियो की आखो द्वारा—वह ईद मनायेगा ही नही। परन्तु आज का हिन्दू डेढ़ हजार वर्ष पहले के बने नियमो का इतना भक्त है कि वह वेध को भाड मे झोकने के लिए

उद्यत हैं। दृक्तुल्यता—गणना मे ऐसा सुधार करना कि उससे वही परिणाम निकले जो वेध से प्राप्त होता है—आज के प्राय सभी पडितो को पाप-सा प्रतीत होता है। वेध की अवहेलना अभी इसलिए निभी जा रही है कि सूर्य-सिद्धान्त के गणित से निकले परिणाम और वेध मे अभी घण्टे, दो घण्टे, से अधिक का अन्तर नही पडता, और घण्टे, दो घण्टे, आगे या पीछे पूर्णिमा बताने से साधारण मनुष्य साधारण अवसरो पर गलती पकड नही पाता। इसी से काम चला जा रहा है। ग्रहण के अवसरो पर अवश्य घण्टे भर की गलती सुगमता से पकडी जा सकती है[1], परन्तु पडितो ने, चाहे वे कितने भी कट्टर प्राचीन मतावलम्बी हो, ग्रहणो की गणना आधुनिक पाश्चात्य रीतियो से करना स्वीकार कर लिया है। अस्तु। चाहे आज का पडित कुछ भी करे, ऋग्वेद के समय के लोग साल भर तक किसी भी प्रकार तीस दिन ही प्रति मास न मान सके होगे। सम्भवत कोई नियम रहा होगा, ऐसे नियम वेदाग-ज्योतिष में दिये है और उनकी चर्चा नीचे की जायगी। परन्तु यदि कोई नियम न रहे होगे तो कम-से-कम अपनी आँखो देखी पूर्णिमा के आधार पर उस काल के ज्योतिषी समय-समय पर एक-दो दिन छोड दिया करते रहे होगे।

वर्ष मे कितने मास

यह तो हुआ मास में दिनो की सख्या का हिसाब। यह भी प्रश्न अवश्य उठा होगा कि वर्ष मे कितने मास होते है। यहाँ पर कठिनाई और अधिक पडी होगी। पूर्णिमा की तिथि वेध से निश्चित करने में एक दिन, या अधिक से अधिक दो दिन, की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए बारह या अधिक मासो में दिनो की सख्या गिनकर पडता बैठाने पर कि एक मास में कितने दिन होते है अधिक त्रुटि नही रह जाती है।

परन्तु यह पता लगाना कि वर्षाऋतु कब आरम्भ हुई, या शरदऋतु कब आयी, सरल नही है। पहला पानी किसी साल बहुत पहले, किसी साल बहुत पीछे, गिरता है। इसलिए वर्षाऋतु के आरम्भ को वेध से, ऋतु को देख कर, निश्चित करने में पन्द्रह दिन की त्रुटि हो जाना साधारण-सी बात है। बहुत काल तक पता ही न चला होगा कि एक वर्ष में ठीक-ठीक कितने दिन होते है। आरम्भ मे लोगो की यही धारणा रही होगी कि वर्ष मे मासो की सख्या कोई पूर्ण सख्या होगी। बारह ही

[1] क्योकि चन्द्रग्रहण का मध्य पूर्णिमा पर और सूर्यग्रहण का मध्य अमावस्या पर ही हो सकता है।

निकटतम पूर्ण सख्या है। इसलिए वर्ष में बारह महीनो का मानना स्वाभाविक था। दीर्घकाल तक होता यही रहा होगा कि बरसात से लोग मोटे हिसाब से महीनो को गिनते रहे होगे और समय बताने के लिए कहते रहे होगे कि इतने मास बीते।

तो भी, जैसे-जैसे ज्योतिष के ज्ञान में तथा राज-काज, सभ्यता, आदि, में वृद्धि हुई होगी, तैसे-तैसे अधिकाधिक दीर्घ काल तक लगातार गिनती रक्खी गयी होगी और तब पता चला होगा कि वर्ष में कभी बारह, कभी तेरह, मास रखना चाहिए, अन्यथा बरसात उसी महीने मे प्रति वर्ष नही पड़ेगी। उदाहरणत, यदि इस वर्ष बरसात सावन-भादो मे थी और हम आज से बराबर बारह-बारह मासो का वर्ष मानते जायें तो कुछ वर्षो के बाद बरसात कुआर-कार्तिक में पड़ेगी, कुछ अधिक वर्षो के बीतने पर बरसात अगहन-पूस में पड़ेगी। मुसलमानो की गणना-पद्धति आज भी यही है कि एक वर्ष मे कुल १२ मास (चान्द्र मास) रक्खे जायें। इसका परिणाम यही होना है कि बरसात उनके हिसाब से प्रति वर्ष एक ही महीने में नही पड़ती। उदाहरणत, उनके एक महीने का नाम मुहर्रम है। उसी महीने में मुसलमानो का मुहर्रम नामक त्योहार पड़ता है। परन्तु यह त्योहार, जैसा सभी ने देखा होगा बराबर एक ही ऋतु मे नही पड़ता।

ऋग्वेद के समय मे अधिमास

हिन्दुओ ने तेरहवाँ मास लगाकर मासो और ऋतुओ में अटूट सम्बन्ध जोड़ने की रीति ऋग्वेद के समय में ही निकाल ली थी। ऋग्वेद मे एक स्थान पर आया है—

"जो व्रतावलम्बन करके अपने-अपने फलोत्पादक बारह महीनो को जानते है और उत्पन्न होनेवाले तेरहवें मास को भी जानते है, ..."।[1]

इससे प्रत्यक्ष है कि वे तेरहवाँ महीना बढ़ाकर वर्ष के भीतर ऋतुओ का हिसाब ठीक रखते थे।

नक्षत्र

लोगो ने धीरे-धीरे यह देखा होगा कि पूर्णिमा का चन्द्रमा जब कभी किसी विशेष तारे के निकट रहता है तो एक विशेष ऋतु रहती है। इस प्रकार तारों के बीच चन्द्रमा की गति पर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ होगा। तारों के हिसाब से चन्द्रमा एक चक्कर २७⅓ दिन मे लगाता है। मोटे हिसाब से प्राचीन लोगो

[1] १।२५।८। रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा का अनुवाद।

ने इसे २७ ही दिन माना होगा। इसलिए चन्द्रमा के एक चक्कर को २७ भागो मे बाँटना और उसके मार्ग में २७ चमकीले या सुगमता से पहचान में आनेवाले तारों या तारका-पुजो को चुन लेना उनके लिए स्वाभाविक था। ठीक-ठीक बराबर दूरियो पर तारो का मिलना असम्भव था, क्योकि चन्द्रमा के मार्ग में तारो का जडना मनुष्य का काम तो था नही। इसलिए आरम्भ मे मोटे हिसाब से ही वेध द्वारा चन्द्रमा की गति का पता चल पाता रहा होगा, परन्तु गणित के विकास के साथ इसमें सुधार हुआ होगा और तब चन्द्र-मार्ग को ठीक-ठीक बराबर २७ भागो में बाँटा गया होगा। चन्द्रमा २७ के बदले लगभग २७$\frac{1}{3}$ दिन मे एक चक्कर लगाता है, इसका भी परिणाम जोड लिया गया होगा।

चन्द्रमा के मार्ग के इन २७ बराबर भागो को ज्योतिष मे नक्षत्र कहते है। साधारण भाषा में नक्षत्र का अर्थ केवल तारा है। इस शब्द से किसी भी तारे का बोध हो सकता है। आरम्भ मे नक्षत्र तारे के लिए ही प्रयुक्त होता रहा होगा। परन्तु चन्द्रमा अमुक नक्षत्र के समीप है कहने की आवश्यकता बार-बार पडती रही होगी। समय पाकर चन्द्रमा और नक्षत्रो का सम्बन्ध ऐसा घनिष्ठ हो गया होगा कि नक्षत्र कहने से ही चन्द्र-मार्ग के समीपवर्ती किसी तारे का ध्यान आता रहा होगा। पीछे जब चन्द्रमार्ग को २७ बराबर भागो में बाँटा गया तो स्वभावत इन भागो के नाम भी समीपवर्ती तारो के अनुसार अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, आदि पड गये होगे।

ऋग्वेद में कुछ नक्षत्रो के नाम आते है जिससे पता चलता है कि उस समय भी चन्द्रमा की गति पर ध्यान दिया जाता था[1]।

उदयकालिक सूर्य

कौषीतकी ब्राह्मण में इसका सूक्ष्म वर्णन है कि उदयकाल के समय सूर्य किस दिशा में रहता है। क्षितिज पर सूर्योदय-बिन्दु स्थिर नही रहता, क्योकि सूर्य का वार्षिक मार्ग तिरछा है और इसका आधा भाग आकाश के उत्तर भाग में पडता है, आधा दक्षिण मे। कौषीतकी ब्राह्मण ने सूर्योदय-बिन्दु की गति का सच्चा वर्णन दिया है कि किस प्रकार यह बिन्दु दक्षिण की ओर जाता है, कुछ दिनो तक वहाँ स्थिर-सा जान पडता है और फिर उत्तर की ओर बढता है[2]। यदि यज्ञ करनेवाला प्रति

[1] १०।८५।१३।

[2] १९।२।३।

दिन एक ही स्थान पर बैठकर यज्ञ करता था—और वह ऐसा करता भी रहा होगा—तो क्षितिज के किसी विशेष विन्दु पर सूर्य को उदय होते हुए देखने के पश्चात फिर एक वर्ष बीतने पर ही वह सूर्य को ठीक उसी स्थान पर (उसी ऋतु मे) उदय होता हुआ देखता रहा होगा। वस्तुत, क्षितिज के किसी एक विन्दु पर उदय होने से लेकर सूर्य के फिर उसी विन्दु पर वैसी ही ऋतु मे उदय होने तक के काल मे दिनो की सख्या गिनने से वर्ष का मान पर्याप्त अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है और सम्भव है कि इस रीति से भी उस समय वर्षमान निकाला गया हो। कम से कम इतना तो निश्चय है कि कौषीतकी ब्राह्मण के कर्त्ता ने सूर्योदय-विन्दु की गति को कई वर्षो तक अच्छी तरह देखा था।

तारो का उदय और अस्त होना

वर्षमान जानने की एक अन्य रीति भी थी। लोग सूर्य की उपासना करते थे। प्रात काल, सूर्योदय के पहले से ही, पूर्व दिशा की ओर ध्यान दिया करते थे। इस क्रिया मे उन्होने देखा होगा कि सूर्योदय के पहले जो तारे पूर्वीय क्षितिज के ऊपर दिखायी पडते है वे सदा एक ही नही रहते। उदाहरणत, यदि मान लिया जाय कि आज प्रात काल मघा नामक तारा लगभग सूर्योदय के समय पूर्वीय क्षितिज से थोडी-सी ही ऊँचाई पर दिखायी पड रहा था तो यह निश्चित है कि आज से बीस-पच्चीस दिन बाद यह तारा सूर्योदय के समय क्षितिज से बहुत अधिक ऊँचाई पर रहेगा, और बीस-पच्चीस दिन पहले सूर्योदय के समय यह क्षितिज से नीचे और इसलिए अदृश्य था। अवश्य कोई दिन ऐसा रहा होगा जिस दिन यह तारा पहले-पहल लगभग सूर्योदय के समय, या तनिक-सा पहिले, दिखायी पडा होगा। वह तारा उस दिन 'उदय' हुआ, ऐसा माना जाता था। लोगो ने देखा होगा कि विशेष तारो का उदय विशेष ऋतुओ मे होता है। तुलसीदास ने जो लिखा है "उदेउ अगस्त्य पथ जल सोखा" उसमे उदय होने का अर्थ यही है कि अगस्त्य पहले प्रात काल नही दिखायी पड रहा था, जब यह सूर्योदय के पहले दिखायी पडने लगा तो बरसात बीत गयी थी।

विशेष तारो के उदय होने के समयो को बार-बार देखकर और इस पर ध्यान रखकर कि कितने-कितने दिनो पर एक ही तारा उदय होता है लोगो ने वर्ष का स्थूल मान अवश्य जान लिया होगा। एक बरसात से दूसरी बरसात तक के दिनो को गिनने की अपेक्षा तारो के एक उदय से दूसरे उदय तक या सूर्योदय-विन्दु के क्षितिज के किसी विशेष चिह्न पर फिर आ जाने तक के काल मे दिनो के गिनने से वर्ष का अधिक सच्चा मान हुआ होगा, परन्तु इसमे भी स्थूलता तब तक न मिटी होगी जब तक कई वर्षो तक दिनो की गिनती लगातार न की गयी होगी।

तारो का उदय प्राचीन काल में भी देखा जाता था यह तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक स्थान मे स्पष्ट है ।[१]

पूर्वोक्त प्रमाणो से प्रत्यक्ष है कि ऋग्वैदिक काल में ज्योतिप की सच्ची नीव पड गयी थी ।

इस अध्याय में हमने प्राचीन ज्योतिष पर विहगम दृष्टि डाल ली है । आगामी अध्याय में प्राचीन साहित्य में आयी हुई ज्योतिष सवधी चर्चा पर व्योरेवार विचार किया जायगा ।

[१] १।५।२।१, लोकमान्य तिलक न अपनी पुस्तक ओरायन में पृष्ठ १८ पर इसकी व्याख्या की है ।

अध्याय २

प्राचीनतम ज्योतिष

विषय-प्रवेश

ऋग्वेद तथा अन्य प्राचीनतम ग्रथो में ज्योतिष से सबध रखने वाली कई बातें है। शकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपनी मराठी पुस्तक "भारतीय ज्योतिषशास्त्र" में अनेक उद्धरण दिये है और उन पर पाडित्यपूर्ण विवेचन किया है। यहाँ थोडे-से चुने हुए उद्धरण दिये जायँगे, जिनसे पता चल जायगा कि हमारे प्राचीन ऋषियो को ज्योतिष का ज्ञान कैसा था। परतु इन उल्लेखो पर विचार करने के पहले यह समझ लेना भी अच्छा होगा कि हमारे प्राचीनतम साहित्य में क्या-क्या ग्रथ उपलब्ध है।

हमारा प्राचीनतम साहित्य

हमारे प्राचीनतम ग्रथो मे वेद है। वेद का साधारण अर्थ ज्ञान है, परतु विशेष अर्थ है भारतीय आर्यों के सर्वप्रथम और सर्वमान्य धार्मिक ग्रथ। इनकी सख्या चार है। हिन्दी शब्द-सागर में इनके सबध में निम्न सूचना दी हुई है .

> आरभ में वेद केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। उनमे से ऋग्वेद पद्य मे है और यजुर्वेद गद्य में। सामवेद में गाने योग्य गीत या साम है। इसलिए प्राचीन साहित्य में "वेदत्रयी" शब्द का ही अधिक प्रयोग देखने में आता है, यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र में अनेक स्थानो पर "वेदत्रयी" शब्द का ही व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से वेदो मे सम्मिलित हुआ था, और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अतिम वेद मे शाति तथा पौष्टिक अभिचार, प्रायश्चित्त, तत्र, मत्र आदि विषय है। वेदो के तीन मुख्य भाग है जो सहिता, ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद कहलाते है। सहिता शब्द का अर्थ सग्रह है, और वेदो के सहिता भाग मे स्तोत्र, प्रार्थना, मत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ-

विधि से सबध रखनेवाले मत्र और अरिष्ट आदि की शाति के लिए प्रार्थनाएँ आदि सम्मिलित हैं। वेदो का यही अग मंत्र-भाग भी कहलाता है। ब्राह्मण-भाग मे एक प्रकार से बडे-बडे गद्य ग्रथ आते है जिनमे अनेक देवताओ की कथाएँ, यज्ञ-सबधी विचार और भिन्न-भिन्न ऋतुओ मे होनेवाले धार्मिक कृत्यो के व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्व का निरूपण है। वनो में रहने वाले यति, सन्यासी आदि परमेश्वर, जगत और मनुष्य इन तीनो के सबध मे जो विचार किया करते थे, वे उपनिषदो और आरण्यको में सगृहीत है। इन्ही मे भारत का प्राचीनतम तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। यह सब मानो वेदो का अतिम भाग है, और इसीलिए वेदात कहलाता है। वेदो का प्रचार बहुत प्राचीन काल से और विस्तृत प्रदेश मे रहा है, इसलिए काल-भेद, देश-भेद और व्यक्ति-भेद आदि के कारण वेदो के मत्रो के उच्चारण आदि मे अनेक पाठ-भेद हो गये है। साथ ही पाठ में कही-कही कुछ न्यूनता और अधिकता भी हो गयी है। इस पाठ-भेद के कारण सहिताओ को जो रूप प्राप्त हुए है वे शाखा कहलाते है, और इस प्रकार प्रत्येक वेद की कई-कई शाखाएँ हो गयी है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद ये छ वेदो के अग या वेदाग कहलाते है।

हिन्दू लोग वेदो को अपौरुषेय और ईश्वर-कृत मानते है। लोगो का विश्वास है कि ब्रह्मा ने (स्वय) वेद कहे है, और जिन-जिन ऋषियो ने जो मत्र सुनकर सगृहीत किये है वे उन मत्रो के द्रष्टा है। कहा जाता है कि वेदो का वर्तमान रूप मे सग्रह और सकलन महर्षि व्यास ने किया है, और इसीलिए वे वेदव्यास कहे जाते है।

वेदो के रचना-काल के सबध में विद्वानो मे बहुत अधिक मतभेद है। मैक्समूलर आदि कई पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि वेदो की रचना ईसा से प्राय डेढ हजार वर्ष पहले उस समय हुई जिस समय आर्य लोग आकर पजाब में बसे थे। परतु लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष-सबधी तथा अन्य कई आधारो पर वेदो का समय ईसा से लगभग ४,५०० वर्ष पूर्व स्थिर किया है। बूलर आदि विद्वानो का मत है कि आर्य सभ्यता ईसा से प्राय चार हजार वर्ष पहले की है और वैदिक साहित्य की रचना ईसा से प्राय तीन हजार वर्ष पहले हुई है, और अधिकाश लोग यही मत मानते है।

वेद 'श्रुति' कहलाते है क्योकि ऋषियो ने उन्हे ब्रह्मा के मुख से सुना था। 'स्मृति' ऐसी कृति को कहते है जो किसी पुरुष की रचना होती है। स्मृति

का अर्थ है वह जो स्मरण रह गया हो। श्रुति का अर्थ है वह जो सुना गया हो। स्मृतियो के कर्त्ता, कर्त्तार या स्रष्टार होते है, जिन्हे हम आज-कल की भाषा मे ग्रथकार या लेखक कहेगे। श्रुतियो के कर्ता नहो, द्रष्टा या द्रष्टार होते थे जो अपनी दिव्य दृष्टि से सत्य को देख सकते थे।

ब्राह्मण आदि

ऋग्वेद मे एक हजार से अधिक सूक्त है और एक सूक्त मे मध्यमानत (औसतन) लगभग १० ऋचाए (छद) है। सारे वेद को दस मडलो मे बाँटा गया है और हमने जहाँ-जहा ऋग्वेद की किसी पक्ति का निर्देश किया है वहा प्रथम सख्या मडल बताती है, दूसरी सूक्त, तीसरी मत्र या ऋचा। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय के आर्य अधिकाश पजाब मे बसे थे जहाँ सिधु नदी तथा उसकी सहायक नदिया बहती थी। परतु वे गगा, यमुना और गोमती तक एक ओर और कुभा (काबुल) तक दूसरी ओर फैले हुए थे। पशु-पालन (विशेषत गो-पालन) और कृषि ये ही दो उनके प्रमुख काम थे।

ऋग्वेद के कई 'ब्राह्मण'[1] थे जिनमे से दो ही—ऐतरेय और कौषीतकी—अब उपलब्ध है। दोनो मे बहुत-सी बाते एक ही है, परतु प्रत्येक मे कई ऐसी बाते है जो दूसरे मे नही है। ऐतरेय ब्राह्मण के साथ ऐतरेय आरण्यक और ऐतरेय उपनिषद भी है, इसी प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण के साथ कौषीतकी आरण्यक और कौषीतकी उपनिषद है। ताण्ड्य ब्राह्मण सामवेद का ब्राह्मण है।

सामवेद की अधिकाश ऋचाएँ (लगभग १६००) ऋग्वेद से ली गयी है और उनके गान दिये गये है।

यजुर्वेद की दो शाखाएँ है—कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद, जिनमे से कृष्ण यजुर्वेद अधिक प्राचीन है। यजुर्वेद के ऋषि थे वैशम्पायन, जिनके शिष्य के शिष्य थे तित्तिरि, और इन्ही के नाम से यजुर्वेद की एक शाखा तैत्तिरीय-सहिता है। परन्तु इस सहिता मे केवल ऋचाएँ नही है। वे सब विषय भी है जिन्हे साधारणत ब्राह्मणो मे आना चाहिए। परन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण भी है जो सभवत कुछ काल बीतने पर तैयार हुआ। ऋचाओ और ब्राह्मण मे जाने योग्य विषयो का सम्मिश्रण यजुर्वेद

[1] वेद के उस भाग को "ब्राह्मण" कहते है जो बताता है कि किस यज्ञ मे कौन-से मत्र का पाठ होना चाहिए, और जो ऋचाओ का अर्थ देता है और उन्हे स्पष्ट करने के लिए कथाएँ देता है।

की अन्य शाखाओ मे भी था—काठक, कालापक और मैत्रायणी-सहिता मे, परतु इस दोष को याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने दूर किया। उनके द्वारा प्रसारित सहिता वाजसनेयी-सहिता कहलायी। इसके साथ जो ब्राह्मण था उसका नाम शतपथ ब्राह्मण पडा। अधिक स्पष्ट होने के कारण वाजसनेयियो ने अपनी सहिता को शुक्ल यजुर्वेद कहा और पहले वाली सहिताओ को कृष्ण कहा।

शतपथ ब्राह्मण में ज्योतिष-सबधी कई एक सूचनाएँ है, परतु वर्तमान शतपथ ब्राह्मण का सब अग एक साथ नही बना है। प्राचीन वैयाकरण पाणिनि के वार्तिककार कात्यायन के अनुसार शतपथ के पिछले अश पाणिनि के काल मे या कुछ ही पहले तैयार हुए थे। समय पाकर तैत्तिरीय लोग नर्मदा की ओर बढे और वाजसनेयी लोग विदेह की ओर।

अथर्ववेद मे अन्य वेदो की भाति स्तोत्रो के अतिरिक्त शत्रु को नाश करने के भी मत्र है, दुर्घटना, पाप, विपत्ति आदि से बचने के लिए भी मत्र है। कुछ विद्वानो का मत है कि आदिम निवासियो के सपर्क का यह परिणाम है। अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम गोपथ ब्राह्मण है। अथर्ववेद से सबध रखने वाले उपनिषद कई एक है—प्रश्न, मुडक, माडूक्य, इत्यादि।

वैदिक साहित्य मे वर्ष, मास और अधिमास

तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक स्थान पर सूर्य, चद्रमा, नक्षत्र, सवत्सर, ऋतु, मास, अर्धमास, अहोरात्र, पौर्णमास, आदि शब्द एक साथ ही आये है। पाठ इस प्रकार है—

> **लोकोसि स्वर्गोसि ॥ अनंतोस्यपारोसि ॥ अक्षितोस्यक्षय्योसि ॥ तपसः प्रतिष्ठा ॥ त्वयीदमंत॰ ॥ विश्वं यक्ष विश्व भूत विश्व सुभत ॥ विश्वस्य भर्ता विश्वस्य जनयिता ॥ तंत्वोपदधे कामदुघमक्षितं ॥ प्रजापतिस्त्वा-सादयतु ॥ तया देवतयागिरस्वध्रुवासीद ॥ ॥ तपोसि लोके श्रितं ॥ तेजसः प्रतिष्ठा ॥ त्वयीद॰ ॥ तेजोसि तपसि श्रित ॥ समुद्रस्य प्रतिष्ठा . ॥ समुद्रोसि तेजसि श्रितः ॥ अपां प्रतिष्ठा ॥ ॥ आप स्थ समुद्रे श्रिता. ॥ पृथिव्याः प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ... ॥ पृथिव्यस्यप्सुश्रिता ॥ अग्ने. प्रतिष्ठा ॥ ... ॥ अग्निरसि पृथिव्यां श्रितः ॥ अंतरिक्षस्य प्रतिष्ठा ॥ . ॥ अंतरिक्षमस्यग्नौ श्रित ॥ वायो. प्रतिष्ठा ॥ ॥ वायुरस्यंतरिक्षे श्रित. ॥ दिवः प्रतिष्ठा ॥ ... ॥ द्यौरसि वायौ श्रिता ॥ आदित्यस्य प्रतिष्ठा ॥ . . ॥ आदित्योसि दिवि श्रित. ॥ चंद्रमसः प्रतिष्ठा ॥ ... ॥ चद्रमा**

इसका अर्थ पहले दिया जा चुका है (पृष्ठ ६)।

तैत्तिरीय संहिता में ऋतुओ और मासो के नाम बताये गये है

मधुश्च माधवश्च वासंतिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमंतिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ॥

त स ४ ४ ११.

अर्थ—वसन्त ऋतु के दो महीने है, मधु और माधव, ग्रीष्म ऋतु के दो महीने है, शुक्र और शुचि, वर्षा के दो महीने है, नभ और नभस्य, शरद के दो महीने है, इष और ऊर्ज, हेमन्त के दो महीने है, सह और सहस्य, शिशिर के दो महीने है, तपस और तपस्य।

वाजसनेयी संहिता में पूर्वोक्त १२ महीनो के नामो के अतिरिक्त तेरहवें महीने की भी चर्चा है। जान पडता है कि लौंद के तेरहवे महीने को तब लोग अहसस्पति कहते थे—

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा
नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा
सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा
तपस्याय स्वाहाहसस्पतये स्वाहा ॥

वा स २२ ३१

अर्थ—मधु के लिए स्वाहा, माधव के लिए स्वाहा, शुक्र के लिए स्वाहा, शुचि के लिए स्वाहा, नभ के लिए स्वाहा, नभस्य के लिए स्वाहा, इष के लिए स्वाहा, ऊर्ज के लिए स्वाहा, सह के लिए स्वाहा, सहस्य के लिए स्वाहा, तपस के लिए स्वाहा, तपस्य के लिए स्वाहा, अहसस्पति (पाप के पति या मलमास) के लिए स्वाहा।

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे भी तेरह महीनो के नाम है

अरुणोरुणरजा पुडरीको विश्वजिदभिजित् ॥
आर्द्रं पिन्वमानोन्नवान् रसवानिरावान् ॥
सर्वौषध संभरो महस्वान् ॥

तै ब्रा ३ १०. १.

अर्थ—महीनो के १३ नाम ये है —

(१) अरुण (२) अरुणरज, (३) पुडरीक, (४) विश्वजित्, (५) अभिजित्, (६) आर्द्र, (७) पिन्वमान, (८) अन्नवान्, (९) रसवान्, (१०) इरावान्, (११) सर्वौषध, (१२) संभर, (१३) महस्वान् ॥

वर्ष में ३६० दिन होने का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में निम्न प्रकार से है :

त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहानि सप्त च वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहोरात्रयः॥

ऐ. ब्रा ७. १७

अर्थ—तीन सौ साठ दिन का वर्ष होता है, वर्ष में सात सौ बीस दिन और रात होते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी तेरहवें मास की चर्चा है —

द्वादशारत्नी रशना कर्तव्या ३ त्रयोदशारत्नी३रिति ॥ ऋषभो वा एष ऋतूनां ॥ यत्संवत्सरः ॥ तस्य त्रयोदशो मासो विष्टपं ॥ ऋषभ एष यज्ञानां ॥ यदश्वमेध. ॥ यथा वा ऋषभस्य विष्टपं ॥ एवमतस्य विष्टपं ॥

तै ब्रा ३. ८. ३.

अर्थ—रस्सी को १२ हाथ की करे या १३ हाथ की ? सवत्सर जो है वह ऋतुओ का ऋषभ (साँड, स्वामी) है। तेरहवाँ महीना उसका विष्टप (=पूँछ) है। अश्वमेध जो है वह यज्ञो का ऋषभ है। जैसे ऋषभ का पुच्छ होता है उसी तरह यह अश्वमेध का पुच्छ है।

ताण्डय ब्राह्मण में वर्ष में दिनो की सख्या ठीक रखने के सबध में निम्न अति रोचक वाक्य है ·

यथा वै दृतिराध्मात एवं संवत्सरोनुत्सृष्टः॥

तां. ब्रा. ५. १०. २.

अर्थ—(यदि एक दिन न छोड दिया जायगा तो) वर्ष वैसे ही फूल जायगा जैसे चमडे की मशक।

उत्तरायण और दक्षिणायन

अयन का अर्थ है चलना। ज्योतिष में वर्ष को दो बराबर भागो मे विभाजित किया जाता है, जिनमें से एक को उत्तरायण और दूसरे को दक्षिणायन कहते हैं। जब क्षितिज पर का सूर्योदय-बिन्दु दिनो-दिन उत्तर हटता रहता है तो उत्तरायण रहता है, अर्थात सूर्य उत्तर जाता रहता है। इसी प्रकार सूर्योदय-बिन्दु को देखकर पता लगाया जा सकता है कि कब से कब तक दक्षिणायन है। परतु कभी-कभी उत्तरायण उस काल को मानते थे जिसमे सूर्योदय बिंदु पूर्व बिंदु से उत्तर रहता था और दक्षिणायन उसको जिसमें सूर्योदय पूर्व से दक्षिण हुआ करता था। इस सबध में शतपथ ब्राह्मण यह लिखता है .

इति० २

वसतो ग्रीष्मो वर्षा । ते देवा ऋतव । शरद्धेमत शिशिरस्ते पितरो स (सूर्य) यत्रोदगावर्तते । देवेषु तर्हि भवति यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति ॥

शत ब्रा २ १ ३

अर्थ—वसत, ग्रीष्म, वर्षा ये देव-ऋतु में है । शरद, हेमत और शिशिर पितर-ऋतु मे है । जब उत्तर की ओर सूर्य रहता है तो ऋतुएँ देवो में गिनी जाती है जब दक्षिण की ओर रहता है तो पितरो में ।

इससे जान पडता है कि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उत्तरायण तब होता थ जब सूर्योदय पूर्व-विन्दु से उत्तर की ओर हट कर होता था ।

तैत्तिरीय मे केवल इतना ही है कि ६ महीने तक सूर्य उत्तर जाता रहता और ६ महीने तक दक्षिण —

तस्मादादित्य षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण॥

तै स ६ ५ ३

अथ—इसलिए आदित्य (सूर्य) छ मास दक्षिणायन रहता है और छ मा उत्तरायण ।

अध्याय ३

मासों के नये नाम

नाम वदलने का कारण

महीनो के नाम तैत्तिरीय सहिता में मधु, माधव, आदि थे। इसका प्रमाण पहले दिया जा चुका है। परतु इसमे सदेह नही कि महीनो के मधु, माधव, आदि, नामो का प्रचार धीरे-धीरे मिट गया और उनके बदले उनके नये नाम प्रचलित हो गये, जो तारो (नक्षत्रो) के नाम पर पडे थे। उदाहरणत, चैत्र (जिसे हिन्दी में चैत कहते है) चित्रा नामक तारे पर पड़ा, जो रविमार्ग के समीप एक वहुत चमकीला तारा है। वस्तुत., सभी नाम इसी प्रकार पडे। नाम वदलने का कारण भी स्पष्ट है। मधु नाम का मास कौन-सा है; यह कैसे कोई वता सकता था? केवल गणना से। वह जोडता कि मधु नामक मास के वाद ग्यारह महीने और वीत गये है, इसलिए अव फिर मधु का महीना होना चाहिए। परतु यदि वह इसी तरह कई वर्षों तक लगातार प्रत्येक वारहवें महीने को मधु कहता चलता तो अवश्य ही ऋतुओ और महीनो मे कोई सवध न रहता, ठीक उसी प्रकार जैसे मुसलिम महीनो और ऋतुओं मे कोई सवध नही रहता। एक मुसलिम महीने का नाम मुहर्रम है और मुहर्रम का त्योहार उसी महीने में पडता है। सभी ने देखा होगा कि यह त्योहार कभी गरमी में पडता है, कभी जाडे मे, और कभी वरसात में। ऋतु के हिसाव से त्योहार पहले ही पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि पहले-जैसा ऋतु एक वर्ष में, अर्थात लगभग ३६५$\frac{1}{4}$ दिन में, आता है, परंतु वारह चाद्र मास लगभग ३५४ दिनो मे ही पूरे हो जाते है। यदि वर्ष में सदा वारह ही चाद्र मास रक्खे जायँ तो वर्ष का अत पुरानी ऋतु आने के लगभग ११ दिन पहले ही हो जायगा, जैसा मुसलिम वर्षो में होता है। परतु हमारे प्राचीन ऋषियो ने इस वात को स्वीकार नहीं किया कि महीनो और ऋतुओं में सवध न रहे। उन्होने समुचित उपाय ढूंढ ही निकाला। उन्होने देखा कि पूर्णिमा के समय तारों के वीच चद्रमा की स्थिति और ऋतु में प्रत्यक्ष

सबध है। इसलिए उन्होने तारो के हिसाब से महीना बताना आरभ किया और कुछ काल बीतने पर महीनो के नाम भी तारो के अनुसार पड गये। तैत्तिरीय सहिता के निम्न वाक्य से स्पष्ट है कि उस समय मास-निर्धारण के लिए तारो का वेध (अर्थात देखना) आरभ हो गया था —

> **न पूर्वयो फल्गुन्योरग्निमादधीत ॥ एषा वै जघन्या रात्रि सवत्सरस्य ॥ यत् पूर्वेफल्गुनी ॥ पृष्टित एव सवत्सरस्याग्निमाधाय ॥ पापीयान् भवति ॥ उत्तरयोरादधीत ॥ एषा वै प्रथमा रात्रि सवत्सरस्य ॥ यदुत्तरेफल्गुनी ॥ मुखत एव सवत्सरस्याग्निमाधाय ॥ वसीयान् भवति ॥**
>
> **तै ब्रा १ १ २ ८**

अर्थ—पूर्वफल्गुनियो में अग्नि की स्थापना न करे। यह वस्तुत सवत्सर की जघन्य (बुरी) रात है, जिसको पूर्वफल्गुनी कहते है। सवत्सर की पीठ की ओर अग्नि की स्थापना करने से पापी होता है। उत्तराफल्गुनी में अग्नि की स्थापना करे। यह सवत्सर की पहली (मुख्य) रात्रि है जिसे उत्तराफल्गुनी कहते है। जो सवत्सर के मुख की ओर अग्नि की स्थापना करता है वह श्रेष्ठ होता है।

इसमें पूर्णिमा शब्द नही आया है, परतु निस्सदेह अर्थ यही है कि जब उत्तरा फाल्गुनी तारे के पास पूर्ण चन्द्र रहे तो समझना चाहिए कि वर्ष का आरभ हुआ और तब (यज्ञ के लिए) अग्नि जलानी चाहिए। अन्यथा, प्रत्येक मास में चद्रमा कभी-न-कभी तो उत्तरा फाल्गुनी के पास पहुँचता ही है।

नामकरण के नियम

आरभ में नक्षत्र केवल चमकीले तारे या सुगमता से पहचाने जाने वाले छोटे तारका-पुज थे। परतु आकाश मे बराबर-बराबर दूरी पर तारे या तारका-पुजो के न रहने से असुविधा होती रही होगी। पीछे तो चद्रमार्ग (वस्तुत रविमार्ग) को ठीक बराबर २७ खडो में विभाजित किया गया और प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा गया, जिससे नक्षत्र का पुराना अर्थ ही बदल गया। ऊपर दिये गये तैत्तिरीय ब्राह्मण के उद्धरण से यह स्पष्ट नही होता कि उस समय पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी आदि से तारे समझे जाते थे या रविमार्ग के सत्ताइसवे भाग। चाहे कुछ भी अभिप्राय रहा हो, इतना स्पष्ट है कि यज्ञादि धार्मिक कर्मों के लिए मधु, माधव, आदि में से कोई पर नाम बताने के बदले ग्रथकार ने पूर्वा फाल्गुनी आदि का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा। यहाँ हम उस प्रथा को देख रहे है जिससे पीछे मासो के नवीन नामो का जन्म हुआ। यह कदापि न समझना चाहिए कि तैत्तिरीय सहिता या ब्राह्मण के

समय मे मासो के नाम फाल्गुन, चैत्र आदि पड गये थे। इन ग्रथो में, और सम-कालीन अन्य ग्रथो में फाल्गुन, चैत्र आदि शब्द कही आये ही नही है। ये नाम तो वहुत काल पीछे के साहित्य में आते हैं। तव महीनो के नामकरण के लिए निम्न नियम था :—

पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा ।
नाम्ना स पौषो माघाद्याश्चैवमेकादशा परे ॥

अमरकोष, कालवर्ग १४

अर्थ—उस मास को जिसमें पूर्णिमा पुष्य नक्षत्र मे होती है पौष नाम दिया जाता है (और किसी मास को नही), इसी प्रकार शेष ग्यारह महीनो के, अर्थात् माघ इत्यादि के, नाम भी पडते है।

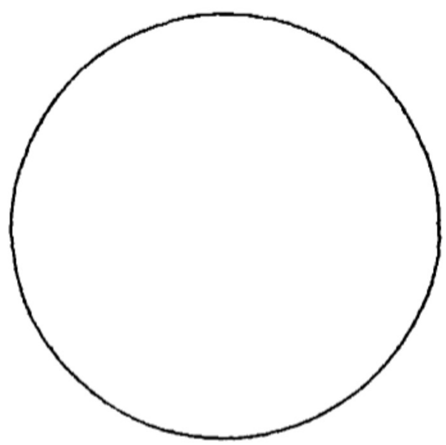
सूर्य-सिद्धान्त मे निम्न नियम है

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ।

अर्थ—पूर्णिमा के अत में चद्रमा जिस नक्षत्र में रहता है उसी के नाम पर मासों के नाम पडे हैं।

चद्रमा की जटिल गति

यह भी देख लेना उचित होगा कि प्राचीन ऋषियो को चद्रमा की जटिल गति के कारण क्या-क्या कठिनाइयाँ पडी होंगी। पहली कठिनाई तो यह पडी होगी कि पूर्णिमा के अवसर पर मद तारे सभी छिप जाते है। इसलिए ठीक पता नही चलता रहा होगा कि तारो के वीच चद्रमा कहाँ है। यह अवश्य सत्य है कि चमकीले तारे पूर्णिमा पर भी दिखायी पडते रहते हैं। उन्ही से अनुमान करना पडता रहा होगा कि पूर्णिमा के अवसर पर चद्रमा तारो के सापेक्ष कहाँ पर है।



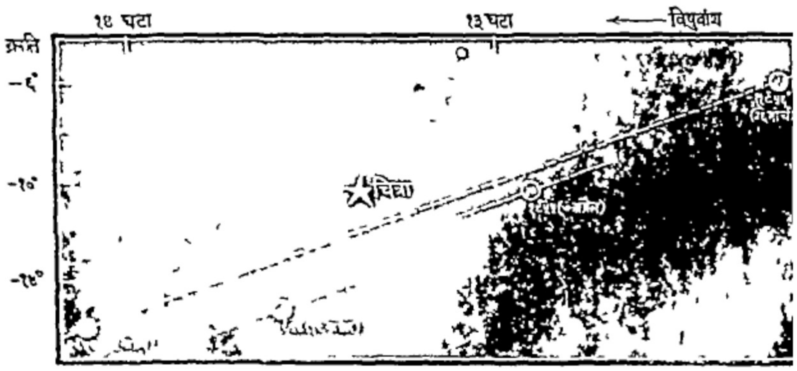
चतुर्दशी का चद्रमा।
चतुर्दशी का चद्रमा वृत्ताकार ही जान पड़ता है, यह चित्र पैमाने के अनुसार सावधानी से खीचा गया है।

दूसरी कठिनाई इससे हुई होगी कि ठीक पता नही चलता कि पूर्णिमा कव हुई। पूर्णिमा के २४ घटे पूर्व या २४ घटे पश्चात भी चद्रमा का

आकार, जैसा बगल के चित्र मे दिखाया गया है, गोल (वृत्ताकार) ही जान पडता है।

परतु एक दिन मे चद्रमा आकाश मे लगभग १३° (अर्थात अपने व्यास का लगभग २६ गुना) चल लेता है। इसलिए ठीक पता नही लगता कि किस तारे के पास रहने पर पूर्णिमा हुई। कोई विशेष पूर्णिमा पूर्वा फाल्गुनी के पास हुई या उत्तरा फाल्गुनी के पास इसे ठीक-ठीक निर्णय कर सकने की शक्ति निस्सदेह सैकडो वर्षो मे आयी होगी।

फिर, इससे भी कठिनाई पटी होगी कि १२ चाद्र मास बीतने पर जब फिर पूर्णिमा होती है तो चद्रमा अपने पुराने स्थान पर नही रहता। कारण यह है कि ३६५¼ दिन के वर्ष मे और २९½ दिन के चाद्र मास मे सरल सबध नही है एक वर्ष मे पूरे-पूरे महीने नही है। इसलिए यदि गत वर्ष चैत मे पूर्णिमा तब हुई थी जब चद्रमा चित्रा नामक तारे के बहुत निकट था तो इस वर्ष चित्रा तक पहुँचने से लगभग ११° पहले ही (अर्थात चद्रमा के व्यास के लगभग बाईस गुनी दूरी रहने पर) पूर्णिमा होगी। इसी प्रकार प्रति वर्ष पूर्णिमा के क्षण पर चद्रमा का स्थान ११° पिछडता चला जाता है और तब जब बीच मे कभी एक अधिमास लग जाता है यह स्थान एकाएक लगभग ३०° आगे बढ जाता है (चित्र देखे)। स्थिति वैसी ही है जैसे आप



चैत्र मे पूर्णिमा

विविध वर्षो के एक ही मास मे भी पूर्णिमा पर चद्रमा एक स्थिति मे नही रहता है। यहाँ तीन वर्षो मे चित्रा नामक तारा के पास होने वाली पूर्णिमाओ पर चद्रमा की स्थितियाँ दिखायी गयी है।

की घडी प्रति दिन ११ मिनट मुस्त जाती हो और जब आप उसे मिलायें तो एकदम तीस मिनट तेज कर दे। घडी के मुस्त जाने का पता तो एक-आध दिन मे ही लग जाता है, परतु चद्रमा की स्थिति मे अतर जानने के लिए वर्ष भर तक ठहरना पडता है और स्मरण रखना पडता है कि पिछले वर्ष पूर्णिमा पर चद्रमा कहाँ था, ऊपर से कठिनाई यह भी रहती है कि ठीक पता नही चलता कि पूर्णिमा इस क्षण हुई, या कई घटे पहले हुई जब दिन था और तारे दिखायी न पडते थे, या कई घटे पीछे होगी, जब सूर्योदय हो जायगा और तारे दिखायी न पडेगे।

चन्द्रमार्ग स्थिर नही है

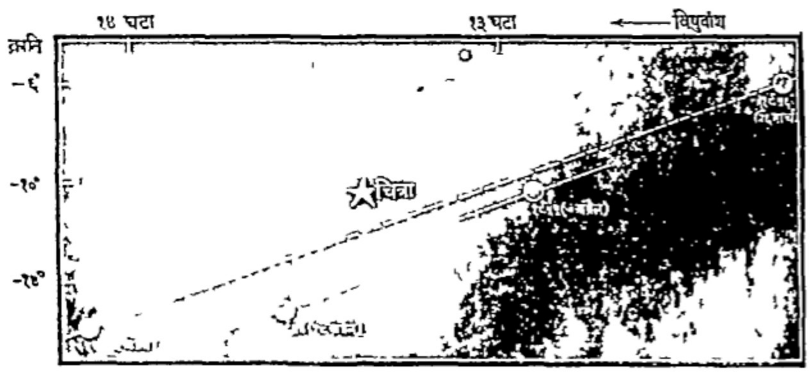
केवल पूर्वोक्त ही कठिनाई होती तो भी कुशल होता। परतु एक दूसरे प्रकार की कठिनाई भी पडी होगी। वह इस कारण कि चद्रमार्ग आकाश मे स्थिर नही रहता। यदि चद्रमा का मार्ग स्थिर भी होता तो, जैसा हम ऊपर देख चुके है, कठिनाई से पता चलता कि चद्रमा के किस स्थान पर पहुँचने पर पूर्णिमा हुई, परतु जब मार्ग ही बदला करता है तो अवश्य ही कठिनाई बहुत बढ जाती है। इस बात को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए विचार करे कि यदि चद्रमार्ग अचल होता और मघा नामक तारा उसके पास इस प्रकार स्थित होता कि चद्रमा उसे प्राय. छूता हुआ जाता तो अवश्य ही चद्रमा उसे छूता हुआ प्रति मास जाता और प्रति वर्ष एक मास ऐसा आता जब उस तारे के आस-पास ही कही चद्रमा के रहने पर पूर्णिमा होती। उस तारे तक पहुँचने में अधिक से अधिक चौदह-पद्रह अश पूर्णिमा पर बचे रहते या इतना ही अधिक तय हो गया रहता। परतु चद्रमा का मार्ग स्थिर नही है। इसलिए यदि चद्रमा इस वर्ष किसी तारे को छूता हुआ निकलता है तो सभव है आगामी वर्ष वह उस तारे को छू न पाये और उसकी बगल से निकल जाय। तब एक वर्ष और बीतने पर चद्रमा उस तारे से अधिक दूरी से होता हुआ निकल जायगा, इत्यादि, ९ वर्ष बाद वह उस तारे से लगभग १०° (अर्थात चद्र-व्यास की बीस गुनी दूरी) पर से निकल जायगा, तब दूरी कम होने लगेगी और लगभग १८½ वर्ष बाद चद्रमा फिर उस तारे को छूता हुआ चलेगा, और पुराना कार्य-क्रम फिर दोहराया जायगा। ऊपर के चित्र मे ३ वर्षो के लिए चद्रमार्ग दिखाया गया है जिससे पूर्वोक्त बाते अधिक स्पष्ट हो जायँगी।

चद्रमार्ग ठीक-ठीक किस प्रकार हटता-बढता है इसे समझने के लिए चद्रमार्ग और रविमार्ग में अतर समझ लेना अच्छा होगा। तारो के बीच सूर्य भी चलता है और चद्रमा भी। परतु सूर्य का मार्ग निर्धारित करना कठिन है, क्योकि सूर्य के

आकार, जैसा बगल के चित्र में दिखाया गया है, गोल (वृत्ताकार) ही जान पड़ता है।

परंतु एक दिन मे चद्रमा आकाश में लगभग १३° (अर्थात अपने व्यास का लगभग २६ गुना) चल लेता है। इसलिए ठीक पता नही लगता कि किस तारे के पास रहने पर पूर्णिमा हुई। कोई विशेष पूर्णिमा पूर्वा फाल्गुनी के पास हुई या उत्तरा फाल्गुनी के पास इसे ठीक-ठीक निर्णय कर सकने की शक्ति निस्सदेह सैकडो वर्षों में आयी होगी।

फिर, इससे भी कठिनाई पड़ी होगी कि १२ चाद्र मास बीतने पर जब फिर पूर्णिमा होती है तो चद्रमा अपने पुराने स्थान पर नही रहता। कारण यह है कि ३६५¼ दिन के वर्ष में और २९½ दिन के चाद्र मास में सरल सबध नही है एक वर्ष मे पूरे-पूरे महीने नही है। इसलिए यदि गत वर्ष चैत में पूर्णिमा तब हुई थी जब चद्रमा चित्रा नामक तारे के बहुत निकट था तो इस वर्ष चित्रा तक पहुँचने से लगभग ११° पहले ही (अर्थात चद्रमा के व्यास के लगभग बाईस गुनी दूरी रहने पर) पूर्णिमा होगी। इसी प्रकार प्रति वर्ष पूर्णिमा के क्षण पर चद्रमा का स्थान ११° पिछडता चला जाता है और तब जब बीच मे कभी एक अधिमास लग जाता है यह स्थान एकाएक लगभग ३०° आगे बढ जाता है (चित्र देखें)। स्थिति वैसी ही है जैसे आप



चैत्र में पूर्णिमा

विभिन्न वर्षों के एक ही मास मे भी पूर्णिमा पर चद्रमा एक स्थिति मे नही रहता है। यहां तीन वर्षों मे चित्रा नामक तारा के पास होने वाली पूर्णिमाओं पर चद्रमा की स्थितियां दिखायी गयी है।

रहता है, आधा दक्षिण । इसलिए प्रत्येक मास चद्रमा आधे समय तक रविमार्ग के उत्तर रहता है, आधे समय तक दक्षिण ।

खगोल पर बने चित्र मे चद्रमार्ग रविमार्ग को दो विदुओ मे काटता है । इनमें से प्रत्येक को 'पात' कहते है । यदि इन्हे पृथक-पृथक बताना हो तो एक को आरोही पात और दूसरे को अवरोही पात कहा जा सकता है[1] ।

अब हम बता सकते है कि चद्रमार्ग किस प्रकार अपनी स्थिति बदलता रहता है । रविमार्ग और चद्रमार्ग के बीच का कोण नही बदलता, और न रविमार्ग चलता है, केवल दोनो पात पीछे मुंह धीरे-धीरे बराबर चलते रहते है और प्रत्येक पात एक चक्कर लगभग १८½ वर्ष में लगाता है । इससे सारा चद्रमार्ग अपना स्थान बदलता रहता है ।

इसका एक परिणाम यह होता है कि यदि आज चद्रमार्ग का उत्तरतम भाग किसी तारे के पास है तो आज से ९ वर्ष बाद, जब आरोही पात आधा चक्कर लगाकर उलटी ओर पहुँच जायगा, चद्रमा उस तारे के निकटतम तब पहुंचेगा जब वह उससे लगभग १०° (दस अश) पर रहेगा (इस पन्ने की पीठ पर चित्र देखे) ।

एक ही तारे के कभी समीप रहने और कभी दूर रहने से तारो को देखकर महीनो के बताने में कठिनाई पडती रही होगी । परतु पर्याप्त काल बीतने पर सब बातें स्पष्ट हो गयी होगी ।

सभवत एक कठिनाई और पडी होगी । चद्रमा अपेक्षाकृत हमारे बहुत निकट है, तारे बहुत दूर है । इससे कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई-कोई तारा चद्रमा की आड में पड जाता है और तब छिप जाता है । बात वैसी ही है कि किसी दूरस्थ मदिर का किसी निकटस्थ पेड के पीछे छिपना । एक स्थान से मदिर पेड के ठीक पीछे पड सकता है, दूसरे स्थान से वह पेड की बगल मे दिखायी पड सकता है । इसी प्रकार दस-बीस मील के ही अतर पर ऐसा हो सकता है कि एक स्थान से कोई तारा चद्रमा के पीछे छिप जाय और दूसरे स्थान से वह छिप न पाये । इन सब बातो से चद्रमा के विषय में पर्याप्त कठिनाई हमारे प्राचीन नक्षत्र-दर्शो को पडी होगी।

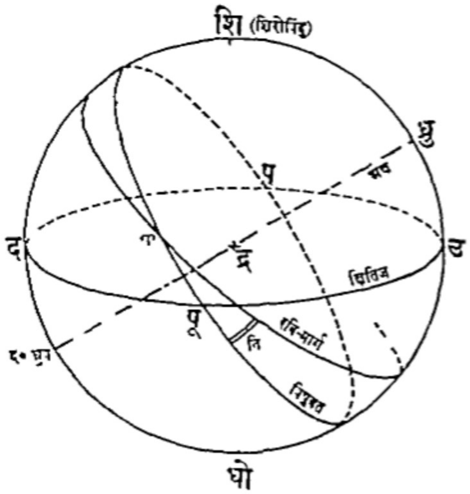
इन सब कठिनाइयो को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, आदि, से वर्ष का अत और आरभ बताना सैकडो वर्षो में आया होगा ।

[1] इनके विशेष नाम भी है (राहु और केतु), परतु उनसे पाठको को कुछ भ्रम हो सकता है । इसलिए उनका प्रयोग यहां नहीं किया जायगा।

उदित होने पर तारे अदृश्य हो जाते है। सूर्य का मार्ग इसे देखकर निर्धारित किया गया होगा कि सूर्योदय के पहले चमकीले तारे कहाँ रहते है। रविमार्ग तारो के हिसाब से अचर है, प्रतिवर्ष विशेष तारो से उतना ही दायें या बायें हट कर रविमार्ग रहता है। बरसो तक देखते रहने पर कुशाग्र-बुद्धि ऋषियो में से कुछ को रविमार्ग का ठीक पता (या प्राय ठीक पता) लग ही गया होगा।

चद्रमा के एक मास के मार्ग को निर्धारित करना अपेक्षाकृत बहुत सरल है। कोई भी दो-चार महीने तक चद्रमा को प्रति रात्रि देखता रहे तो उसे चद्र-मार्ग का अनुमान हो सकता है। यदि तारो का चित्र बना लिया जाय और उसमें चद्रमा की स्थितियो को प्रति रात्रि अकित किया जाय तो और भी शीघ्र पता चल जायगा कि चद्रमार्ग क्या है। चद्रमा तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७$\frac{1}{3}$ दिन में लगाता है। यही कारण है कि एक चक्कर को सत्ताइस (या कभी-कभी अट्ठाइस) भागो में बाँटा गया, जिनमें से प्रत्येक एक नक्षत्र कहलाया।

आकाश को हम गोले से निरूपित कर सकते है जिसे खगोल कहते है। इसका चित्र बगल मे दिखाया गया है। आकाश को देखने वाला इस गोले के केंद्र द्र पर रहता है, परतु चित्र में हम खगोल को बाहर से देख रहे है। रविमार्ग इस गोले को दो बराबर भागो मे बाँटता है। चद्रमार्ग भी खगोल को दो बराबर भागो में बाँटता है, परतु चद्रमार्ग रवि-मार्ग को ५° के कोण पर काटता है[1]। इसका परिणाम यह होता है कि चद्रमार्ग का आधा भाग रविमार्ग के उत्तर



खगोल।

रविमार्ग विषुवत को लगभग २३$\frac{1}{2}$ अश के कोण पर काटता है।

[1] चित्र में स्पष्टता के लिए इसे नहीं दिखाया गया है।

रहता है, आधा दक्षिण। इसलिए प्रत्येक मास चद्रमा आधे समय तक रविमार्ग के उत्तर रहता है, आधे समय तक दक्षिण।

खगोल पर बने चित्र मे चद्रमार्ग रविमार्ग को दो विदुओ मे काटता है। इनमे से प्रत्येक को 'पात' कहते है। यदि इन्हें पृथक-पृथक बताना हो तो एक को आरोही पात और दूसरे को अवरोही पात कहा जा सकता है[1]।

अब हम बता सकते है कि चद्रमार्ग किस प्रकार अपनी स्थिति बदलता रहता है। रविमार्ग और चद्रमार्ग के बीच का कोण नही बदलता, और न रविमार्ग चलता है, केवल दोनो पात पीछे मुँह धीरे-धीरे बराबर चलते रहते है और प्रत्येक पात एक चक्कर लगभग १८$\frac{2}{3}$ वर्ष में लगाता है। इससे सारा चद्रमार्ग अपना स्थान बदलता रहता है।

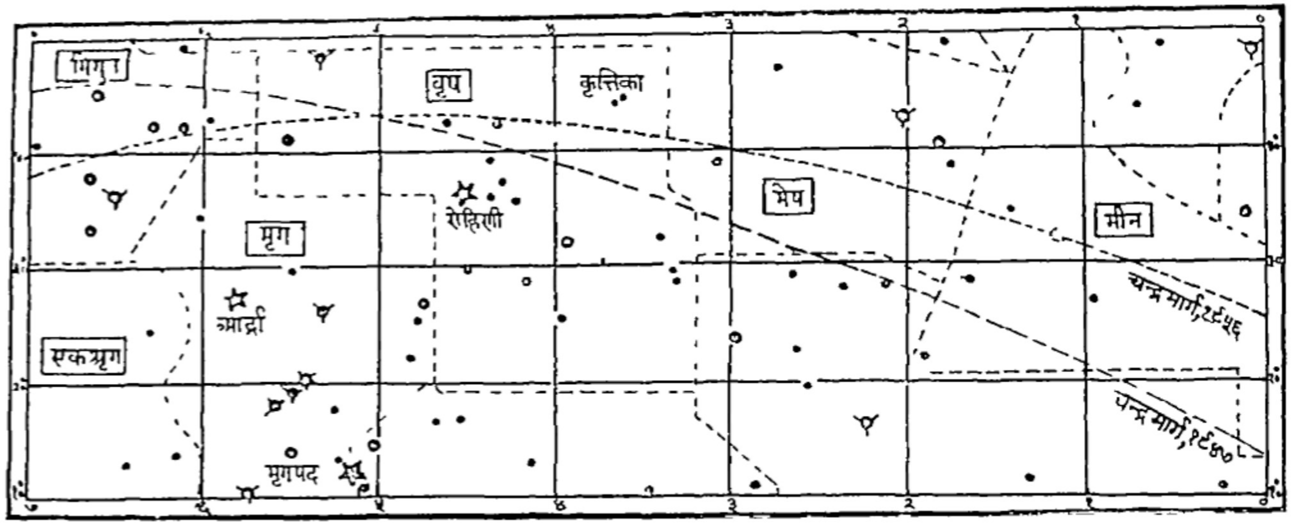
इसका एक परिणाम यह होता है कि यदि आज चद्रमार्ग का उत्तरतम भाग किसी तारे के पास है तो आज से ९ वर्ष बाद, जब आरोही पात आधा चक्कर लगाकर उलटी ओर पहुँच जायगा, चद्रमा उस तारे के निकटतम तब पहुँचेगा जब वह उससे लगभग १०° (दस अश) पर रहेगा (इस पन्ने की पीठ पर चित्र देखे)।

एक ही तारे के कभी समीप रहने और कभी दूर रहने से तारो को देखकर महीनो के बताने में कठिनाई पडती रही होगी। परतु पर्याप्त काल बीतने पर सब बातें स्पष्ट हो गयी होगी।

सभवत एक कठिनाई और पडी होगी। चद्रमा अपेक्षाकृत हमारे बहुत निकट है, तारे बहुत दूर है। इससे कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई-कोई तारा चद्रमा की आड में पड जाता है और तब छिप जाता है। बात वैसी ही है कि किसी दूरस्थ मदिर का किसी निकटस्थ पेड के पीछे छिपना। एक स्थान से मदिर पेड के ठीक पीछे पड सकता है, दूसरे स्थान से वह पेड की बगल मे दिखायी पड सकता है। इसी प्रकार दस-बीस मील के ही अतर पर ऐसा हो सकता है कि एक स्थान से कोई तारा चद्रमा के पीछे छिप जाय और दूसरे स्थान से वह छिप न पाये। इन सब बातो से चद्रमा के विषय में पर्याप्त कठिनाई हमारे प्राचीन नक्षत्र-दर्शो को पडी होगी।

इन सब कठिनाइयो को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, आदि, से वर्ष का अत और आरभ बताना सैकडो वर्षो में आया होगा।

[1] इनके विशेष नाम भी है (राहु और केतु), परतु उनसे पाठको को कुछ भ्रम हो सकता है। इसलिए उनका प्रयोग यहाँ नहीं किया जायगा।



चद्रमार्ग, १९४७ और १९५६ में

देखें कि ९ वर्ष मे चद्रमार्ग को स्थिति बहुत बदल जाती है। १९५६ के चद्रमार्ग पर चद्रमा बिंदुमय वृत्त से पैमाने के अनुसार दिखाया गया है, जिससे इसका अच्छा अनुमान किया जा सकता है कि चद्रमार्ग कितना हटता है। चद्रमार्ग की स्थितियो मे ९⅓ वर्ष में महत्तम अतर पडता है। १८⅔ वर्ष में चद्रमार्ग अपनी पुरानी स्थिति पर पहुँच जाता है।

और तैत्तिरीय ब्राह्मण के काल के बहुत पहले से चद्रमा का नियमित रूप से वेध आरभ हो गया रहा होगा ।

अमात या पूर्णिमांत ?

महीने का आरभ अमावस्या से होता था या पूर्णिमा से ? यदि महीने का अत अमावस्या से हो तो उसे अमात मास कहते है, पूर्णिमा से हो तो उसे पूर्णिमात कहते है। पूर्णिमात मासो में यह विशेपता है कि इधर चद्रमा पूर्ण हुआ तो उधर मास भी। अमात मास का आरभ तव होता है जव सूर्य और चद्रमा के भोगाशो (मोटे हिसाव से दिशाओ) का अतर शून्य होता है, और शून्य अतर से मास आरभ करना अधिक स्वाभाविक जान पडता है। सारे ज्योतिप में अमात मासो की गणना होती है। अधिमास (लौंद का महीना) भी अमावस्या से आरभ होता है और उसका अत आगामी अमावस्या पर होता है। परतु उत्तर प्रदेश में, और कई अन्य प्रदेशो में भी, पूर्णिमात मास ही चलते है।

प्राचीन साहित्य मे भी पूर्णिमात प्रथा का वर्णन मिलता है। पूर्णमासी या पौर्णमासी शब्द से ही स्पष्ट है कि मास के पूर्ण होने का यह दिन था।

तैत्तिरीय सहिता कहता है

वर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायां ॥

तै. सं. १ ६ ७.

अर्थ—पूर्णमासी के व्रत को वर्हि (कुशो) से ग्रहण करना चाहिए और अमावस्या के व्रत को वत्सो (=वछडो) से।

इससे स्पष्ट है कि मास पूर्णिमा पर पूर्ण होता था।

परतु तैत्तिरीय सहिता के एक अन्य स्थान पर पूर्णिमात और अमात दोनो पद्धतियो का आभास मिलता है

अमावास्यया मासान्संपाद्याहरुत्सृजंति अमावास्यया हि मासान् संपश्यति
पौर्णमास्या मासान्संपाद्याहरुत्सृजति पौर्णमास्या हि मासान्संपश्यंति ॥

तै सं ७ ५. ६. १५.

अर्थ—अमावस्या से मासो को समाप्त करके एक दिन को कुछ लोग छोड[1] देते है, क्योकि वे अमावस्या से ही मासो को देखते है। (कुछ लोग) पूर्णमासी मे

[1] अर्थात उस दिन कोई अनुष्ठान नहीं करते ।

मासो को समाप्त करके एक दिन छोड देते हैं क्योकि वे पूर्णमासी से मासो को देखते हैं ।

एक आगामी अध्याय में प्रमाण दिया जायगा कि सभवत तैत्तिरीय सहिता ३००० ई० पू० के पहले का सगृहीत ग्रथ है। ब्राह्मण इस दिनाक के बाद के ग्रथ हैं। न तो तैत्तिरीय सहिता मे और न किसी ब्राह्मण में चैत्र, वैशाख आदि नाम है। परतु ये नाम वेदाग ज्योतिप में है जो सभवत १२०० ई० पू० का ग्रथ है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि महीनो के नाम में परिवर्तन लगभग २००० ई० पू० मे हुआ होगा।

अध्याय ४
वैदिक काल में दिन, नक्षत्र, आदि

पक्ष

अति प्राचीन समय में सप्ताह का कुछ महत्त्व नही था, और न रविवार, सोमवार आदि नाम ही प्रचलित थे। ये नाम तो ग्रहो के आधार पर पड़े है और वेद, ब्राह्मण, संहिता आदि में इन नामो का कही उल्लेख नही है। उस काल में पक्ष और उसके उपविभाग चलते थे। पक्ष महीने में दो होते थे। इनका उल्लेख कई स्थानो में मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में पक्ष के उपविभागो के नाम इस प्रकार है —

> संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति ॥ एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्या-
> होरात्राणां नामधेयानि ॥ प्रस्तुतं विष्टुतं सुतासुन्वतेति ॥ एताव-
> नुवाकावपरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि ॥
>
> तै० ब्रा. ३. १०. १०. २.

अर्थ—सज्ञान, विज्ञान, दर्शा, दृष्टा ये दो-दो करके पूर्व पक्ष के अहोरात्र (= दिनरात) के नाम है। प्रस्तुत, विष्टुत, सुत, असुन्वत ये दो-दो करके अपर पक्ष के अहोरात्र के नाम है।

अन्य स्थानो में कुछ भिन्न नाम है, परतु सब सूचियो को यहाँ देना आवश्यक नही जान पड़ता।

वैदिक काल में तिथि

वैदिक काल के साहित्य में तिथि शब्द उस अर्थ में कही नही आया है जिसमें इसे हम आज लेते है। ऐतरेय ब्राह्मण मे तिथि की परिभाषा यो दी गयी है :

> यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः ॥
>
> ऐ. ब्रा. ३२. १०.

अर्थ—जहाँ चद्रमा अस्त होता और उदित होता है वह तिथि है।

इससे स्पष्ट है कि उस काल मे तिथि का कुछ और ही अर्थ था। पीछे तिथि का अर्थ वह समय हो गया जितने में चद्रमा सूर्य के सापेक्ष १२° चलता है और इसी

नक्षत्र बृहस्पतिर्देवताश्रेषा नक्षत्र सर्पा देवता मघा नक्षत्र पितरो देवता फल्गुनी नक्षत्र भगो देवता फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता हस्तो नक्षत्र सविता देवता चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्र वायुर्देवता विशाखे नक्षत्र-मिन्द्राग्नी देवतानूराधा नक्षत्र मित्रो देवता ज्येष्ठा नक्षत्रमिन्द्रो देवता विचृतौ नक्षत्र पितरो देवताषाढानक्षत्रमापो देवताषाढा नक्षत्र विश्वेदेवा देवता श्रोणा नक्षत्र विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्र वसवो देवता शत-भिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमजएकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता रेवती नक्षत्र पूषा देवताऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवतापभरणीनक्षत्र यमो देवता . ॥

तै, स ४ ४ १०

(तू है) (१) कृत्तिका नक्षत्र, अग्नि देवता। तू अग्नि की चमक है, प्रजापति की, विधाता की, सोम की। त्वारुचे (तुझको प्रकाश के लिए), त्वा द्युते (तुझको द्युति के लिए), त्वा भासे (तुझको कांति के लिए), त्वा ज्योतिषे (तुझको ज्योतिष के लिए)। (तू है) (२) रोहिणी नक्षत्र, प्रजापति देवता। (३) मृगशीर्ष नक्षत्र, सोम देवता। (४) आर्द्रा नक्षत्र, रुद्र देवता। (५) दोनो पुनर्वसु नक्षत्र, अदिति देवता। (६) तिष्य नक्षत्र, बृहस्पति देवता। (७) आश्लेषा नक्षत्र, सर्प देवता। (८) मघा नक्षत्र, पितर देवता। (९) पूर्वा फल्गुनी नक्षत्र, भग देवता। (१०) उत्तरा फल्गुनी नक्षत्र, अर्यमा देवता। (११) हस्त नक्षत्र, सविता देवता। (१२) चित्रा नक्षत्र, इन्द्र देवता। (१३) स्वाती नक्षत्र, वायु देवता। (१४) दो विशाखाओ का नक्षत्र, इन्द्राग्नी देवता। (१५) अनुराधा नक्षत्र, मित्र देवता। (१६) ज्येष्ठा नक्षत्र, इन्द्र देवता। (१७) दो विचृतो का नक्षत्र, पितर देवता। (१८) आषाढा नक्षत्र, आप देवता। (१९) आषाढा नक्षत्र, विश्वेदेवा देवता। (२०) श्रोणा नक्षत्र, विष्णु देवता। (२१) श्रविष्ठा नक्षत्र, वसु देवता। (२२) शतभिषक् नक्षत्र, इन्द्र देवता। (२३) प्रोष्ठपदा नक्षत्र, अजएकपात् देवता। (२४) प्रोष्ठपदा नक्षत्र, अहिर्बुध्नि देवता। (२५) रेवती नक्षत्र, पूषा देवता। (२६) अश्वयुज नक्षत्र, अश्विन् देवता। (२७) अपभरणी नक्षत्र, यम देवता।

तारा समूह

निम्न उद्धरण मे नक्षत्र का अर्थ तारा-समूह होना अधिक निश्चित हो जाता है

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भि सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्र मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥
पुण्य पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वातिः सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम् ॥ ३ ॥
अन्न पूर्वा रासता मे अषाढा ऊर्जं ये द्युत्तर आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवण· श्रविष्ठाः कुर्वता सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥

अथ सं. १९ ७

भावार्थ—मै अपने कल्याण के लिए वाणी से आकाश की पूजा करता हूँ जहाँ अट्ठाइस सुमति (=तारापुज?) सर्प के रूप में चमकते हैं[1] ॥ १ ॥

कृत्तिका और रोहिणी मेरे निमत्रण को सुगमता से स्वीकार करें। मृगशिर और आर्द्रा कल्याणकारी हो। पवित्र पुनर्वसू, पुष्य, ज्योतिर्मय आश्लेषा, मघा मेरे लिए अच्छे मार्ग को दिखायें ॥ २ ॥

दोनो पूर्व फल्गुनियाँ, हस्त नक्षत्र, चित्रा, स्वाति मेरे लिए सुखकारी हो। पूजा रूप विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और अच्छा नक्षत्र मूल मेरे लिए कल्याणप्रद हो ॥ ३ ॥

पहली अषाढा नक्षत्र मुझे अन्न दे। उत्तर अषाढा मुझे तेज दे। शुभ अभिजित् मुझे पुण्यशील वनाये। श्रवण और श्रविष्ठ मुझे शक्ति दें ॥ ४ ॥

वडे शतभिषक् मुझे स्वतत्रता दें। दोनो प्रोष्ठपद कल्याण करें। रेवती और अश्वयुज मुझे भाग्यशाली करें और भरणी नक्षत्र मुझे धन दे ॥ ५ ॥

[1] चंद्रमा तारो के सापेक्ष एक चक्कर २७$\frac{1}{3}$ दिन में लगाता है। २७$\frac{1}{3}$ से निकटतम पूर्ण संख्या २७ है। इसलिए चद्रमार्ग में या उसकी अगल-बगल में पड़ने वाले तारो में से २७ तारे चुन लिये गये थे जिनके वताने से सूचित किया जाता था कि आज आकाश में चंद्रमा किस तारे के पास है, परंतु कभी-कभी अट्ठाइस तारे इस काम के लिए चुने जाते थे, जैसे यहाँ, क्योकि २८ भी २७$\frac{1}{3}$ के निकट ही है। वाद में केवल इन्हीं तारो को लोग नक्षत्र कहते थे, यद्यपि नक्षत्र का अर्थ है कोई तारा। इसके वहुत वाद नक्षत्र का अर्थ हुआ चंद्रमार्ग (अथवा रविमाग) का ठीक सत्ताइसवाँ भाग, और इन भागों के नाम भी कृत्तिका, रोहिणी आदि ही पड़े।

इति० ३

ऋक् सहिता में ऋक्ष (=सप्तर्षि ?) की भी चर्चा है

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्त ददृशे कुह चिद्दिवेयु ॥

ऋ स १ २४ १०

अर्थ—ये जो ऋक्ष है, जो ऊपर आकाश में स्थित हैं और रात में दिखायी पडते है, वे दिन में कहाँ चले जाते है ?

इसपर शतपथ ब्राह्मण ने यह टीका की है कि—

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते ॥

श ब्रा २ १ २ ४

अर्थ—सप्तर्षियो को ही पहले ऋक्ष कहते थे ।

एक बात यहाँ देखने योग्य है कि पाश्चात्य ज्योतिष में सप्तर्षि तारामडल को अब भी उर्सा मेजर या ग्रेट बेयर (=ऋक्ष=भालू)[1] कहते है ।

कुछ अन्य तारो की भी चर्चा मिलती है । परतु सब उद्धरण यहां देना आवश्यक नही जान पडता ।

ग्रहण

ग्रहणो की चर्चा भी वेदो में है, परतु कही कोई ऐसी बात नही लिखी है जिससे पता चले कि वेदकालीन ऋषियो को ग्रहण के कारण का कितना पता था । परतु एक स्थान मे यह है

य वै सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुर ॥

अत्रयस्तमन्वविदन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥

ऋ स ५ ४० ९

जिस सूर्य को असुर के पुत्र स्वर्भानु ने अधकार में छिपा दिया था उसे अत्रि लोगो ने पा लिया । यह शक्ति दूसरो में तो थी नही ।

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सभवत अत्रि के पुत्र ग्रहण की किसी प्रकार की गणना कर सकते रहे होगे और पहले से बता सकते रहे होगे कि सूर्यग्रहण का अत कब होगा ।

[1]ऋक्ष शब्द के सस्कृत में दो अर्थ थे (१) तारा (२) रीछ । सभवत कभी भूल से ऋक्ष रीछ का पर्याय समझ लिया गया होगा ।

ग्रह

चद्रमार्ग मे अथवा उसके पास ही ग्रह रहते हैं। वे तारो के ही समान होते हैं, परंतु कुछ ग्रह उनसे बहुत चमकीले होते हैं। इसलिए अवश्य ही ग्रहो को प्राचीन ऋषियो ने देखा होगा। उन्होंने यह भी देखा होगा कि ये अन्य तारो के सापेक्ष चलते रहते है। कोई भी व्यक्ति जो चद्रमा की स्थिति जानने के लिए तारो को देखा करेगा अवश्य ही इसका पता पा जायगा। इसलिए ग्रहो की चर्चा स्वाभाविक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में बृहस्पति के जन्म का भी उल्लेख है। लिखा है कि—

बृहस्पति. प्रथम जायमान. ॥ तिष्यं नक्षत्रमभिसवभूव ॥

तै ब्रा ३. १. १

अर्थ—जब बृहस्पति पहले प्रकट हुआ वह तिष्य (=पुष्य) नक्षत्र के पास था।

दीक्षित ने इसका अर्थ यह लगाया है कि कभी पुष्य तारा बृहस्पति ग्रह की ओट में हो गया होगा (आधुनिक ज्योतिष बताता है कि यह संभव है)। अपनी गति के कारण जब दो-चार घंटे में बृहस्पति पुष्य से पृथक हुआ होगा तो लोगो ने समझा होगा कि बृहस्पति का जन्म हुआ। तब बृहस्पति पुष्य के निकट रहा होगा।

शतपथ ब्राह्मण में शुक्र की चर्चा यो है.

चक्षुषी हवा अस्य शुक्रामंथिनौ। तद्वा एष एव शुक्रो य एष तपति तद्य देष एतत्तपति तेनैवशुक्रश्चद्रमा एव मंथी ॥ १ ॥ .. इमाम् हैके शुक्रस्य पुरोरुचं कुर्वंति। अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमान इति तदेतस्य रूपं कूर्मो य एष तपतीति यदाहज्योतिर्जरायूरिति ॥ ८ ॥

शत ब्रा ४ २ १.

अर्थ—शुक्र और मथी उसकी दो आँखे है। शुक्र वही है जो चमकता है। यह चमकता है इसलिए इसको शुक्र कहा गया है। चद्रमा मथी है। कुछ लोग 'अय वेन' इन शब्दो से आरभ होने वाली ऋचा को 'शुक्र' के लिए पुरोरुवा मंत्र (अर्थात आरभ में पढे जाने वाले मंत्र) बनाते हैं। वह ऋचा यह है "अय वेनश्चोदयति पृश्निगर्भा, ज्योतिर्जराय रजसो विमान"।

तैत्तिरीय संहिता मे शुक्र और चद्रमा के साथ ही बृहस्पति का नाम आया है.

वस्व्यसि रुद्रास्यदितिस्यादित्यासि शुक्रासि चंद्रासि बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वतु।

तै. सं. १. २. ५.

अर्थ—(हे सोम को खरीदने वाले[1]) तू वस्वी है, अर्थात वसु आदि देवो का रूप है। रुद्र है, अदिति है, आदित्य है, शुक्र है, चद्र है, बृहस्पति है। तू सुख से रह।

अथर्व सहिता मे 'ग्रह' शब्द आया है —

> उत्पाता पार्थिवांतरिक्षाछनो दिविचरा ग्रहा ॥७॥
> श नोभूमिर्वेपमाना शमुल्कानिर्हत च यत् ॥८॥
> नक्षत्रमुल्काभिहत शमस्तु ॥९॥
> श नो ग्रहाश्चाद्रमसा शमादित्याश्च राहुणा ॥
> श नो मृत्युर्धूमकेतु श रुद्रास्तिग्मतेजस ॥१०॥
>
> अथ स १९ ९.

पृथ्वी और अन्तरिक्ष के उत्पात और द्यौलोक के ग्रह हमारे लिए कल्याणकारी हो जायें। कांपती हुई भूमि कल्याणकारक हो। और वह भी जो उल्का के साथ है। उल्का सहित नक्षत्र कल्याण कारक हो। राहु के साथ चाद्र ग्रह और सौर ग्रह कल्याणकारक हो। अनर्थकारी धूमकेतु कल्याणकारी हो। तीक्ष्ण प्रकाश वाले रुद्र कल्याणकारी हो।

जरमन आचार्य प्रोफेसर वेबर की सम्मति है कि भारत में ही ग्रहो का आविष्कार हुआ होगा, क्योकि इनके नाम विशेष रूप से भारतीय है[1]।

वैदिक काल में ही ज्योतिष के विशेषज्ञ दूसरो से कुछ पृथक-से हो गये थे। वाजसनेयी सहिता मे लिखा है

> प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्श ॥ वा स ३० १०.

अर्थ—विशेष ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्श के पास जाओ।

साराश

अब स्पष्ट हो गया होगा कि वैदिक काल मे ज्योतिष की सच्ची नीव पड गयी थी। मास चाद्र था और वर्ष का आरभ और अत ज्ञात करने के लिए ऐसी रीति का पता लगा लिया गया था कि कभी भी अधिक त्रुटि नही उत्पन्न हो सकती थी। वर्ष का आरम्भ लगभग पद्रह दिन इधर-उधर हो सकता था, परतु इससे अधिक नही। पूजा-पाठ के लिए अमावस्या और पूर्णिमा का बडा महत्त्व था। इस पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था कि नक्षत्रोंसे सबध रखने वाले कर्म उचित समय पर ही हो।

वेद के छ अगो मे एक ज्योतिष भी था और इस वेदाग की एक प्राचीन पुस्तक आज भी उपलब्ध है, जिसका विवेचन आगामी अध्याय मे किया जायगा।

[1] वेबर भारतीय साहित्य का इतिहास (अग्रेजी मे); पृष्ठ २५१।

अध्याय ५

वेदांग-ज्योतिष

वेदाग (अर्थात वेद का अग) होने के कारण वेदाग-ज्योतिप नामक ग्रथ पवित्र माना जाता था और इसे स्मरण रखना तथा पढना पुण्य का काम ममझा जाता था। इसी से यह पुस्तक लुप्त होने नही पायी है। परतु इसे ग्रथ या पुस्तक कहना वहुत उपयुक्त नही है, क्योकि इसमें कुल ४४ श्लोक है, इसे पुस्तिका कहना अविक उचित होगा।

दो पाठ

वदाग-ज्योतिप के दो पाठ मिलते है, एक ऋग्वेद ज्योतिप और दूसरा यजुर्वेद ज्योतिप। दोनो मे विषय प्राय एक-से है, परतु यजुर्वेद ज्योतिप में ४४ श्लोक है[1] और ऋग्वेद ज्योतिप मे केवल ३६। दोनो मे अधिकाश श्लोक एक ही है, परतु उनका क्रम दोनो मे विभिन्न है। कुछ श्लोको में शब्दो का भी कुछ अतर है, यद्यपि अर्थ एक ही है। ऋग्वेद ज्योतिप के सात श्लोक यजुर्वेद ज्योतिप में नही है और यजुर्वेद ज्योतिष के १४ श्लोक ऋग्वेद ज्योतिप में नही है। ऐसा मभव है कि ज्योतिप की ये दोनो पुस्तिकाएँ किसी वडे ग्रथ से सकलित की गयी है और उस वडे ग्रथ का अब लोप हो गया है। आधुनिक भाष्यकारो में मे कुछ की यही सम्मति है, परतु डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि ऋग्वेद ज्योतिप और यजुर्वेद ज्योतिष के श्लोको की गिनतियो में अतर इसलिए है कि यजुर्वेद ज्योतिप में टीका के रूप मे कुछ श्लोक वढा दिये गये है।

[1] कुछ सस्करणो में केवल ४३ श्लोक है, परतु डाक्टर शामशास्त्री द्वारा संपादित पुस्तक में ४४ श्लोक है।

टीकाओ का इतिहास

वेदाग-ज्योतिप के श्लोको को समझना वहुत कठिन है। कारण यह है कि अधिकाश श्लोको की भापा वहुत सक्षिप्त है और उनमें अनेक शब्द छोड दिये गये है। सच्ची वात तो यह है कि ये श्लोक सूत्र है जिनका उद्देश्य यह है कि गणना के नियम जानने वाले को आवश्यकता पडने पर नियम स्मरण हो आये, उनका यह अभिप्राय नही है कि नौसिखिये को पूरा-पूरा नियम वताया जाय। वे तो ऐसे ही है जैसे गणित-पुस्तको के अत मे दी गयी सूत्रो की सूची, जिसे वे ही समझ सकते है जो विषय को अच्छी तरह मनन कर चुके है।

वेदाग-ज्योतिष पर एक भाप्य सोमाकर का है, परतु यह अच्छा नही है। इस भाप्य मे स्पष्ट है कि भाप्यकार स्वय कई एक श्लोक का अर्थ नही समझता था। आधुनिक समय मे वेदाग-ज्योतिप का पहला सस्करण वेवर का था। उसके वाद सर विलियम जोन्स, ह्विटनी, कोलव्रुक, वेटली, डेविस, मैक्स म्यूलर, थीबो और कुछ अन्य विद्वानो ने श्लोको के अर्थ लगाने की ओर ध्यान दिया, परतु तब भी कुछ श्लोको का अर्थ सतोपजनक रीति से नही लग सका। थीवो ने इस विपय पर अपनी टिप्पणियाँ सन १८७९ में प्रकाशित की। इसके वाद कृष्ण शास्त्री गोडवोले, जनार्दन वालाजी मोडक और शकर वालकृष्ण दीक्षित ने उन श्लोको को समझाने की चेष्टा की जिनका अर्थ पूर्व टीकाकारो से नही लग पाया था, परतु पूर्ण सफलता नही मिली। सन १९०६ मे लाला छोटे लाल ने, अपना उपनाम वार्हस्पत्य रख कर, हिंदुस्तान रिव्यू मे कई लेख छपाये, जिनमे इन श्लोको के चातुर्यपूर्ण अर्थ थे, परतु वे विद्वानो को सतोपजनक नही जँचे। १९०८ मे महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने पडित नामक पत्रिका मे कई लेख प्रकाशित किये जिनमे उन्होने छोटे लाल के मतो का खडन किया और अपने मतानुसार पाठ का सशोधन करके अर्थ लगाया। १९३६ में डाक्टर आर० शामशास्त्री ने मैसूर सरकार के यत्रालय से एक सस्करण छपाया जिसमें वेदाग-ज्योतिप के श्लोको को सूर्यप्रज्ञप्ति आदि जैन ज्योतिप ग्रथो तथा ज्योतिष-करड में आये उन्ही विपयो पर दिये गये नियमो की सहायता से समझाया गया है। इन जैन पुस्तको ने वेदाग-ज्योतिप के नियमो को अपनाया था और उनकी विस्तृत व्याख्या दी थी। डाक्टर शामशास्त्री अपनी पूर्वोक्त पुस्तक मे लिखते है

"ग्यारहवाँ श्लोक, जो विद्वानो को बरावर चक्कर मे डाले था, सूर्यप्रज्ञप्ति मे प्राकृत में पूर्ण रूप से अनुवादित है।"

इस प्रकार अब वेदाग-ज्योतिप के सब श्लोको का पर्याप्त अच्छा अर्थ लग गया है।

वेदांग-ज्योतिष की विपय-सूची

वेदाग-ज्योतिष में पचाग वनाने के प्रारभिक नियम दिये गये हैं। इन नियमो से प्राचीन समय में यज्ञादि के लिए उचित समय का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। वाद में ये श्लोक पवित्र माने जाते थे और जव सूर्य-सिद्धात या अन्य सिद्धातो के अनुसार अधिक शुद्ध पचाग वनने लगे तव भी, जैसा पहले वताया जा चुका है, लोग इन श्लोको का पाठ करते थे। इसी कारण ये अव भी उपलब्ध हैं।

यजुर्वेद ज्योतिष के ४४ श्लोको में से प्रथम चार और अतिम दो में कोई गणित नही है। प्रथम श्लोक में प्रजापति की वदना है और दूसरे मे काल की। तीसरे में ज्योतिप-शास्त्र का उद्देश्य वताया गया है और चौथे में वताया गया है कि वेदागों में ज्योतिष सर्वश्रेप्ठ है। लिखा है :

यथा शिखा मयूराणां नागाना मणयो यथा ।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणा ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥

अर्थ—जैसे मोरो में शिखा है और नागो (सर्पों) में मणि, इसी प्रकार वेदांग-शास्त्रो में ज्योतिष चोटी पर है।

अतिम श्लोक में ज्योतिषी के लिए आशीर्वाद है। लिखा है कि.

"वह विद्वान जो चद्रमा, सूर्य और नक्षत्रो की गतियो को जानता है इस लोक में वाल-वच्चे पा कर सुखी होगा और (मृत्यु के पश्चात) चद्रमा, सूर्य और नक्षत्रो के लोक में जायगा।"

श्लोक ४२ ज्योतिष विपयक नही है। उसमें त्रैराशिक का प्रसिद्ध नियम है जो अकगणित में अत्यत उपयोगी है।

इस प्रकार ३७ श्लोक वच जाते हैं जिनमें ज्योतिप-सवधी विषय हैं।

युग

जैसा पहले वताया जा चुका है समय के लिए तीन प्राकृतिक एकाइयाँ हैं। वे हैं (१) अहोरात्र (अर्थात दिन-रात), (२) चाद्र मास, और (३) वर्ष। प्रत्येक प्राचीन पद्धति में प्रधानत इसी समस्या का हल रहता था कि इन एकाइयो में क्या सवध है। पृथ्वी के अपने अक्ष के परित एक वार घूमने से हमें अहोरात्र मिलता है, चद्रमा की एक पूर्णिमा (या अमावस्या) से आगामी पूर्णिमा (या अमावस्या) तक एक चाद्र मास होता है और यह पृथ्वी के परित चद्रमा के परिक्रमण के कारण उत्पन्न होता है। सूर्य पृथ्वी के परित चक्कर लगाता हुआ दिखायी पडता है, एक चक्कर का समय एक वर्ष होता है और यह एक वरसात से आगामी वरसात तक का समय है।

इन तीन एकाइयो के अतिरिक्त लोग यह भी जानना चाहते थे कि तारो के बीच चद्रमा आज कहाँ पर है। इसके लिए चद्रमार्ग को सत्ताइस बराबर भागो में बाँट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा गया है, जिनके नाम पहले बताये जा चुके है।

देखने की बात है कि एक चाद्र मास में पूरे-पूरे दिन नही होते। वस्तुत, आधुनिक नापो के अनुसार एक चाद्र मास में २९ ५३०५८८ दिन होते है। इसी प्रकार वर्ष में दिनो की सख्या भी पूर्ण सख्या नही है। एक वर्ष में ३६५ २४२ . दिन होते है। प्राचीन समय में दशमलव पद्धति चली नही थी और भिन्नो का ज्ञान भी सीमित ही था। इसलिए तब लोग युगो का प्रयोग करते थे जो बहुत ही सुदर प्रथा है। वे कई वर्षो की अवधि चुन कर उसे युग कहते थे और तब बताते थे कि इस युग में कितने वर्ष, कितने मास और कितने दिन होते है। इस प्रकार भिन्नो की आवश्यकता नही पड़ती थी। जब फल बेचने वाला कहता है कि पाँच आने में दो आम मिलेंगे तो वह भिन्नो से बचने की उसी रीति का प्रयोग करता है जिसे वेदाग-ज्योतिष ने मास मे दिनो की सख्या बताने के लिए अपनाया था।

प्रत्यक्ष है कि युग जितना ही लबा चुना जायगा, चाद्र मास की लबाई उतनी ही अधिक सूक्ष्मता से बतायी जा सकेगी। उदाहरणत, हम चाहें तो केवल दो चाद्र मासो का युग चुन कर कह सकते है कि एक युग में दो चाद्र मास होते है और उतने ही मे ५९ दिन होते है। तो इस प्रकार एक चाद्र मास मे ठीक-ठीक २९ ५ दिन होगे। परतु चाद्र मास इससे कुछ लबा होता है। तो भी इससे अधिक सूक्ष्मता इस छोटे से युग मे मासो और दिनो की सख्या को पूर्ण सख्याएँ रख कर हम ला ही नही सकते। यदि एक युग मे केवल एक दिन अधिक रखा जाय तो एक चाद्र मास मे दिनो की सख्या तुरन्त ३० हो जायगी, जो वास्तविकता से बहुत अधिक है। इससे स्पष्ट है कि अधिक सूक्ष्मता के लिए आवश्यक है कि अधिक लबा युग चुना जाय।

पञ्चवर्षीय युग

वेदाग-ज्योतिष मे ५ वर्ष का युग चुना गया है और बताया गया है कि एक युग मे १८३० दिन होते है और ६२ चाद्र मास होते है। १८३० को ६२ से भाग देकर हम देख सकते है कि वेदाग-ज्योतिष के अनुसार एक चाद्र मास मे २९ ५१६ दिन होते है। यह सख्या वास्तविकता से छोटी है। यदि एक युग मे १८३० के बदले १८३१ दिन माने जाते तो चाद्र मास की लबाई वास्तविकता से कुछ अधिक, तो भी पहले मान की अपेक्षा शुद्धतर निकलती, परतु एक युग मे १८३१ दिन मानने से वर्ष मे दिनो की सख्या ३६६ २ हो जाती, जो वास्तविकता से

अधिक दूर है। स्पष्ट है कि वेदाग-ज्योतिष ने भी पर्याप्त लवा युग नही चुना। अवश्य ही, चाद्र मास के लिए वेदाग-ज्योतिष का मान (२९ ५१६ दिन) साढे उनतिस दिन की तुलना में वहुत अच्छा है, परतु यह मान इतना सच्चा नही है कि वर्षो तक इसी मान से लगातार गणना की जाय और अतर न पडे। उदाहरणत, २० वर्ष में साढे तीन दिन की अशुद्धि पड जायगी और यदि कोई प्राचीन ज्योतिषी २० वर्ष तक ठीक २९ ५१६ दिन पर मास का अत मानता चला जाता तो वह देखता कि जब उसकी गणना से अमावस्या होती तो आकाश में चद्रमा हँसिया-सा दिखायी पडता रहता और वह तुरत देख लेता कि उसकी गणना मे लगभग ३½ दिन की अशुद्धि है।

अब स्पष्ट है कि वेदाग-ज्योतिष में एक मौलिक त्रुटि थी, यह कि युग बहुत छोटा चुना गया था। पीछे जो ज्योतिष ग्रथ लिखे गये उनमें युग अत्यत लवा रक्खा गया। उदाहरणत, आर्यभटीय में (जिसकी रचना पाँचवी शताब्दी ई० में हुई) ४३,२०,००० वर्षो का युग माना गया था।

भिन्न

ऐसा नही समझना चाहिए कि वेदाग-ज्योतिष में कही भिन्न है ही नही। परतु जहाँ-जहाँ भिन्नो की आवश्यकता पडी है वहाँ सब से छोटे भिन्न को कोई विशेष नाम दे दिया गया है। उदाहरणत, एक नक्षत्र के एक सौ चौवीसवे भाग को एक भाश कहा गया है। जिसे हम अव $\frac{1}{124}$ भाश लिखेंगे उसे वेदाग-ज्योतिष मे ११ भाग कहा गया है। इसी प्रकार एक दिन को ६०३ भागो में बाँट कर प्रत्येक को एक कला कहा गया है। फिर एक कला को १२४ भागो में बाँट कर प्रत्येक को एक काष्ठ कहा गया है और एक काष्ठ को पाँच भागो मे बाँट कर प्रत्येक को एक अक्षर कहा गया है। यह तो प्रत्यक्ष है कि ये नाम इसलिए नही रक्खे गये थे कि समय की पूर्वोक्त एकाइयाँ महत्त्वपूर्ण है। इन एकाइयो की कल्पना केवल इसलिए की गयी थी कि ग्रथकार को दिन के ऐसे भिन्नो की आवश्यकता पड गयी थी जिनके हर मे ६०३×१२४×५ आता है और उस समय भिन्नो का प्रचलन कम था, और सभवत इसलिए भी कि छद रचने में नामयुक्त भिन्नो से सुगमता होती थी। सौभाग्यवश भिन्नो की आवश्यकता वहुत कम पडी, अन्यथा नामो का एक वृहत समूह खडा हो जाता, जिसे गढने मे भी कठिनाई पडती और स्मरण रखने में भी।

वेदांग ज्योतिष मे क्या है

जैसा पहले वताया गया है यजुर्वेद ज्योतिष के ६ श्लोको का गणित से कोई सवध नही है। शेष श्लोको मे से २१ मे या तो परिभाषाएँ है या तथ्य वताये

गये हैं। शेष १६ श्लोकों में ज्योतिष घटनाओं की गणना के लिए नियम दिये गये हैं।

परिभाषाओं में आढक, द्रोण, कुडव, नाडिका, पाद, काष्ठ, कला, मुहूर्त और ऋतुशेष की परिभाषाएँ हैं। तथ्यों में यह बताया गया है कि युग में कितने वर्ष, मास और दिन होते हैं, एक युग में तारों का उदय कितनी बार होता है, युग में जो दो अधिमास (लौंद के महीने) लगते हैं उन्हें कब-कब लगना चाहिए, और इसी प्रकार की कुछ अन्य बातें। युग के आरंभ वाले क्षण पर सूर्य और चंद्रमा की क्या स्थितियाँ रहती हैं इनका भी स्पष्ट उल्लेख है। यह भी बताया गया है कि उत्तरायण और दक्षिणायन का आरंभ कब-कब होता है। पाठक को ज्ञात होगा कि इन क्षणों पर सूर्य अपनी वार्षिक परिक्रमा में[1] क्रमानुसार उत्तर और दक्षिण जाना आरंभ करता है। तीन श्लोकों में २७ नक्षत्रों के देवताओं के नाम गिनाये गये हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि यह गणित-ज्योतिष के लिए बेकार है, क्योंकि आगे चलकर एक श्लोक में सत्ताइसों नक्षत्रों को एक विशेष क्रम में प्रदर्शित किया गया है और संक्षिप्तता के विचार से यह आवश्यक था कि एक-एक अक्षर से ही एक-एक नक्षत्र को इंगित किया जाय। इस काम में जहाँ दुविधा पड़ने का भय था वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से कोई लाक्षणिक अक्षर लेकर काम बड़ी सुन्दरता से पूरा किया गया है। इसलिए, यदि देवताओं का नाम न बताया जाता तो उस श्लोक को समझना ही असंभव हो जाता, यही पूर्वोक्त श्लोकों की महत्ता है। एक श्लोक का संबंध विशुद्ध फलित ज्योतिष से है, उसमें बताया गया है कि कौन-कौन से नक्षत्र अशुभ हैं।

एक श्लोक में बताया गया है कि सबसे लंबे दिन का मान क्या है। यह महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हम पता चला सकते हैं कि लेखक के निवास-स्थान का अक्षांश क्या था। इस पर विचार आगे चलकर किया गया है।

शेष १६ श्लोकों में, जैसा ऊपर बताया गया है, गणना के नियम हैं। इनमें से एक श्लोक में बताया गया है कि किन तिथियों का क्षय होता है। पाठक को ज्ञात होगा कि भारतीय पद्धति में तिथियाँ क्रमानुसार सभी नहीं आती। बहुधा एक

[1] संभवतः कोई पाठक आपत्ति करेगा कि सूर्य तो स्थिर है, पृथ्वी परिक्रमा करती है। परन्तु इस बात को जानते हुए भी सुविधा रहने पर ज्योतिष में यह कह देने की प्रथा है कि "सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है"। यह सूर्य की आभासी गति है और किसी को इससे भ्रम नहीं होता।

तिथि छूट जाती है, छूटी हुई तिथि को ही क्षय तिथि कहते हैं। उदाहरणत, एक दिन तृतीया हो सकती है और आगामी दिन चतुर्थी न होकर पचमी हो सकती है। तव कहा जायगा कि चतुर्थी का क्षय हुआ। तिथियो के क्षय होने का कारण यह है कि एक चाद्र मास मे लगभग २९½ दिन होते है और ३० तिथियाँ होती है। इसलिए दो महीने मे ५९ दिन और ६० तिथियाँ होती है। इससे स्पष्ट है कि लगभग दो महीने में औसतन एक तिथि का क्षय तो होगा ही, अन्यथा तिथियो और मास का सबध टूट जायगा।

आठ श्लोको मे वताया गया है कि पूर्णिमा या अमावस्या पर अपने नक्षत्र मे चद्रमा किस स्थान पर रहता है। तीन श्लोकों में वताया गया है कि नक्षत्र मे सूर्य के स्थान का पता कैसे लगाया जाय। तीन श्लोको मे वताया गया है कि विपुव की गणना कैसे की जाय (विषुव पर दिन और रात दोनो वरावर होते है)। एक श्लोक में वताया गया है कि योग का कैसे पता लगाया जाय। योग सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का जोड है, और इस जोड के न्यूनाधिक होने के अनुसार इसे कई विशेष नाम दे दिये गये है। पीछे योग के अनुसार शुभाशुभ विचार होने लगा, जो फलित ज्योतिष के अतर्गत है।

वेदाग-ज्योतिष के अनुसार तिथि-नक्षत्र

वेदाग-ज्योतिष मे पचाग-पद्धति स्थूल रूप से वही है, जो वर्तमान समय मे हिंदुओं में प्रचलित है। महीने चद्रमा के अनुसार चलते थे, जैसे अव भी चलते है। एक मास को ३० भागो में वाँटा जाता था और प्रत्येक को एक तिथि कहते थे। तिथि और चद्रमा की आकृति का सबध वनाये रखने के लिए कोई-कोई तिथियाँ छोड दी जाती थी, जिसका कारण ऊपर समझाया जा चुका है। वर्ष में साधारणत १२ महीने होते थे, परतु आवश्यकतानुसार वर्ष में एक महीना वढा दिया जाता था, जिसमें वर्ष के आरभ और ऋतु का सबध न टूटने पाये।

एक अद्भुत सूत्र

दो पक्तियो के एक सूत्र में सत्ताइसो नक्षत्र एक विशेष क्रम में इगित किये गये है। उस श्लोक में कोई नक्षत्र किस स्थान में आता है इसे गिन कर तुरंत जाना जा सकता है कि जव सूर्य उस नक्षत्र में रहता है तो पूर्णिमा या अमावस्या के क्षण नक्षत्र के आदि विंदु से सूर्य कितना हटा रहता है। २७ अक्षरो को इस प्रकार चुनना कि उनसे विना किसी प्रकार की दुविधा के सत्ताइसो नक्षत्रो का पता चले, फिर उन्हें उस क्रम मे रखना जो गणना के अनुसार प्राप्त होता है, और उनसे एक श्लोक

वना देना सूत्र वनाने की कला में अवश्य ही आश्चर्यजनक निपुणता है। श्लोक यह है

जौद्राग खे श्वे ही रो षा चिन्मूषक्ण्य सूमा धान
रेमृधास्वापोज कृष्योहज्येष्ठा इत्यृक्षालिंगं या।

इस श्लोक मे नक्षत्र-सूचक अक्षर नक्षत्र के नाम का आदि, मध्य, या अंत वाला अक्षर है। जहाँ ऐसा करने पर भ्रम होने का डर था, या जहाँ एक ही नाम के दो नक्षत्र थे, वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम मे अक्षर चुना गया है। नीचे प्रत्येक अक्षर का तात्पर्य दिया जाता है[1]

१ ज्यौं = अश्वयुजौ = अश्विनी,
२ द्रा = आर्द्रा,
३ ग = भग (पूर्वा फाल्गुनी के देवता),
४ खे = विशाखे,
५ श्वे = विश्वेदेवा (उत्तराषाढा के देवता),
६ हि = अहिर्बुध्न्य (उत्तरा भाद्रपदा के देवता),
७ रो = रोहिणी,
८ षा = आश्लेषा,
९ चित् = चित्रा,
१० मू = मूल,
११ षक् = शतभिषक्,
१२ ण्ये = भरण्य, भरणी,
१३ सू = पुनर्वसू,
१४ मा = अर्यमा (उत्तरा फाल्गुनी के देवता),
१५ धा = अनुराधा'
१६ न = श्रवण,
१७ रे = रेवती,
१८ मृ मृगशिरा,
१९ घा = मघा,
२० स्वा = स्वाती,
२१ प = अज (पूर्वाषाढा के देवता),

[1] विज्ञान, दिसम्बर, १९४४, पृष्ठ ५४।

२२ अज = अजएकपात् (पूर्वा भाद्रपदा के देवता),
२३ कृ = कृत्तिका;
२४ ष्य = पुष्य ;
२५ ह = हस्त,
२६ ज्ये = ज्येष्ठा,
२७ ष्ठा = श्रविष्ठा।

वेदांग-ज्योतिष का काल

वेदाग-ज्योतिष में यह बताया गया है कि विषुव के अवसर पर (जब दिन और रात दोनो बराबर होते है) तारो के सापेक्ष सूर्य कहाँ रहता है। देखने की बात है कि यह स्थिति सदा एक-सी नही बनी रहती। यह धीरे-धीरे बदलती रहती है और विषुव के इस चलने को 'अयन' कहते है। इसलिए वेदाग-ज्योतिष में बतायी गयी स्थिति से उस ग्रथ का काल-निर्णय हो सकता है। गणना से पता चलता है कि यह लगभग १२०० ई० पू० की बात होगी। यूरोपीय विद्वानो में से कई एक वेदाग-ज्योतिष की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने को तैयार नही है। उनका कहना है कि तारो के सापेक्ष सूर्य की स्थिति नापना कठिन है और इसलिए इसमें अधिक त्रुटि हो जाने की सभावना है। फिर यह भी सभव है कि वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार ने अपने समय मे स्वय विषुव पर सूर्य की स्थिति का वेध न किया हो। उसने किसी प्राचीन प्रमाण के आधार पर सुनी-सुनायी बात लिख दी हो। यह तो मानना पडेगा कि त्रुटि की सभावना है और पुरानी बात के लिखे जाने की सभावना है, परतु निष्पक्ष विचार मे यह भी मानना पड़ेगा कि त्रुटि ऐसी भी हो सकती है जिसके कारण वेदाग-ज्योतिष की प्राचीनता कुछ कम निकली हो। कुछ भी हो, अन्य प्रमाण के अभाव में यही मानना उचित होगा कि वेदाग-ज्योतिप का काल लगभग १२०० ई० पू० है। आगामी अध्याय में इन बातो पर अधिक विस्तार से विचार किया जायगा।

वेदाग ज्योतिष का लेखक

ऋग्वेद ज्योतिप के श्लोक २ में[१] और यजुर्वेद ज्योतिप के श्लोक ४३ मे यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पुस्तक के ज्योतिप का ज्ञान लेखक को महात्मा लगध से मिला है। यद्यपि इन दो श्लोको की रचना विभिन्न है तो भी अर्थ एक ही है।

[१] कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन.।

बना देना सूत्र बनाने की कला में अवश्य ही आश्चर्यजनक निपुणता है। श्लोक यह है

जौद्राग खे श्वे ही रो षा चिन्मूषक्ण्य सूमा धान
रेमृघास्वापोज कृष्योहज्येष्ठा इत्यृक्षालिंगं या।

इस श्लोक में नक्षत्र-सूचक अक्षर नक्षत्र के नाम का आदि, मध्य, या अंत वाला अक्षर हैं। जहाँ ऐसा करने पर भ्रम होने का डर था, या जहाँ एक ही नाम के दो नक्षत्र थे, वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से अक्षर चुना गया है। नीचे प्रत्येक अक्षर का तात्पर्य दिया जाता है[1]

१ ज्यौ = अश्वयुजौ = अश्विनी,
२ द्रा = आर्द्रा,
३ ग = भग (पूर्वा फाल्गुनी के देवता),
४ खे = विशाखे,
५ श्वे = विश्वेदेवा (उत्तराषाढा के देवता),
६ हि = अहिर्बुध्न्य (उत्तरा भाद्रपदा के देवता),
७ रो = रोहिणी,
८ षा = आश्लेषा,
९ चित् = चित्रा,
१० मू = मूल,
११ षक् = शतभिषक्,
१२ ण्ये = भरण्य, भरणी,
१३ सू = पुनर्वसू,
१४ मा = अर्यमा (उत्तरा फाल्गुनी के देवता),
१५ धा = अनुराधा
१६ न = श्रवण,
१७ रे = रेवती,
१८ मृ = मृगशिरा
१९ घा = मघा,
२० स्व = स्वाती,
२१ प = अप (पूर्वाषाढा के देवता),

[1] विज्ञान, दिसम्बर, १९४४, पृष्ठ ५४।

२२ अज = अजएकपात् (पूर्वा भाद्रपदा के देवता),
२३ कृ = कृत्तिका;
२४ ष्य = पुष्य ;
२५ ह = हस्त,
२६ ज्ये = ज्येष्ठा,
२७ ष्ठा = श्रविष्ठा ।

वेदांग-ज्योतिष का काल

वेदाग-ज्योतिष में यह बताया गया है कि विपुव के अवसर पर (जब दिन और रात दोनो बराबर होते है) तारो के सापेक्ष सूर्य कहाँ रहता है। देखने की बात है कि यह स्थिति सदा एक-सी नही बनी रहती। यह धीरे-धीरे बदलती रहती है और विषुव के इस चलने को 'अयन' कहते है। इसलिए वेदाग-ज्योतिष में बतायी गयी स्थिति से उस ग्रथ का काल-निर्णय हो सकता है। गणना से पता चलता है कि यह लगभग १२०० ई० पू० की बात होगी। यूरोपीय विद्वानो में से कई एक वेदाग-ज्योतिष की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने को तैयार नही है। उनका कहना है कि तारो के सापेक्ष सूर्य की स्थिति नापना कठिन है और इसलिए इसमें अधिक त्रुटि हो जाने की सभावना है। फिर यह भी सभव है कि वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार ने अपने समय में स्वय विषुव पर सूर्य की स्थिति का वेध न किया हो। उसने किसी प्राचीन प्रमाण के आधार पर सुनी-सुनायी बात लिख दी हो। यह तो मानना पडेगा कि त्रुटि की सभावना है और पुरानी बात के लिखे जाने की सभावना है, परतु निष्पक्ष विचार मे यह भी मानना पडेगा कि त्रुटि ऐसी भी हो सकती है जिसके कारण वेदाग-ज्योतिष की प्राचीनता कुछ कम निकली हो। कुछ भी हो, अन्य प्रमाण के अभाव में यही मानना उचित होगा कि वेदाग-ज्योतिष का काल लगभग १२०० ई० पू० है। आगामी अध्याय मे इन बातो पर अधिक विस्तार से विचार किया जायगा।

वेदाग ज्योतिष का लेखक

ऋग्वेद ज्योतिष के श्लोक २ में[1] और यजुर्वेद ज्योतिष के श्लोक ४३ में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पुस्तक के ज्योतिष का ज्ञान लेखक को महात्मा लगध से मिला है। यद्यपि इन दो श्लोको की रचना विभिन्न है तो भी अर्थ एक ही है।

[1] कालज्ञान प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन.।

परतु स्वय लेखक कौन है इस विषय पर मतभेद है। पुस्तक के प्रथम श्लोक से कुछ लोग यह कहते है कि लेखक का नाम 'शुचि' था, परतु इस अर्थ के बदले कि "मै, शुचि, बताऊँगा " यह अर्थ भी लग सकता है कि "मै, शुद्ध हो कर, बताऊँगा "।

यह कहना कठिन है कि लगध महात्मा कौन थे, क्योकि सस्कृत साहित्य में उनका नाम अन्यत्र कही नही आता। परतु लगध शब्द सस्कृत मूल से उत्पन्न हुआ नही जान पडता। इससे कुछ लोगो की धारणा है कि वे कोई विदेशी रहे होगे और भारत में ज्योतिष का ज्ञान विदेश से आया होगा।

वेदाग-ज्योतिष में यह दिया हुआ है कि बडे-से-बडे दिन की लबाई क्या थी। इससे हम इसका पता लगा सकते है कि जिस स्थान मे ग्रथकार रहता था वहाँ का अक्षाश क्या था। गणना मे पता चलता है कि अक्षाश लगभग ३५° रहा होगा। उत्तर काश्मीर या अफगानिस्तान के स्थानो में यह अक्षाश सभव है। इसलिए सभावना यह है कि वेदाग-ज्योतिष का ग्रथकार कही वही का निवासी था। दिन-मान को, अर्थात दिन की लबाई को, लोग छेद वाली पेंदी के बरतन का पानी में डूबना गिनकर सुगमता से नाप सकते थे। इसलिए ऐसा मानने में कोई आपत्ति नही दिखायी पडती कि दिनमान त्रुटिहीन होगा और इसलिए उसके आधार पर निकाले गये अक्षाश पर भरोसा किया जा सकता है।

केवल मध्यक गतियाँ

कुछ बाते वेदाग-ज्योतिष में नही है जिनको रहना चाहिए था। ग्रथकार ने कही इसकी चर्चा नही की है कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग से नही चलते। यह मानकर कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग से चलते है, जो यथार्थ नही है, सब गणना की गयी है। इसलिए वेदाग-ज्योतिष में सब तिथियाँ बराबर लबाई की मानी गयी है। पीछे के सब ज्योतिष ग्रथो में (सूर्य-सिद्धात, आदि में) चद्रमा और सूर्य के असमान कोणीय वेगो पर विचार किया गया है, तिथियाँ छोटी-बडी मानी गयी है और उनकी गणना के लिए आवश्यक नियम दिये गये है। सभवत वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार को इसका पता न रहा होगा कि चद्रमा और सूर्य असमान कोणीय वेग से चलते है। यह भी हो सकता है कि उसने गणना की सुगमता के लिए माना हो कि ये पिड समान वेग से चलते है, परतु ऐसा अधिक सभव नही जान पडता।

वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार को अयन का पता नही था और इसमें कुछ आश्चर्य भी नही है कि उस प्राचीन काल में इस सूक्ष्म गति का ज्ञान नही था।

वेध और गणना मे अतर

एक वात अवश्य विचित्र है। यह कही नही वताया गया है कि यदि वेध और गणना मे अतर पड जाय तो उमका समाधान कैसे करना चाहिए। हम देख चुके है कि युग के छोटा होने के कारण, और सभवत. वेधो के पर्याप्त सूक्ष्म न होने के कारण, वर्प और मास की लवाइयो में त्रुटियाँ थी, और वेदाग-ज्योतिष के नियमो के लगातार प्रयोग से कुछ वर्षो में इतना अतर पड सकता था कि उसकी अवहेलना नही हो सकती थी। इसलिए कोई इस प्रकार का नियम अवश्य होना चाहिए था कि इतने वर्षो में इतने दिन छोड दो, या वेध करके देख लो और आवश्यक दिन छोड दो।

हम अव केवल अनुमान कर सकते है कि क्या होता रहा होगा। या तो ऐसे नियम थे और अव उनका लोप हो गया है, जैसा लाला छोटे लाल का मत है, या कोई नियम नही थे और समय-समय पर गणना में सशोधन करके गणना के परिणाम को आँख से देखी वातो के अनुसार कर दिया जाता था, जैसा डाक्टर शामशास्त्री का मत है। लाला छोटे लाल ने वहुत जोरदार शब्दो मे अपने मत का समर्थन किया है कि वेदाग-ज्योतिष किसी वडे ज्योतिप-ग्रथ का साराश-मात्र है, परतु मुझे भी ऐसा लगता है कि सपूर्ण नियम न रहे होगे। केवल कभी-कभी गणना में कुछ घटती-वढती कर दी जाती रही होगी, जैसे पीछे वीज-सस्कार करके दृक्-तुल्यता लायी जाती थी। डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि एक श्लोक में इमका सकेत है कि आवश्यकता पडने पर गणना में घटती-वढती कर देनी चाहिए, परतु दूसरो को यह अर्थ स्वीकार नही है और निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा नही जा सकता।

व्रत आदि के लिए दिन निश्चित करने वालो को इसका पता अवश्य रहा होगा कि वेदाग-ज्योतिष के नियम स्थूल है और वे आवश्यकता के अनुसार, आँख मे देख कर, गणना में सशोधन कर लेते रहे होगे, परतु सभवत वे ऐसे नियम नही वना पाये होगे जिससे अधिक सच्ची गणना हो सके।

यह भी आश्चर्य की वात है कि वेदाग-ज्योतिष मे एक वर्प में ३६६ दिन माने गये है, जव वर्प की सच्ची लवाई लगभग ३६५$\frac{१}{४}$ दिन है। यह तो अवश्य सत्य है कि वर्प का आरभ या अत ऋतु देखकर वताना वहुत कठिन है, एक वेध में कई दिनो का अतर पड सकता है। परतु कई वर्पो का पडता वैठाने पर (औसत लेने पर) अधिक शुद्ध मान सुगमता से निकल सकता था। वर्पमान अशुद्ध रहने से ऋतु और वर्प के आरभ मे अतर लगातार वढता जाता है। यदि १०० वर्पो तक सदा ३६६ दिन

के वर्ष रक्खे जायँ तो अत में गणना से प्राप्त और परपरागत ऋतुओ में लगभग ७५ दिन का अतर पड जायगा, अर्थात बरसात का आरभ तभी हो जायगा जब गणना के अनुसार केवल वैशाख या जेठ बीता रहेगा, और जब लू चलनी चाहिए। अवश्य ही वर्ष को ठीक रखने के लिए कुछ अन्य भी नियम रहे होंगे, या वेदाग-ज्योतिष के बाद बने होंगे, परतु वे अब लुप्त हो गये है।

दुर्भाग्य की बात है कि १२०० ई० पू० और लगभग ५०० ई० के बीच बने ज्योतिष ग्रथो का, या इस दीर्घ काल में ज्योतिष की उन्नति का, हमें कुछ भी पता नही है। ५०० ई० के लगभग कई ग्रथ बने और उनमें से महत्त्वपूर्ण ग्रथो का वर्णन आगामी अध्यायो में दिया जायगा।



अध्याय ६

वेद और वेदांग का काल

कृत्तिकाओं का पूर्व मे उदय

इस अध्याय में वैदिक साहित्य के उन उल्लेखो पर विवेचन किया जायगा जिनसे वेद तथा अन्य ग्रथो के काल पर कुछ प्रकाश पड़ता है। कुछ उल्लेख इस सवध में विशेष महत्त्वपूर्ण है। इनमें सब से अधिक निश्चयात्मक शतपथ ब्राह्मण का वह वाक्य[1] है जो बताता है कि कृत्तिकाएँ "पूर्व दिशा से नही हटती, अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा से हटते हैं।"[2] इसमे तो कोई सदेह है नही कि कृत्तिकाएँ तारो के उसी छोटे समूह की सदस्याएँ है जिसे आज भी वही नाम दिया जाता है और जिसे अँग्रेज़ी में प्लाइडीज़ कहते है[3]। सभी इसे स्वीकार करते है कि दिशा उस समय की बतायी गयी है जब कृतिकाएँ उदित होती है[4]। फिर, पूर्वोक्त नियम इस अभिप्राय से बताया गया है कि उसकी सहायता से यज्ञ की वेदी की दिशा ठीक की जाय। इसलिए इसमे कोई सदेह नही रह जाता कि ठीक पूर्व दिशा जानने के लिए ही कृत्तिकाओं के उदित होने की दिशा पूर्व दिशा बतायी गयी है। यह बात और भी पक्की

[1] २।१।२।३।

[2] एगलिंग के अनुवाद के आधार पर (देखो सेकरेड वुक्स ऑव दी ईस्ट, १२।

[3] वैदिक इंडेक्स, १। पृष्ठ ४१५।

[4] दीक्षित: इंडियन ऐंटीक्वेरी, २५।२४५, और उसके वाद के लोग। जहाँ तक मैंने देखा है, केवल एक व्यक्ति ने इस उद्धरण से दूसरा परिणाम निकाला है। दीनानाथ चुलैट ने अपने 'वेदकाल-निर्णय' नामक (इंदौर से प्रकाशित) ग्रंथ में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यह ३,००,००० ई० पू० की बात है। इस पुस्तक का सारांश आई० एच० क्यू० ९(१९३३)।९२३ में छपा है।

इससे हो जाती है कि कहा गया है कि अन्य नक्षत्र पूर्व से हटे रहते हैं। कृत्तिकाओं के पूर्व में उदित होने से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि यह किस काल की बात है, क्योंकि अयन के कारण (पृष्ठ ७२ देखो) कोई तारा पूर्व में थोड़े ही काल तक उदित होगा, और जैसे-जैसे समय बीतेगा तैसे-तैसे वह पूर्व से अधिक हट कर उदित होगा। अंतर साढ़े छ हजार वर्ष तक बढ़ता जायगा और तब घटने लगेगा। लगभग १३,००० वर्ष बाद तारा फिर पूर्व में उदित होगा। इसलिए इस बात की गणना सुगमता से हो सकती है कि कृत्तिकाएँ कब पूर्व में उदित होती थी। परिणाम यह निकलता है कि ऐसा २५०० ई० पू० में होता था[1]।

इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक कठिन है कि शतपथ ब्राह्मण अपने समय की बात बता रहा है या केवल किसी प्राचीन बात को दोहरा रहा है। दीक्षित[2] का विचार है कि यह बात लगभग शतपथ ब्राह्मण के ही समय की है, प्राचीन नहीं। उनका कहना है कि यह बात तब लिखी गयी होगी जब कृत्तिकाएँ वस्तुत पूर्व में उदित होती थी, क्योंकि वर्तमान काल का प्रयोग करके लिखा गया है कि कृत्तिकाएँ पूर्व में उदित होती हैं। यदि केवल इसी एक तर्क पर भरोसा करना होता तो परिणाम को पक्का मानना कठिन होता, परतु, जैसा नीचे दिखाया गया है, अन्य तर्कों से भी यही समय प्राप्त होता है, और यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि प्रत्येक बार ब्राह्मण ग्रंथ पुरानी ही बात दोहरा रहे हैं। परतु नवीन तर्कों पर विचार करने के पहले यह देख लेना अच्छा होगा कि पूर्वोक्त रीति से प्राप्त समय के विरुद्ध औरों को क्या आपत्तियाँ हैं।

आपत्तियाँ

मैकडॉनेल और कीथ[3] ने आपत्तियो को इस प्रकार सक्षेप में दर्शाया है —

शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोक्त कथन पर इसलिए भरोसा न करना चाहिए कि (क) बौधायन श्रौत सूत्र[4] मे भी ऐसी ही सूचना है, जिसके साथ एक अन्य सूचना

[1] दीक्षित ने, आई० ए०, २४। २४५-२४६ में, गणना करके ३,००० ई० पू० प्राप्त किया है, परतु अयन का जो मान उन्होंने लिया था वह कुछ अशुद्ध था। २,५०० ई० पू० अधिक ठीक तिथि है। देखो के हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी मेमॉयर्स ऑव दि आर्किऑलॉजिकल सरवे ऑव इडिया, १८ (१९२४)।

[2] वही, २८६।

[3] वैदिक इडेक्स, १।४२७।

[4] १८।५।

भी है, जो, वार्थ के अनुसार[1], केवल छठवी शताब्दी ई० या उसके वाद सच हो सकती है, और (ख) वही वात जो शतपथ ब्राह्मण में है माध्यदिन पाठ[2] में भी है, परतु उसके साथ यह भी लिखा है कि कृत्तिकाओं की सख्या अन्य नक्षत्रो के तारो की सख्या से अधिक है, अन्य नक्षत्रो में केवल एक, दो, तीन, या चार तारे होते है, या काण्व पाठ[3] के अनुसार, चार तारे होते है।

मैकडॉनेल और कीथ यह भी कहते है कि ब्राह्मण ग्रथो के इन उल्लेखो पर पूर्णतया विश्वास नही किया जा सकता, क्योकि हस्त मे पाँच तारे थे[4] (नाम भी हस्त इसलिए पडा कि हाथ मे पाँच अँगुलियाँ होती है) और सभवत ऋग्वेद[5] में भी हस्त में पाँच तारो के होने का सकेत है।

वौधायन श्रौत सूत्र

परतु ये आपत्तियाँ सवल और ग्राह्य नही जान पडती। वौधायन श्रौत सूत्र मे जिस वाक्य का उल्लेख किया है वह यों है —

"शाला को यहाँ नापना चाहिए, जिसकी छानी की वल्लियाँ पूर्व की दिशा मे रहती है। कृत्तिकाएँ पूर्व की दिशा से नही हटती। उनकी ही दिशा में इमे नापना चाहिए, यह एक रीति है। श्रोण की दिशा में नापे यह दूसरी है, चित्रा और स्वाती के मध्य नापे यह तीसरी।"

यहाँ पहली रीति तो वही है जो शतपथ ब्राह्मण में दी हुई है। परतु यह नियम वर्ष के सात-आठ महीनो तक लागू नही हो सकता था, क्योकि इतने समय तक कृत्तिकाओ का उदय प्रतिवर्ष दिन में या उषा अथवा सध्या काल में होता है। इसी-लिए वौधायन श्रौत सूत्र ने दो अन्य वैकल्पिक रीतियाँ भी वता दी है। शतपथ को आदर के साथ देखने के कारण, और साथ ही अयन का ज्ञान न रहने के कारण, यह मान लिया गया होगा कि उदय होती हुई कृत्तिकाओ की दिशा में शाला की वल्ली रखना ठीक है ही, और तव दो अन्य तारो को चुना होगा जो ठीक उसी दिशा मे उदित होते रहे होगे जिसमें कृत्तिकाएँ उदित होती थी। इससे हमें यह वहुमूल्य सूचना मिलती

[1] देखो कैलंड: यीवर डास रिचुयेल सूत्र डेस वोवायन, ३७-३९।
[2] शतपथ ब्राह्मण, २।१।२।२।
[3] देखो एग्लिग: सेकरेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, १२।२८२। टिप्पणी २।
[4] तुलना करो: वेवर: नक्षत्र, २।३६८।३८१।
[5] १।१०५।१०।

है कि बौधायन श्रौत सूत्र के समय में श्रोण और कृत्तिकाओं का उदय एक ही दिशा में होता था। इससे पता चलता है कि बौधायन श्रौत सूत्र का समय लगभग १३३० ई० पू० रहा होगा[१]। तीसरा विकल्प भी इस दिनाक के अनुसार ही है। उस समय चित्रा और स्वाती के ठीक बीच का विंदु भी उसी दिशा में क्षितिज पर आता था जिस पर कृत्तिकाएँ आती थी। कृत्तिकाएँ, श्रोण और चित्रा-स्वाती का मध्यविंदु ये तीनो आकाश में ऐसी स्थितियो मे है कि वर्ष के प्रत्येक महीने में इनमें से एक-न-एक का उदय देखा जा सकता था।

सूत्र ग्रंथ ब्राह्मण ग्रथो के बाद बने[२]। इसलिए बौधायन श्रौत सूत्र के लिए १३३० ई० पू० शतपथ के लिए २५०० ई० पू० का समर्थन ही करता है।

इससे प्रत्यक्ष है कि बौधायन श्रौत सूत्र मे दिये गये तीन विकल्प यह नही सिद्ध करते कि शतपथ का नियम भ्रममूलक था। फिर, विविध नक्षत्रो में तारो की गिनतियो से भी यह नही सिद्ध होता कि शतपथ अविश्वसनीय है, क्योकि मौलिक कथन कि कृत्तिकाओ मे अन्य नक्षत्रो से अधिक तारे है सत्य है ही। और यह भी नही कहा जा सकता कि अन्य नक्षत्रो के तारो की गिनती बताने में शतपथ ने गलती की है, क्योकि यह ज्ञात नही है कि उस समय हस्त में कितने तारे माने जाते थे। चीन वाले नक्षत्रो को स्यू कहते थे और हस्त वाले तारिका-पुज में वे केवल चार तारे गिनते थे[३]। वेद में हस्त नक्षत्र में पाँच तारो के बारे में जिस वाक्य का सकेत किया गया है वह यो है

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिव।
देवत्रा नु प्रवाच्य सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्त मे अस्य रोदसी ॥१०॥

ऋग्वेद १।१०५

इसका अर्थ रामगोविंद त्रिवेदी और गौरीनाथ झा ने यह लगाया है —

विशाल आकाश मे ये जो (अग्नि, वायु, सूर्य, इद्र और विद्युत आदि) पाँच अभीष्टदाता है, वे मेरे इस प्रशसनीय स्तोत्र को शीघ्र देवो के पास ले जाकर लौट आये। द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो।

[१] देखो गोरखप्रसाद जर्नल, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लडन, जूलाई, १९३६।

[२] मैकडॉनेल ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर (१९००), ३५।

[३] ह्विट्नी ओरियटल ऐंड लिंग्विस्टिक स्टडीज, २।३५३।

दूसरो ने भी इस ऋचा के अनुवाद में हस्त में पाँच तारो के होने की वात नही लिखी है[1]। जान पडता है कि हस्त के तारो और इस ऋचा से कोइ सवध है ही नही; पाँच की सख्या आ जाने से यह समझना कि उस समय हस्त में पाँच तारे होते थे भ्रम है।

स्वय वार्थ का यही कहना है कि शतपथ की वात उस समय के वेधो के आवार पर है जव कृत्तिकाएँ पूर्व में उदित होती थी[2]। इस प्रकार मैकडॉनेल और कीथ की सव आपत्तियाँ निर्मूल ही जान पडती हैं।

विटरनिट्स की आपत्तियाँ

विंटरनिट्स[3] ने शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोक्त वाक्य का अर्थ यह लगाया है कि कृत्तिकाएँ पूर्व की ओर वहुत अधिक समय तक—कई घटो तक—प्रति रात्रि दिखायी पडती हैं, और इसलिए यह वात लगभग ११०० ई० पू० की है। उनका कथन है की इस अर्थ की सत्यता का प्रमाण वौधायन श्रौत सूत्र के वाक्य से मिलता है।

परतु विंटरनिट्स का अर्थ निस्सदेह ठीक नही है। कारण यह है कि यदि स्थूल रूप से ही पूर्व दिशा वतानी होती तो किसी भी ऐसे तारे, या तारका-पुज, से काम चल जाता जो विषुवत के आस-पास होता। यदि स्थूल रूप से ही पूर्व दिशा जाननी होती तो शतपथ ब्राह्मण यह क्यो कहता कि अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा मे हटे रहते है, और वौधायन श्रौत सूत्र यह कहने का कष्ट क्यो उठाता कि चित्रा और स्वाती का मध्य विंदु भी एक विकल्प है? स्थूल माप के लिए केवल चित्रा से ही काम चल जाता, या स्वाती से काम चल जाता, और वीसो अन्य तारे इस काम के लिए उपयुक्त होते। फिर विंटरनिट्स का यह कहना कि शतपथ में वतायी वात लगभग ११०० ई० पू० की है वहुत ही भ्रममूलक है। यदि उदय के वदले कई घटो तक की कृत्तिकाओं की औसत स्थिति ली जाय तो २५०० ई० पू० के दो-चार हजार वर्ष इधर या इतना ही उधर से भी काम चल जायगा।

[1] देखो ग्रिफिथ : दि हिम्स ऑव दि ऋग्वेद, १।१७९; ग्रासमान : ऋग्वेद यीवरट्ज़ेत्सुंग, २।१०६।

[2] वही, ३८।

[3] ए हिस्ट्री ऑव इडियन लिटरेचर, श्रीमती केतकर द्वारा अनुवादित, १, २९८। विंटरनिट्स के अर्थ की आलोचना सेनगुप्त ने भी की है: आई० एच० क्यू०, १० (१९३४), ५३९।

वैदिक काल मे वेध

अत में, इस पर भी जोर दिया गया है[1], यद्यपि दिशा ज्ञात करने के सबध में नहीं, कि वैदिक काल के हिंदू ज्योतिषी अच्छे वेधकर्ता न थे, क्योकि वे वर्ष में दिनो की सख्या को भी ठीक-ठीक न नाप सके थे, यहाँ तक कि वेदाग-ज्योतिष में भी वर्ष में ३६६ दिन माने गये है और सूर्य-सिद्धात तक में अयन का ज्ञान नही है। परतु यदि ये सब आक्षेप ठीक भी हो[2], तो इनसे यह नही समझा जा सकता कि पूर्व दिशा ज्ञात करना, जो अपेक्षाकृत अति सरल है, वैदिक कालीन आर्यो को ठीक-ठीक न आता था। यदि कोई व्यक्ति सदा एक ही स्थान से वेध करे[3] (स्मरण रहे कि यज्ञ के लिए प्राचीन समय में वेदी नियत स्थान में बनी ही रहती थी) और क्षितिज मील भर पर या अधिक दूरी पर रहे (जैसा भारतवर्ष में साधारणत रहता ही है), तो उदित होते समय सूर्य या चमकीले तारे की दिशा बिना किसी यत्र के ही कम-से-कम आधे अश (डिगरी) तक ज्ञात तो की ही जा सकती है[4]। इसमें भी सदेह नही कि क्षितिज के उस विंदु को ध्यान से देखा जाता था जहाँ सूर्य का उदय होता था, क्योकि कौपीतकी ब्राह्मण में इस विंदु के उत्तर-दक्षिण हटने का सूक्ष्म वर्णन है[5]। वहाँ बताया गया है कि किस प्रकार यह विंदु दक्षिण हटता है, फिर कुछ समय तक स्थिर जान पडता है और तब उत्तर जाता है। यदि सूर्योदय के उन दो विदुओ को देख लिया जाय जो महत्तम उत्तर और महत्तम दक्षिण की ओर रहते है, और

[1] मकडॉनेल और कीथ वेदिक इडेक्स, १।४२३-२४।

[2] देखो बार्हस्पत्य (छोटे लाल), ज्योतिष वेदाग (१९०७), १९, जहाँ उन्होने सिद्ध किया है कि ३६६ दिन विशेष प्रयोजन से चुना गया था। फिर, सूर्य-सिद्धान्त में अयन की चर्चा है (३।९) और जितना लिखा है उस समय के लिए पर्याप्त था, परन्तु गुरुत्वाकर्षण न जानने के कारण सूर्य-सिद्धात यह नहीं बता सकता था कि सुदूर भविष्य में क्या होगा।

[3] तीस फुट इधर-उधर हटने से कोई हानि न होगी। यदि क्षितिज एक मील पर हो तो इतने से एक-तिहाई अश (डिगरी) से कम का अतर पडेगा और यदि क्षितिज अधिक दूरी पर हो तो उसी हिसाब से और कम अतर पडेगा।

[4] चद्रमा का व्यास लगभग आधे अश का है।

[5] १९।३।

क्रियात्मक ज्यामिति[1] से, या दिनो की सख्या गिनकर, या केवल अनुमान से ही, पूर्व दिशा का निर्धारण किया जाय तो इस निर्धारण में एक-दो अश से अधिक की त्रुटि न रहेगी[2]। यह भी सभव है कि शतपथ के काल में शकु की परछाइयो को प्रात और सध्या समय ऐसे क्षणो पर देखकर जब वे वरावर रहती है उत्तर दिशा को निर्धारित करने की रीति ज्ञात रही हो, और ठीक पूर्व दिशा का निर्धारण किया जा सकता रहा हो। परतु शकु के प्रयोग में झझट रहता है और अधिक समय लगता है; इसलिए सर्वसाधारण के लिए वता दिया गया हो कि कृत्तिकाओ के उदय-विंदु से शाला की वल्ली को ठीक दिशा में रक्खो, क्योकि इस रीति में कोई असुविधा नही रहती।

ब्राह्मण-ग्रथो का काल

हम देखते है कि कोई कारण है ही नही जिससे शतपथ के वाक्य पर विश्वास करने में वाधा पडे, और इसलिए यह मानना पूर्णतया न्यायसगत होगा कि ब्राह्मण ग्रथो का काल लगभग २५०० ई० पू० है।

यजुर्वेद सहिताओं[3] और ब्राह्मण ग्रथो[4] में जहाँ कही भी नक्षत्रो की सूचियाँ है सब कृत्तिका (या कृत्तिकाओ) से आरभ होती है। अवश्य ही इसके लिए कोई कारण होगा। यह कल्पना और भी प्रत्यक्ष तव हो जाती है जब हम विचार करते है कि कई वाते जो अन्य देशो में मनमानी रीति से चुन ली गयी थी भारत में वैज्ञानिक

[1] शुल्व-सूत्र के काल में पुरोहितों को सरल क्रियात्मक ज्यामिति का अच्छा ज्ञान था। देखो थीवो: दि पंडित, पुरानी श्रेणी, ९ और १० (१८७४-७५), अथवा दत्त सायस ऑव दि शुल्ब, कलकत्ता, १९३२। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि यह ज्ञान एक-दो वर्ष में उत्पन्न नहीं हुआ होगा। इसलिए वहुत संभव है कि इनमें से कई एक रीतियाँ अति प्राचीन है।

[2] पूर्व दिशा के निर्धारण में एक अश की अशुद्धि से उससे निकाले गये दिनांक में लगभग १७५ वर्ष का अतर पडेगा। इसमें यह मान लिया गया है कि स्थान लगभग २४ अश के अक्षाश में है।

[3] तैत्तिरीय सहिता, ४।४।१०।१-३; मैत्रायणी स०, २।१३।२०; काठक संहिता, ३९।१३।

[4] तैत्तिरीय ब्राह्मण, १।५।१; ३।१।४।१ और तत्पश्चात; अथर्ववेद, १९।७।१ और तत्पश्चात।

सिद्धातो पर निर्धारित की गयी थी। उदाहरणत, भारत में वर्णमाला बहुत सोच-विचार के बाद स्वर और व्यजनो को पृथक करके और उनको उच्चारण के अनुसार क्रमबद्ध करके रक्खा गया था[1]। अन्य देशो की वर्णमाला में यह गुण नही पाया जाता। फिर, ऋग्वेद में ऋचाओ का क्रम एक विशेष पद्धति पर है, अनियमित रूप से उनको नही रक्खा गया है[2]। फिर, पचाग वैज्ञानिक ढग से बना था[3], जिसकी तुलना में वर्तमान यूरोपीय पचाग भी अशिष्ट जान पडता है। वैदिक पचाग में मासो का निर्धारण ठीक-ठीक चद्रमा से होता था और वर्ष का निर्धारण सूर्य से।

अब ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ काल बाद अश्विनी नक्षत्र से आरभ करके नक्षत्र-सूचियाँ बनने लगी और यह निश्चित है कि ऐसा इसलिए किया गया कि उस समय विषुव-बिंदु (अर्थात वह बिंदु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनो बराबर होते है और वसत की ऋतु रहती है) अश्विनी के आरम्भ में था[4]। नवीन शैली लगभग छठवी शताब्दी ई० में चली। इससे अवश्य ही यह धारणा होती है कि सभवत पहली सूची भी कृत्तिका से इसलिए आरभ होती थी कि उस समय विषुव-बिंदु कृत्तिका के आरभ में था। वेबर[5] का भी यही मत था।

यदि वसत विषुव-बिंदु वही था जहाँ कृत्तिकाएँ थी तो अवश्य ही कृत्तिकाएँ ठीक उत्तर में उदित होती रही होगी। इसलिए नक्षत्र-सूचियो का कृत्तिकाओ से आरभ होना शतपथ ब्राह्मणो में कृत्तिकाओ के पूर्व में उदित होने की बात का पूर्ण समर्थन करता है और हम इससे परिणाम निकाल सकते है कि नक्षत्र-सूचियाँ लगभग २५०० ई० पू० में बनी।[6]

[1] इसे तो सभी जानते है, तो भी देखो मैकडॉनेल ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, १७।

[2] मैकडॉनेल, ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, ४१-४५।

[3] ह्विटनी, ओरियटल ऍड लिग्विस्टिक स्टडीज, २।३४५।

[4] देखो कोलब्रुक इसेज २।२४६, वेबर इडिशे स्टुडीन, १०।२३४।

[5] नक्षत्र, २।३६२-३६४, इडिशे स्टुडीन, १०।२३५, इडियन लिटरेचर, २, सख्या २, इत्यादि।

[6] देखो वेबर, वही, बूलर, आई० ए० २३।२४८, सख्या २०, तिलक. ओरायन, ४० और तत्पश्चात।

कुछ पाश्चात्य विद्वानो[1] का विश्वास है कि कृत्तिकाएँ नक्षत्र-सूचियो के आरभ में केवल सयोगवश रक्खी गयी, या सभवत वे आरभ में इसलिए रक्खी गयी कि उनकी पहचान बहुत सरल थी। यह स्वीकार करने में कि कृत्तिकाएँ और वसंत विषुव दोनो साथ थे उन्हें निम्नलिखित आपत्तियाँ है :—

(क) इस बात को स्वीकार करने में कि कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थी यह मानना पडेगा कि उस समय नक्षत्रो का सबध सूर्य से रहता था, न कि चद्रमा से।[2] परतु यह स्पष्ट है कि इस कल्पना की आवश्यकता ही नही है। केवल यह मानना पर्याप्त होगा कि चद्रमा और सूर्य दोनो का सबध नक्षत्रो से था। आज भी तो यही बात ठीक है। यह कि प्राचीन समय में भी सूर्य और नक्षत्रो मे सबध माना जाता था प्राचीन ग्रथों से सिद्ध किया जा सकता है। जैसा याकोबी[3] ने बताया, नक्षत्रो का देव और यम इन दो वर्गों में तैत्तिरीय ब्राह्मण[4] का विभाजन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है[5]।

इसके अतिरिक्त, तैत्तिरीय ब्राह्मण में[6] वेध से तारो के बीच सूर्य की स्थिति ज्ञात करने की रीति बतायी गयी है। अवश्य ही, नक्षत्रो और सूर्य के बीच सबध पर विचार उस समय मे किया जाता रहा होगा।

(ख) थीबो[7] का कहना है कि वैदिक साहित्य मे विषुवो की चर्चा कही नही की गयी है और तिलक ने विषुवत का अर्थ जो विषुव लगाया है उसके लिए कोई प्रमाण

[1] थीबो, आई० ए० २४।९६; ओल्डेनबर्ग, ज़ेड० डी० एम० जी०, ४८, ६३१; ४९, ४७३; ५०, ४५१-५२; गेटिंगेन नाखरख्टेन, ६१९०९, ५६४; कीथ, जे० आर० ए० एस०, १९०९, ११०३; बार्थ, कैलांड के यीवर डास रिचुएल सूत्रडेस बौधायन, ३७-३९।

[2] मैकडॉनेल और कीथ, वेदिक इडेक्स, १।४२१।

[3] ज़ेड० डी० एम० जी० ५०।७२।

[4] १।५।२।८।

[5] दूसरे मत के लिए देखें ओल्डेनबर्ग : ज़ेड० डी० एम० जी०, ३८।६३१।

[6] १।५।२।१। तिलक ने अपने ग्रंथ ओरायन में इसका उल्लेख किया है; पृष्ठ १८।

[7] आई० ए०, २४।९६।

नही है, पीछे विषुवो को महत्त्व इसलिए दिया जाने लगा कि भारतीय ज्योतिषियो पर यूनानियो का प्रभाव पड़ा, वेदाग-ज्योतिष मे तारो का भोगाश अयनात से नापा गया था, न कि विषुव से, और यह कि पीछे की नक्षत्र-सूचियाँ विषुव से आरभ हुई थी कोई कारण नही है कि पहले की भी नक्षत्र-सूचियाँ इसी प्रकार से आरभ होती रही होगी।

यह कहना कठिन है कि इन नकारात्मक तर्कों को कितना महत्त्व दिया जाय, परतु यह स्मरण रखना चाहिए कि याकोबी और तिलक ने विवेचन करके सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कृत्तिकाओ से आरभ होने वाली नक्षत्र-सूची पुनर्व्यवस्थित सूची है, और उसमे कृत्तिकाओ को जान-बूझ कर सर्वप्रथम इसलिए रक्खा गया था कि वे उस समय विषुव पर थी और बूलर[1] का विश्वास है कि याकोबी और तिलक ने अपना कथन सतोषजनक रीति से सिद्ध कर दिया है कि कृत्तिकाओ से आरभ होने वाली सूची हिंदुओ की प्राचीनतम सूची नही है, इससे भी एक प्राचीन सूची कभी थी जिसमे वसत विषुव पर मृगशिरस था।

(ग) व्हिटनी[2] और थीबो[3] दोनो के मत में यदि कृत्तिकाएँ नक्षत्रो में सर्वप्रथम इसलिए रक्खी गयी थी कि वसत विषुव से उनका सबध था, तो सभवत वे केवल वसत विषुव के समीप थी, ठीक वसत विषुव पर नही थी। वेदाग-ज्योतिष बताता है कि शिशिर अयनात[4] तब होता है जब सूर्य श्रविष्ठा के आदि बिंदु पर रहता है। इसलिए उस समय कृत्तिकाएँ वसत विषुव से कुल १८ अश पर थी। व्हिटनी और थीबो कहते है कि वसत विषुव से कृत्तिकाओ का इतना समीप रहना उनके सर्वप्रथम रक्खे जाने के लिए पर्याप्त है। इसलिए वे यह मानने के लिए तैयार नही है कि नक्षत्र-सूचियाँ अवश्य ही वेदाग-ज्योतिष से पुरानी है। वेदाग-ज्योतिष का काल, जैसा हम पहले देख चुके है, लगभग बारहवी शताब्दी ई० पू० है, और, जैसा नीचे बताया जायगा, व्हिटनी और थीबो कहते है कि इन दिनाक में लगभग

[1] आई० ए०, २३।२३९। इस लेखक के नाम का उच्चारण वस्तुत लगभग बीलर है, परतु अक्षर-विन्यास के अनुसार लोग इसे साधारणत बूलर ही लिखते है।

[2] ओरियटल एड लिग्विस्टिक, स्टडीज २।३८३।

[3] आई० ए० २४।९७।

[4] शिशिर अयनात तब होता है जब रात सब से छोटी होती है। इसके बाद सूर्य उत्तर जाने लगता है और दिन धीरे-धीरे बढना आरभ करता है।

१००० वर्ष की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए वे कहते हैं कि ऐसा हो सकता है कि ब्राह्मण-ग्रंथ ८००-६०० ई० पू० से अधिक प्राचीन न हों[1]।

उनका तर्क वस्तुत यह है कि यदि कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर रही हो तो भी समव है कि वेध की सब त्रुटियाँ इस प्रकार एकत्रित हो गयी हो कि जिन वेधो से साधारणत २५०० ई० पू० का समय निकलता उनसे केवल ७०० ई० पू० या ऐसा ही कोई दिनाक निकले। यद्यपि सब विपरीत परिस्थितियो के एक ओर जा जुटने की सभावना बहुत ही कम होती है, तो भी यह कहा नही जा सकता कि ऐसा होना पूर्णतया असभव है। परतु स्मरण रखना चाहिए कि ७०० ई० पू० में कृत्तिकाएँ पूर्व से ११ अश हटकर उदित होती थी, और ऐसी परिस्थिति मे अग्निशालाओ की वल्लियो को कृत्तिकाओ की दिशा में रखने का विचार ही किसी के मन में न उठता।

विवाह-सस्कार का साक्ष्य

कृत्तिकाओ के पूर्व में उदित होने तथा नक्षत्र-सूचियो में उनके सर्वप्रथम रहने से जो दिनाक प्राप्त होता है उसका समर्थन पूर्णतया स्वतत्र रीति से एक दूसरी बात से होता है। विवाह-सस्कार के वर्णनो में इस प्रथा का भी उल्लेख मिलता है कि वर, वधू को, स्थैर्य के प्रतीक रूप, ध्रुवतारा को दिखाये। सब प्रधान गृह्य सूत्रो में[2] इस बात का आदेश दिया गया है। इसलिए अवश्य ही यह प्रथा सारे भारत में प्रचलित रही होगी और इसलिए यह विशेष नवीन प्रथा न रही होगी[3]। ध्रुव शब्द का अर्थ है वह जो अपने स्थान से न हटे। इसलिए अवश्य ही उस काल में कोई तारा ऐसा रहा होगा जो अपने स्थान से न हटता रहा होगा। परतु अयन के कारण ध्रुवतारा कभी रहता है, कभी नही रहता। इसलिए हम यह ज्ञात कर सकते है कि पूर्वोक्त प्रथा का आरभ कब हुआ होगा।

इस प्रश्न को अच्छी तरह समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि वह गणितीय बिंदु जिसके परित आकाश के सब तारे चक्कर लगाते है ध्रुव कहलाता है, और अयन के कारण यह बिंदु तारो के बीच धीरे-धीरे चलता रहता है (पृष्ठ ९७ का

[1] मैकडॉनेल और कीथ : वेदिक इंडेक्स, ४२४।

[2] पारस्कर गृह्य सूत्र, १।८।१९; आपस्तंब गृह्य सूत्र, २।६।१२; हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र, १।२२।१४; मानव गृह्य सूत्र, १।१४।९; बौधायन गृह्य सूत्र, १।५।१३; गोभिल गृह्य सूत्र, २।३।८।

[3] याकोबी : जे० आर ए० एस० (१९१०), ४६१।

चित्र देखें जहाँ ध्रुव का मार्ग अंकित है)। जब कभी यह बिंदु किसी चमकीले तारे के पास रहता है तो हम उस तारे को ध्रुव-तारा (या संक्षेप में केवल ध्रुव) कहते हैं। अब महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तीसरी श्रेणी[1] का प्रथम कालिय (ऐल्फा ड्रैकोनिस) नामक तारा गणितीय ध्रुव से निकटतम लगभग २७८० ई० पू०[2] में था। इस दिनांक के लगभग ढाई सौ वर्ष इधर या उधर तक यह तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप था कि हम उस समय का उसे ध्रुव-तारा मान सकते हैं। २००० ई०पू० से लेकर ५०० ई० तक कोई भी चमकीला तारा—पाँचवी श्रेणीका या इससे अधिक चमकीला—गणितीय ध्रुव के इतना समीप नही था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता[3]। पाँचवी श्रेणी के या अधिक चमकीले तारो में से केवल एक तारा इस दीर्घकाल में गणितीय ध्रुव के कुछ पास आया[4], परंतु निकटतम पहुँचने पर भी वह ध्रुव से लगभग पाँच अंश पर था। यह सन १३०० ई० पू० की बात है। लोगो ने देखा होगा कि एक रात्रि में यह तारा अपने उच्चतम स्थान से १० अंश नीचे उतर आता है[5]। इतनी दूर तक हटने की उपेक्षा लोगो ने कैसे की होगी, विशेष कर उत्तर प्रदेश के आर्यों ने, जहाँ ध्रुव की क्षितिज से ऊँचाई कुल २५ अंश है? इससे स्पष्ट है कि यदि हम क्षीणतम तारो की उपेक्षा करें, अर्थात उन तारो में से किसी एक को ध्रुव-

[1] आकाश के सब से अधिक चमकीले तारे प्रथम श्रेणी के माने जाते हैं; उनसे कम चमकीले तारे द्वितीय श्रेणी के, इत्यादि। वे तारे जो मंदतम हैं परंतु आँख से दिखायी पड़ते हैं छठवीं श्रेणी के कहे जाते हैं। वर्तमान ध्रुव-तारा द्वितीय श्रेणी का है।

[2] याकोबी, आई०ए०, २३।१५७।

[3] पूर्वोक्त चित्र से यह बात स्पष्ट हो जायगी। उसमें तारों के सापेक्ष ध्रुव का मार्ग दिखाया गया है। ध्रुव एक पूरा चक्कर लगभग २६००० वर्ष में लगाता है। यह चित्र नॉरटन के स्टार एटलस (गैल और इंगलिस) के आधार पर खींचा गया है।

[4] याकोबी, आई० ए० २३।१५७।

[5] पृष्ठ ९९ के चित्र में एक दिनरात में इसका मार्ग दिखाया गया है। उसके पहले वाले चित्र में वर्तमान ध्रुवतारे का मार्ग दिखाया गया है। ये दोनों चित्र मोटे हिसाब से पैमाने के अनुसार बने हैं (इन चित्रो में द्रष्टा का अक्षांश २५° मान लिया गया है)।

तारा न मानें जो इतने मद प्रकाश के हैं कि बस दिखायी भर पड जाते हैं तो इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है कि माना जाय कि विवाह की पूर्वोक्त रीति लगभग २७८० ई० पू० मे प्रचलित हुई होगी, जब आकाश मे वस्तुत कोई ध्रुव-तारा रहा होगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह दिनाक अन्य तर्कों से निकाले गये दिनाक के अनुकूल ही है। याकोबी का भी यही मत है।[1]

इस मत के विरोधी[2] कहते हैं कि हो सकता है कि पूर्वोक्त रीति, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख गृह्य सूत्रो में आया है, बहुत प्राचीन न हो, क्योकि विवाह-सस्कार के लिए किसी भी तारे से काम चल जायगा जो गणितीय ध्रुव से बहुत दूर न रहा हो। परतु यह बात न्यायसगत नही जान पडती, क्योकि बहुत मद तारा या गणितीय ध्रुव से कुछ दूर पर स्थित तारा कभी लोगो का ध्यान इतना आकर्षित ही न करता कि लोग उसे ध्रुव कहते और विवाह के अवसर पर उसे देखने-दिखाने की आवश्यकता समझते। यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि २७८० ई० पू० के कई हजार वर्ष पहले तक कोई भी चमकीला तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप नही था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता[3]।

अन्य उल्लेख

अन्य कई ऐसे उल्लेख हैं जिनका ज्योतिष मे सबध है और जिनमे काल का ज्ञान हो सकता है, परतु दुर्भाग्यवश वे सभी थोडा-बहुत अधूरे हैं और प्रत्येक के दो अर्थ लगाये गये हैं। एक अर्थ तो वेबर, याकोबी, बूलर, बार्थ, विंटरनिट्स, पूसिन[4], तिलक, दीक्षित इत्यादि ने लगाया है जिससे २००० ई० पू० से लेकर ६००० ई० पू० तक का काल प्राप्त होता है, और दूसरा अर्थ व्हिटनी, ओल्डेनबर्ग, थीबो, कीथ, और दूसरो ने लगाया है और उनके अनुसार वैदिक साहित्य बहुत प्राचीन नही है। सक्षेप में, उल्लेख निम्नलिखित है :

[1] आई० ए० २३।१८७, जे० आर० ए० एस० १९१०।४६१।

[2] मैकडॉनेल और कीथ, वेदिक इडेक्स, १।४२७।

[3] पृष्ठ ९७ का चित्र देखें, अथवा मोल्टन : ऐन इंट्रोडक्शन टू ऐस्ट्रॉनोमी, मानचित्र, १ देखें।

[4] लुई डि ला वैली पूसिन : वेदिस्मे, पेरिस १९०९, जिसका उल्लेख जे० आर० ए० एस० (१९०९) ७२१ में है।

ब्राह्मण ग्रथो के समय में फाल्गुन का महीना वर्ष का आरभ माना जाता रहा होगा, क्योकि कई स्थानो पर फाल्गुन की पूर्णिमा को वर्ष का मुख कहा गया है[1]। काल-निर्णय के लिए इस कथन में कमी यह है कि पता नही वर्ष का आरभ किस ऋतु मे तब होता था। याकोबी[2] का कहना है कि वर्ष आरभ करने की तीन वैकल्पिक प्रथाएँ थी, जिनमें से एक यह था कि वर्ष शिशिर अयनात से आरभ होता था। पीछे ऐसी प्रथा थी इसमें कोई सदेह नही है[3] और अवश्य ही यह प्रथा पहले से चली आयी होगी। इसे सत्य मान कर गणना करने पर ब्राह्मण-ग्रथो का काल लगभग ४००० ई० पू० निकलता है। तिलक[4] का मत भी यही है, परतु ओल्डेनबर्ग[5] और थीबो[6] का कहना है कि फाल्गुन को वर्ष का मुख इसलिए कहा गया होगा कि यह वसत ऋतु का प्रथम मास था[7], उनका कहना है कि प्राचीन समय में वर्ष को चातुर्मास्यो[8] के अनुसार तीन ऋतुओ में विभक्त करने की भी प्रथा थी, और इस प्रथा में एक ऋतु वसत थी। उनका यह भी कहना है कि यह मत कौषीतकी ब्राह्मण[9] के कथन के अनुकूल है जो यह बताता है कि शिशिर अयनात माघ

[1] तैत्तिरीय सहिता, ७।४।८।१-२, पचविंश ब्राह्मण, ५।९।९, इत्यादि।

[2] आई० ए०, २३।१५६, जेड० डी०एम० जी०, ४९।२२३, ५०।७२-८१।

[3] शिशिर अयनात से वेदाग-ज्योतिष के पचवर्षीय युग का भी आरभ होता था और इस युग का प्रथम वर्ष भी इसी क्षण से आरभ होता था। देखें वेदाग-ज्योतिष, यजु०, ५।

[4] ओरायन, २७।

[5] जड० डी० एम० जी०, ४८, ६३० और तत्पश्चात, ४९, ४७५–७६, ५०, ४५३–५७।

[6] आई० ए०, २४।८६।

[7] देखें वेबर, नक्षत्र, २।३२९ और तत्पश्चात, इससे तुलना करो शतपथ ब्राह्मण, ११।६।३।३६, कौषीतकी ब्राह्मण, ५।१। अन्यत्र भी ऐसे ही उल्लेख है। पूर्ण विवरण के लिए देखें वेदिक इडेक्स, १।४२५।

[8] तैत्तिरीय सहिता, १।६।१०।३, तैत्तिरीय ब्राह्मण, १।४।९।५; २।२।२।२, इत्यादि।

[9] १९।२।३।

की पूर्णिमा पर होता था और यही बात वेदाग-ज्योतिष[1] मे भी है। यद्यपि यह निश्चित नही है कि सौर वर्ष के किस दिनाक से वसत वस्तुत. आरभ हुआ करता था, तो भी उत्तर भारत की ऋतुओ पर विचार करके थीबो ने इसे लगभग ७ फरवरी को माना है। इस कल्पना के अनुसार ब्राह्मणो का काल लगभग बारहवी शताब्दी ई० पू० निकलता है।

बात यही नही समाप्त होती। तैत्तिरीय सहिता[2] तथा ताण्डच ब्राह्मण[3] के उन स्थानो में जहाँ गवाम्-अयन यज्ञ के आरभ का दिनाक दिया गया है और फाल्गुन को वर्ष का मुख कहा गया है, आरभ के लिए दो दिनाक बताये गये हैं—चैत्र की पूर्णिमा और एक विशेष पूर्णिमा के चार दिन पहले, परतु यह नही बताया गया है कि वह विशेष पूर्णिमा कौन-सी है।

तिलक का मत

तिलक[4] और याकोबी[5] यह मान लेते हैं कि यज्ञ के आरभ के लिए तीन दिनाक सभव थे और वर्ष का आरभ इन तीनो दिनाको से होता था, परतु विभिन्न कालो में और प्रत्येक काल में वर्ष का आरभ शिशिर अयनात से होता था। इस कल्पना के अनुसार तिलक और याकोबी दोनो यह कहते हैं कि पूर्वलिखित वर्षारभ, अर्थात चैत्र की पूर्णिमा से वर्षारभ, प्राचीनतर काल का अवशेष है। उस प्राचीनतर काल में चैत्र-पूर्णिमा से वर्ष का आरभ इसलिए होता था कि चैत्र-पूर्णिमा शिशिर अयनात पर होती थी। इस कल्पना से समय ६००० ई० पू० निकलता है। मीमासाकारों[6] से सहमत होकर तिलक यह भी कहते हैं कि पूर्णिमा के चार दिन पहले का अर्थ माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले है। इसलिए यह मानना होगा कि जब वर्ष माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले आरभ होता था तो शिशिर अयनात लगभग उसी समय होता था। यह बात इसके अनुकूल है कि तब कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थी, और इसलिए इससे समय २५०० ई० पू० निकलता है।

[1] वेदांग-ज्योतिष, यजु०, ५-६।

[2] ७।४।८।१।

[3] ५।९।

[4] ओरायन, अध्याय ४।

[5] आई० ए०, २३।१५६।

[6] जैमिनि, ६।५।३०-३७; इत्यादि; देखो ओरायन, ५२ और तत्पश्चात।

परतु थीबो का कहना है कि इस प्रकार का अर्थ लगाना व्यर्थ है, एक ही समय में किसी प्रदेश मे वर्ष किसी दिनाक से आरभ होता रहा होगा, अन्यत्र किसी अन्य दिनाक से[१]।

प्राप्य सामग्री से निश्चित रूप से पता चलाना कि सच्ची बात क्या है असभव जान पडता है। जब एक ही बात से इतने बिभिन्न दिनाक निकाले जाते है, और दोनो ओर तर्कसगत बातें कही जाती है तब यही स्वीकार करना उचित जान पडता है कि वह सामग्री दिनाक निकालने के लिए पर्याप्त नही है।

आग्रहायण

लोग यह भी मानते है कि वर्ष का आरभ कभी मार्गशीर्ष से भी हुआ करता था, क्योकि इस मास का दूसरा नाम आग्रहायण[२] है (जिससे ही इसे हिंदी में अगहन कहते है)। आग्रहायण का अर्थ है वर्ष का अग्र (आरभ)। परतु इससे भी कोई निश्चित दिनाक नही निकाला जा सकता, क्योकि इसका पता नही है कि जब अगहन से वर्ष का आरभ होता था तब आकाश में सूर्य तारो के सापेक्ष कहाँ रहता था, या, दूसरे शब्दो में, ऋतु क्या रहती थी। याकोबी[३] और तिलक[४] का कहना है कि तब सूर्य शरद विषुव पर रहता रहा होगा, क्योकि यह शिशिर अयनात पर फाल्गुनी पूर्णिमा होने के अनुकूल है (जिससे समय लगभग ४००० ई० पू० निकलता है); परतु थीबो[५] का कहना है कि यह तृतीय चातुर्मास्य का आरभ होगा, क्योकि चातुर्मास्यो के अनुसार भी ऋतुओ के नामकरण की प्रथा का उल्लेख मिलता है। उनका यह भी कहना है कि याकोबी की आपत्ति मे कि वर्ष तृतीय अर्थात अतिम चातुर्मास्य से कभी न आरभ होता रहा होगा कोई विशेष तथ्य नही है।

अध्ययन का आरभ

याकोबी[६] ने बताया है कि वेद का अध्ययन तब आरभ होता था जब घास पहली बार उगने लगती थी, अर्थात वर्षा ऋतु के प्रथम मास मे। पारस्कर गृह्य

[१] आई० ए० २४।९४।
[२] थीबो, आई० ए० २४।९४-९५, वेबर, २।३३२ और तत्पश्चात।
[३] आई० ए० २३।१५६।
[४] ओरायन, ६२ और तत्पश्चात।
[५] आई० ए० २४।९४-९५।
[६] आई० ए० २३।१५५।

सूत्र[1] में श्रावण की पूर्णिमा को उपाकरण संस्कार[2] के लिए नियत किया गया है और २००० ई० पू० में श्रावण ही वर्षा का प्रथम मास था। परंतु गोभिल गृह्य सूत्र[3] मे वही संस्कार प्रौष्ठपद की पूर्णिमा पर करने का आदेश है। (प्रौष्ठपद प्राचीन काल में भाद्रपद को कहते थे।) यह ज्ञात है कि पाठशालाएँ श्रावण की पूर्णिमा को खुलती थी। इसलिए भाद्रपद में उपाकरण करने की बात उस प्राचीन काल से चली आयी होगी जब भाद्रपद ही वर्षा-ऋतु का प्रथम मास रहा होगा, और ऐसा ४००० ई० पू० में होता था। परंतु ह्विटनी[4] और अन्य विद्वान इसे स्वीकार नही करते। उनका कहना है कि वर्षाऋतु और विद्यारंभ में संबंध रखना आवश्यक न था, परंतु बूलर[5] का मत वही है जो याकोबी का।

ग्रीष्म अयनांत

(४) सभी जानते है कि उत्तर भारत में वर्षा ऋतु ग्रीष्म अयनांत से आरंभ होती है। ऋग्वेद[6] में एक ऋचा है जो, याकोबी[7] के अनुसार, यह बताती है कि ऋग्वैदिक काल में वर्ष का आरंभ वर्षा ऋतु से होता था। वर्षा ऋतु से वर्ष के आरंभ होने का समर्थन वर्ष नाम से भी होता है, क्योकि यह वर्षा से प्रत्यक्षत. संबंधित है। वर्ष को अब्द भी कहते है जिसका अर्थ है जल देने वाला। फिर, ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा[8] से याकोबी ने यह परिणाम निकाला है कि वर्ष का आरंभ तब होता था जब पूर्णमासी का चंद्रमा फाल्गुनी मे रहता था। इन दोनो ऋचाओ से यह फल निकलता है कि वैदिक काल में शिशिर अयनांत पर फाल्गुन वाली पूर्णिमा होती थी, और, जैसा ऊपर बताया गया है, इससे समय ४००० ई० पू० निकलता है। परंतु याकोबी ने प्रथम ऋचा के द्वादश का अर्थ लगाया है बारहवाँ महीना,

[1] २।१०।
[2] अर्थात वेदपाठ आरंभ करने का संस्कार।
[3] ३।३।
[4] जे० ए० ओ० एस०, २६।८४ और तत्पश्चात।
[5] आई० ए०, १३।२४२ और तत्पश्चात।
[6] ७।१०३।९।
[7] आई० ए०, २३।१५४।
[8] १०।८५।१३।

और दूसरो ने[१] इसका अर्थ लगाया है वह जिसके वारह भाग हो, अर्थात वर्ष, और यद्यपि याकोवी ने व्याकरण से नियम उद्धृत करके दिखाया है कि वारहवाँ महीना अर्थ लगाना अधिक उपयुक्त है, और उन्हें वर्ष और अब्द से भी सहायता मिलती है, तो भी इस तर्क पर वहुत भरोसा नही किया जा सकता, क्योकि विद्वानो में मतभेद है और कुल एक शब्द के अर्थ वदल देने से परिणाम पूर्णतया वदल जाता है[२]।

शिशिर अयनात

(५) कौषीतकी ब्राह्मण[३] स्पष्ट रूप से वताता है कि शिशिर अयनात माघ की अमावस्या पर होता था। यह काल-निर्णय के लिए बहुमूल्य होता, परतु एक वात ऐसी है जिससे हम इसका उपयोग नही कर पाते हैं हमें यही नही ज्ञात है कि माघ की अमावस्या से क्या अभिप्राय था। पता नही कि उस समय मास अमावस्या पर समाप्त होता था (अमात पद्धति) या पूर्णिमा पर (पूर्णिमान पद्धति)। टीकाकारो[४] का

[१] केगी और गेल्डनर, ग्रासमान, इत्यादि।

[२] जिस सूक्त में यह ऋचा है वह मेढको के वारे में है। सदर्भ समझाने के लिए दो पूर्वगामी ऋचाओं का अर्थ नीचे दिया जाता है

"एक वर्ष का व्रत करने वाले स्तोता की तरह वर्ष भर तक सोये हुए रह कर मडूक (मेढक) मेघ के आने पर हर्ष-वाद करते है ॥"

"मेढकों में किसी की ध्वनि गौ की तरह है और किसी की वकरे की तरह। कोई धूम्र वर्ण का है, कोई हरे रग का। नाम तो सवका एक है, किंतु रूप नाना प्रकार के है। ये अनेक देशों में ध्वनि करते हुए प्रकट होते है।"

विवादग्रस्त ऋचा यो है

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्रमिनन्त्यते।
सवत्सरे प्रावृष्यागताया तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥ ९॥

अर्थ—मडूक दैवी नियम की रक्षा करते हैं। वे वर्ष की [या वारहवें महीने की ?] ऋतु की अवहेलना नहीं करते। [एक] वर्ष पूरा होने पर, वर्षा ऋतु के [फिर] आने पर, ग्रीष्म के ताप से पीडित मडूक गड्ढो के वधन से छूटते हैं।

[३] १९।३। इसकी चर्चा पहले-पहल वेवर ने की, देखो "नक्षत्र", २।३४५ और तत्पश्चात।

[४] कौषीतकी ब्राह्मण पर विनायक की टीका, अथवा साख्यायन श्रौत सूत्र पर आनर्तीय की टीका, १३।१९।१।

विश्वास था कि मास का अत पूर्णिमा से होता था और इसलिए माघ की अमावस्या वह अमावस्या होगी जो मघा नक्षत्र मे होने वाली पूर्णिमा के पहले होती थी। परतु इसका भी साक्ष्य है कि अमात पद्धति ही अधिक प्रचलित थी। कारण यह है कि शुक्ल पक्ष को पूर्व पक्ष (पहले आने वाला पक्ष) कहा जाता था और कृष्ण पक्ष को अपर पक्ष[1]। अव यदि माना जाय कि उस समय मास अमात होते थे तो माघ की अमावस्या वह होगी जो मघा नक्षत्र की पूर्णिमा के वाद पडती है और इस समय शिशिर अयनात मानने से प्राप्त दिनाक ज्योतिप-वेदाग के दिनाक से लगभग १९०० वर्ष अधिक प्राचीन हो जाता है, अर्थात हमे तव ३१०० ई० पू० प्राप्त होता है[2]।

परतु यदि माना जाय कि उस समय पूर्णिमात पद्धति प्रचलित थी तो माघ की अमावस्या का अर्थ होगा वह अमावस्या जिसे अमात पद्धति मे पौप की अमावस्या कहते है[3], और तव परिस्थिति वह हो जाती है जो वेदाग-ज्योतिप मे वतायी गयी है, और उससे समय लगभग १२०० ईसवी पूर्व निकलता है। कुछ विद्वान पूर्णिमात पद्धति को ही अधिक सभव मानते है, क्योकि टीकाकारो की भी वही सम्मति है। फिर, जैसा थीबो ने वताया है, कौषीतकी ब्राह्मण के समय मे हो सकता है कि अमावस्या का अर्थ ठीक-ठीक वही न रहा हो जो पीछे लगाया जाने लगा, अर्थात वह तिथि जिसका अत चद्रमा और सूर्य की सयुति पर होता है। हो सकता है कि मास अमावस्या से आरभ होता रहा हो, और यह भी हो सकता है कि माघ की अमावस्या मे अर्थ रहा हो वह अमावस्या जिससे माघ का महीना आरभ हुआ, अर्थात मघा में होने वाली पूर्णिमा से पहले वाली अमावस्या। परतु यदि हम इस वात को स्वीकार भी कर ले तो यह मानना आवश्यक नही है कि कौषीतकी ब्राह्मण और वेदाग-ज्योतिप ठीक समकालीन है। वेदाग-ज्योतिप का कथन पूर्णतया निश्चित है, वहाँ जो लिखा है उसका अर्थ है कि शिशिर अयनात तव होता है जव सूर्य रविमार्ग के उस सत्ताइसवे भाग के प्रथम विंदु पर रहता है जिसका नाम श्रविष्ठा है। इसके विपरीत, कौषीतकी ब्राह्मण का कथन ऐसा है जो एक वर्ष से अधिक के लिए पूर्णतया सत्य

[1] देखो वैदिक इडेक्स, २।१५८, जहाँ पूर्ण विवरण मिलेगा।

[2] कीथ के अनुसार कौषीतकी ब्राह्मण का लगभग वही काल है जो शतपथ का है या उससे थोडे ही समय पहले का है (एच० ओ० एस०, २५।४७।४८)। परंतु संभव है कि यह वाक्यशेष कौषीतकी ब्राह्मण से पहले का हो।

[3] थीबो के लेख से तुलना करो: आई० ए०, २४।८९।

नही हो सकता था। कारण यह है कि यदि किसी वर्ष शिशिर अयनात ठीक माघ की अमावस्या पर होता तो आगामी वर्षों में यह ठीक माघ की अमावस्या पर हो नही सकता था। आगामी वर्ष में यह लगभग ११ दिन पिछड कर होता, एक वर्ष और बीतने पर यह माघ की अमावस्या हो जाने के २२ दिन बाद होता। फिर, बीच मे अधिमास लग जाने से आगामी वर्ष माघ की अमावस्या के तीन दिन पहले होता, तब आगामी वर्ष में ८ दिन का अतर पडता, और इसी प्रकार आगामी वर्षों मे भी कुछ-न-कुछ अतर पडा करता। प्रत्यक्ष है कि कौषीतकी ब्राह्मण का कथन केवल स्थूल रूप मे शुद्ध है और इस इच्छा के रहने पर कि शिशिर अयनात तथा कोई अमावस्या साथ पडे (क्योकि धार्मिक दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण है), कौषीतकी ब्राह्मण ने कह दिया हो कि शिशिर अयनात माघ की अमावस्या पर पडता है, यद्यपि शिशिर अयनात और औसत माघी अमावस्या में कुछ दिनो का अतर रहा हो। इसके अतिरिक्त, वेदाग-ज्योतिष के दिनाक में एक हजार वर्षो की अनिश्चितता बतायी जाती है[1], इसलिए पूर्वोक्त विवेचनो के आधार पर निकाला गया कौषीतकी ब्राह्मण के दिनाक में कम-से-कम उतनी ही अनिश्चितता होगी[2]। फिर, निश्चित रूप मे कौषीतकी और शतपथ ब्राह्मणो के सापेक्षिक दिनाक ज्ञात नही है, और इनमें से एक भी समूचा एक ही समय की रचना नही है। इसलिए कौषीतकी ब्राह्मण के कथन से कोई ध्वनि ऐसी नही निकलती जो शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य पुस्तको से निकाले गये दिनाक मे बेमेल पडे।

वेदाग-ज्योतिष मे शिशिर अयनात

वेदाग-ज्योतिष मे शिशिर अयनात की स्थिति श्रविष्ठा का आदि-बिंदु बताया गया है[3]। वेदाग-ज्योतिष का दिनाक जानने के लिए इतना पर्याप्त है। परन्तु इसमें भी कुछ अनिश्चितता है, क्योकि ठीक-ठीक यह ज्ञात नही है कि श्रविष्ठा का आदि-बिंदु कहाँ था। इसलिए विविध विद्वानो ने विविध दिनाक

[1] ह्विटनी, ओरियटल ऍड लिग्विस्टिक स्टडीज, २।३८४, थीबो, आई० ए०, २४।९८; इत्यादि। एक हजार वर्ष की अनिश्चितता अवश्य ही अतिशयोक्ति है।

[2] इस सबध में देखें गोरखप्रसाद, जनरल ऑव दि बिहार ऍड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, २१ (१९३५), सख्या ३।

[3] वेदाग-ज्योतिष, यजु०, ७।

निकाले है। जोन्स[1] और प्रैट[2] ने ११८१ ई० पू० निकाला है, परतु डेविस[3] और कोलब्रुक[4] ने १३९१ ई० पू० निकाला है, अन्य विद्वानो के दिनाक भी इसी प्रकार के है। छोटे लाल[5] का मत है कि निस्सदेह वेदाग-ज्योतिष के वेध सन १०९८ ई० पू० के जाडे में लिये गये थे, परतु उन्होने उस समय बृहस्पति ग्रह के सबध में अति विवादग्रस्त कथन का आश्रय लिया है और इसलिए उनकी गणना पर विशेष भरोसा नही किया जा सकता। इन विवेचनो से प्रत्यक्ष है कि हम सभवत ठीक-ठीक दिनाक ज्ञात नही कर सकते है, परतु इतना निश्चित है कि बारहवी शताब्दी ई० पू० वेदाग-ज्योतिष के वेधो के दिनाक से बहुत दूर नही है। सभी मानते है कि वेदाग-ज्योतिष की रचना ब्राह्मण ग्रथो के बाद हुई[6], इसलिए अन्य आधारो पर निकाले गये दिनाक का इन विवेचनो से समर्थन ही होता है।

साराश

यदि हम इस संभावना का बहिष्कार करें कि वैदिक साहित्य में केवल सुनी-सुनायी बहुत पहले की ही बातो का सग्रह है—और ऐसा होना प्राय असभव जान पडता है—तो कहा जा सकता है कि इस साहित्य मे प्रबल प्रमाण है कि वेद २५०० ई० पू० से पहले के है। उनका काल ४००० ई० पू० हो सकता है, इसके लिए कुछ प्रमाण भी है, परतु वह ऐसा नही है कि उससे पूर्णतया सतोष हो जाय। साथ ही यह भी है कि इस दिनाक के विरुद्ध कोई प्रमाण नही है।

[1] एशियाटिक रिसर्चेज, २।३९३।
[2] जे० ए० एस० बी०, ३१।४९।
[3] एशियाटिक रिसर्चेज, २।२६८, ५।२८८।
[4] इसेज, १।१०९-१०।
[5] ज्योतिष-वेदांग, इलाहाबाद, ८३।
[6] थीबो: ऐस्ट्रॉनोमी, ऐस्ट्रॉलोजी उंड मैथिमैटीक, १९-२०।

अध्याय ७

महाभारत में ज्योतिष

समय की बडी एकाइयाँ

महाभारत में ज्योतिप विपयो की चर्चा कई स्थानो पर है, जिन पर विचार करने से पता चल सकता है कि उस समय में ज्योतिष का कितना ज्ञान था।

महाभारत में समय की बडी एकाइयो के नाम और सबध वे ही है जो मनुस्मृति में है। विश्व के जीवन-काल को चार युगो में बाँटा गया है जिनके नाम कृत, त्रेता, द्वापर और कलि है। हम कलियुग में है, अन्य तीन युग बीत चुके है। कलियुग के अत में प्रलय होगा और तब नयी सृष्टि होगी—ऐसा मनुस्मृति, पुराण और महाभारत आदि का विश्वास है। प्रत्येक युग के आरभ में सध्या है और अत में सध्याश है। इनमें वर्षो की सख्या निम्न प्रकार है[1]

युग		वर्ष	युग		वर्ष
कृत	सध्या	४००	द्वापर	सध्या	२००
	मुख्य भाग	४०००		मुख्य भाग	२०००
	सध्याश	४००		सध्याश	२००
त्रेता	सध्या	३००	कलि	सध्या	१००
	मुख्य भाग	३०००		मुख्य भाग	१०००
	सध्याश	३००		सध्याश	१००

चारो युग मिल कर = १ दैवयुग = १२,००० वर्ष,

१००० दैवयुग = ब्रह्मा का १ दिन।

टीकाकारो के अनुसार ऊपर जिन वर्षो की सख्या दी गयी है वे मानव वर्ष नही है, दैव वर्ष है और प्रत्येक दैव वर्ष ३६० मानव वर्षो के बराबर होता है।

[1] मनुस्मृति, प्रथम अध्याय।

आधुनिक विज्ञान बताता है कि पृथ्वी का जन्म आज से लगभग अरब (अर्बुद) वर्ष पहले हुआ होगा। ऊपर की सारणी से पता चलता है कि हमारे प्राचीन ऋषियो के मत में भी सृष्टि कई अरब वर्ष पहले हुई थी। इसका महत्त्व तब दिखायी पडता है जब इसकी तुलना अन्य धर्मो के मतो से की जाती है। कुछ ही सौ वर्ष पहले यूरोप में प्रचलित धर्मग्रंथ के अनुसार राजाओ की वश-परपरा देखकर पृथ्वी की आयु ४००० वर्ष आँकी जाती थी।

महाभारत में पाँच वर्षो के युग की चर्चा है[१]। पाडवो के जन्म के सबध में यह उल्लेख है :

अनुसंवत्सरं जाता अपि ये कुरुसत्तमाः ॥
पांडुपुत्रा व्यराजंत पंच संवत्सरा इव ॥ २२ ॥

आदिपर्व, अ० १२४.

अर्थ—एक-एक वर्ष के अन्तर से उत्पन्न हुए कुरुओ में श्रेष्ठ पाडु के वे पाँचो पुत्र (युग के) पाँच वर्षो के समान लगते थे।

वर्ष

वर्ष की लबाई के सबध में भी महाभारत के एक कथन से हमें सहायता मिलती है। पाठक को ज्ञात होगा कि जुआ मे हारने पर पाडवो को १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास स्वीकार करना पडा था, परतु अज्ञातवास के लगभग अत मे अपने आश्रयदाता पर विपत्ति पडने पर अर्जुन को दुर्योधन आदि के विरुद्ध लडने के लिए लाचार होना पडा। जब दुर्योधन आदि ने अर्जुन को पहचान लिया तब उन्हें यह जानने की आवश्यकता पडी कि वनवास के आरभ से उस दिन तक पूरे १३ वर्ष बीत गये थे या नही। आपस में मतभेद होने के कारण यह प्रश्न भीष्म के सम्मुख रक्खा गया। तब उन्होंने दुर्योधन से कहा :

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पंचमे पंचमे वर्षे द्वौ मासावुपजायत. ॥ ३ ॥
एषामभ्यधिका मासा. पच च द्वादश क्षपा.।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४ ॥

विराटपर्व, अ. ५२.

[१] युग शब्द किसी भी दीर्घकाल के लिए प्रयुक्त होता था, चाहे वह पांच वर्ष का हो, चाहे वह लाखो वर्ष का हो।

अध्याय ७

महाभारत में ज्योतिष

समय की बडी एकाइयाँ

महाभारत मे ज्योतिष विषयो की चर्चा कई स्थानो पर है, जिन पर विचार करने से पता चल सकता है कि उस समय मे ज्योतिष का कितना ज्ञान था।

महाभारत मे समय की बडी एकाइयो के नाम और सबध वे ही है जो मनुस्मृति मे है। विश्व के जीवन-काल को चार युगो मे बाँटा गया है जिनके नाम कृत, त्रेता, द्वापर और कलि है। हम कलियुग मे है, अन्य तीन युग बीत चुके है। कलियुग के अत मे प्रलय होगा और तब नयी सृष्टि होगी—ऐसा मनुस्मृति, पुराण और महाभारत आदि का विश्वास है। प्रत्येक युग के आरभ मे सध्या है और अत मे सध्याश है। इनमे वर्षों की सख्या निम्न प्रकार है[1]

युग		वर्ष	युग		वर्ष
कृत	सध्या	४००	द्वापर	सध्या	२००
	मुख्य भाग	४०००		मुख्य भाग	२०००
	सध्याश	४००		सध्याश	२००
त्रेता	सध्या	३००	कलि	सध्या	१००
	मुख्य भाग	३०००		मुख्य भाग	१०००
	सध्याश	३००		सध्याश	१००

चारो युग मिल कर = १ देवयुग = १२,००० वर्ष,

१००० देवयुग = ब्रह्मा का १ दिन।

टीकाकारो के अनुसार ऊपर जिन वर्षों की सख्या दी गयी है वे मानव वर्ष नही है, देव वर्ष है और प्रत्येक देव वर्ष ३६० मानव वर्षों के बराबर होता है।

[1] मनुस्मृति, प्रथम अध्याय।

आधुनिक विज्ञान बताता है कि पृथ्वी का जन्म आज से लगभग अरब (अर्बुद) वर्ष पहले हुआ होगा। ऊपर की सारणी से पता चलता है कि हमारे प्राचीन ऋषियो के मत में भी सृष्टि कई अरब वर्ष पहले हुई थी। इसका महत्त्व तब दिखायी पडता है जब इसकी तुलना अन्य धर्मों के मतो से की जाती है। कुछ ही सौ वर्ष पहले यूरोप में प्रचलित धर्मग्रथ के अनुसार राजाओ की वश-परपरा देखकर पृथ्वी की आयु ४००० वर्ष आँकी जाती थी।

महाभारत में पाँच वर्षों के युग की चर्चा है[१]। पाडवो के जन्म के सबध में यह उल्लेख है .

अनुसंवत्सरं जाता अपि ये कुरुसत्तमाः ॥
पाडुपुत्रा व्यराजंत पंच संवत्सरा इव ॥ २२ ॥

आदिपर्व, अ० १२४.

अर्थ—एक-एक वर्ष के अन्तर से उत्पन्न हुए कुरुओ में श्रेष्ठ पाडु के वे पाँचो पुत्र (युग के) पाँच वर्षों के समान लगते थे।

वर्ष

वर्ष की लबाई के सबध में भी महाभारत के एक कथन से हमे सहायता मिलती है। पाठक को ज्ञात होगा कि जुआ में हारने पर पाडवो को १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास स्वीकार करना पडा था, परतु अज्ञातवास के लगभग अत में अपने आश्रयदाता पर विपत्ति पडने पर अर्जुन को दुर्योधन आदि के विरुद्ध लडने के लिए लाचार होना पडा। जब दुर्योधन आदि ने अर्जुन को पहचान लिया तब उन्हें यह जानने की आवश्यकता पडी कि वनवास के आरभ से उस दिन तक पूरे १३ वर्ष बीत गये थे या नही। आपस में मतभेद होने के कारण यह प्रश्न भीष्म के सम्मुख रक्खा गया। तब उन्होने दुर्योधन से कहा ·

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पचमे पंचमे वर्षे द्वौ मासावुपजायत. ॥ ३ ॥
एषामभ्यधिका मासाः पंच च द्वादश क्षपाः।
त्रयोदशाना वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४ ॥

विराटपर्व, अ. ५२.

[१] युग शब्द किसी भी दीर्घकाल के लिए प्रयुक्त होता था, चाहे वह पांच वर्ष का हो, चाहे वह लाखों वर्ष का हो।

अर्थ— समय के बढने तथा नक्षत्रो के हटने से प्रति पाँचवें वर्ष दो अधिमास (मलमास) होते है ।।३।।

मेरी समझ में तो (वन गए हुए) इन (पाण्डवो) को तेरह वर्ष से पाँच मास और बारह दिन अधिक हो गये ।।४।।

अयन का परिणाम

ऊपर की गणना वेदाग-ज्योतिष के अनुसार की गयी है। स्पष्ट है कि महाभारत के समय भी वेदाग-ज्योतिष के ही नियम चालू थे। परतु जान पडता है कि अयन[1] के कारण जो अतर पट गया था उसके लिए किसी प्रकार का सशोधन कर लिया गया था, क्योकि यहाँ नक्षत्रो के हटने की बात भी कही गयी है। हम देख चुके है कि वेदाग-ज्योतिष के समय में उत्तरायण तब आरभ होता था जब सूर्य धनिष्ठा के आरभ में रहता था। अयन के कारण उत्तरायण के आरभ होने का स्थान लगभग १००० वर्षों में एक नक्षत्र (=१ चक्कर का सत्ताइसवाँ भाग) हट जाता है। इसलिए महाभारत के समय में उत्तरायण धनिष्ठा के आरभ-बिंदु मे न होता रहा होगा। महाभारत के कुछ वाक्यो से अधिक स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि आवश्यक सशोधन हो गया था, क्योकि लिखा है

चकारान्य च लोक वै क्रुद्धो नक्षत्रसपदा ।।
प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार य ।।३४।।

आदिपर्व, अ ७१

अर्थ—(विश्वामित्र ने) क्रुद्ध होकर दूसरे लोक तथा 'श्रवण' से आरम्भ होने वाले नक्षत्रो का निर्माण किया।

[1] आकाश का वह बिंदु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनो बराबर रहते हैं और ऋतु वसत रहती है 'वसत विषुव' कहलाता है। वसत विषुव तारों के सापेक्ष धीरे-धीरे पीछे मुँह (अर्थात सूर्य के चलने से उलटी दिशा में) खिसकता रहता है और एक चक्कर लगभग २६००० वर्ष में लगाता है। वसत विषुव के इस प्रकार चलने को अयन कहते है। इसी अयन के कारण आकाशीय ध्रुव भी चलता रहता है (पृष्ठ ५९)। उत्तरायण और दक्षिणायन में अयन शब्द का प्रयोग हुआ है, परतु विषुव के चलने और उत्तरायण दक्षिणायन में विशेष सबधन हीं है। भ्रम दूर करने के लिए कुछ लोग विषुव के चलने को अयन-चलन कहते है, परतु यह उचित नहीं है, क्योकि स्वय अयन का अर्थ है चलना। विषुव-अयन अधिक उपयुक्त है।

फिर, यह भी वाक्य आता है —

अह. पूर्व ततो रात्रिर्मासा. शुक्लादय. स्मृता. ॥
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादय. ॥२॥

अश्वमेघपर्व, अ. ४४.

अर्थ—ऐसा कहा जाता है कि पहले दिन, अनन्तर रात, तदनन्तर शुक्ल इत्यादि पक्ष, मास, श्रवण इत्यादि नक्षत्र, एव शिशिर आदि ऋतुएँ उत्पन्न हुई ।

श्रवण इत्यादि नक्षत्र कहने से स्पष्ट है कि नक्षत्र श्रवण से आरभ होते थे, और नक्षत्रो का श्रवण से आरभ होना यह सूचित करता है कि वहाँ या तो विपुव रहा होगा या उत्तरायण-विंदु या दक्षिणायन-विंदु, क्योकि ऐसी ही प्रथा पहले से चली आ रही थी। अन्य वातो के सभव न होने के कारण मानना ही पडता है कि श्रवण के नक्षत्र में उत्तरायण-विंदु था।

श्रवण के आरभ-विदु पर उत्तरायण लगभग ४५० ई० पू० में होता था ।

सप्ताह

सप्ताह और दिनो के नाम (रविवार, सोमवार,) का उल्लेख कही भी नही है। महाभारत में अन्य-अन्य रीतियो से (नक्षत्र आदि वता कर) दिनाक इतनी वार वताया गया है कि रविवार आदि नाम न रहने से यह परिणाम अनिवार्य हो जाता है कि उस समय दिनो का नामकरण नहीं हुआ था। योग, करण या राशि का नाम भी कही नही आया है। निस्सदेह इन सव एकाइयो का जन्म महाभारत-युग के वाद हुआ होगा ।

उत्तरायण और दक्षिणायन

महाभारत में दिनाक अधिकतर चद्रमा की स्थिति से वताये गये है, परन्तु कही-कही पर सूर्य की स्थिति से भी दिनाक वताये गये है। उदाहरणत एक स्थान पर यह है —

पर्वसु द्विगुणं दानमृतौ दशगुण भवेत् ॥ १२४ ॥
अयने विषवे चैव षडशीतिमुखेषु च ॥
चंद्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते ॥ १२५ ॥

वनपर्व, अ २००.

अर्थ—पर्व-दिनो में, अर्थात अमावस्या या पूर्णिमा के दिन, दिया गया दान दुगुना पुण्य उत्पन्न करता है, ऋतु (के आरम्भ) में दिया गया दान दस-गुना पुण्य

उत्पन्न करता है। उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवो पर, तथा षडशीतिमुखो और चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहणो पर दिया गया दान अक्षय कहा जाता है।

उत्तरायण और दक्षिणायन वे ही है जो अब मकर-सक्राति और कर्क-सक्राति कहलाते है, विषुव वे अवसर है जब मेष और तुला सक्रातियाँ होती है। षडशीतियाँ वे समय है जब सूर्य रविमार्ग के उन खडों मे रहता है जिन्हे अब मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि कहते है। इससे प्रत्यक्ष है कि महाभारत के समय मे रविमार्ग को १२ भागो मे विभक्त किया जाता था। यह स्वाभाविक भी है, क्योकि वर्ष मे १२ महीने माने जाते थे। परतु महाभारत मे राशियो के नाम नही दिये गये है। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि उस समय रविमार्ग के बारह खडो का नामकरण नही हुआ था, अर्थात मेष, आदि नाम बाद मे रक्खे गये।

ग्रहण

ऊपर के उद्धरण मे ग्रहणो की चर्चा है, इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी ग्रहणो की चर्चा है। यह लोगो को ज्ञात था कि ग्रहण केवल अमावस्या या पूर्णिमा को लग सकते थे। अमावस्या या पूर्णिमा को वे पर्व कहते थे। अनहोनी-सी बात का होना अशुभ समझा जाता था। इसलिए जब पाडव वनवास जाने लगे तब ऐसा लिखा है कि अपर्व पर ही सूर्य-ग्रहण हुआ

राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशापते ॥ १९ ॥

सभापर्व, अ ७९

अर्थ—हे राजन्! (उस समय) बिना पर्व (अमावस्या) के ही राहु ने सूर्य का ग्रहण कर दिया।

महाभारत युद्ध के आरभ मे एक ग्रहण के बाद दूसरे ग्रहण का १३ दिन पर ही हो जाना महा-अनिष्ट होने के लक्षण-स्वरूप लिखा गया है

अलक्ष्य प्रभया हीन पौर्णमासीं च कार्तिकीं।
चद्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले ॥

भीष्मपर्व, अ २

चतुर्दशीं पचदशीं भूतपूर्वां तु षोडशीं ॥
इमा तु नाभिजानेऽहममावास्या त्रयोदशीं ॥
चद्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीं ॥ ३२ ॥

भीष्मपर्व, अ ३.

अर्थ—कार्तिक की पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा प्रकाशहीन होकर अदृश्य हो गया, फिर कमल के समान नीले आकाश में अग्नि के रग का (अर्थात लाल) हो

गया[1]। पहले समय में चौदहवें, पन्द्रहवें अथवा सोलहवें दिन अमावस्या होती थी, परतु तेरहवें दिन अमावस्या का होना मुझे कदापि ज्ञात नही है। पर इस वार तो एक मास के भीतर ही (पूर्णिमा पर) चद्रमा का और त्रयोदशी को सूर्य का ग्रहण हुआ है।

इससे प्रत्यक्ष है कि ग्रहणो के सबध में पूर्ण रूप से ज्ञात था कि दो ग्रहणो के बीच केवल १३ दिन का अतर नही हो सकता। वास्तव में उस समय १३ दिन के अतर पर दूसरा ग्रहण लगा था, या लेखक ने अशुभ लक्षणो में इसे भी दिखा देना उत्तम समझा, कहा नही जा सकता, क्योकि कभी-कभी पक्ष (अर्ध-मास) १४ दिन से कम का भी होता है, और तब उसे १३ दिन का गिना जा सकता है। शकर बालकृष्ण दीक्षित ने बताया है कि शक १७९३ मे फाल्गुन का कृष्ण पक्ष कुल १३ दिन का था। इसी प्रकार शक १८०० के ज्येष्ठ का शुक्ल पक्ष फिर कुल १३ दिन का था। ये १३ दिन के पक्ष विरले अवसरो पर ही आते है। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार पक्ष का न्यूनतम मान १४ दिनों से थोडा ही कम निकलता है। इस सबध में पाठक को स्मरण रखना चाहिए कि न तो सूर्य सदा एक वेग से चलता है और न चद्रमा ही। इसलिए पक्षो की लबाई बराबर नही होती। यदि १४ दिन से कुछ कम का पर्व हुआ तो भारतीय गणना के अनुसार दो ग्रहण १३ दिन पर लग सकते है। उदाहरणत, यदि किसी दिन (स्पष्टता के लिए मान लें १ जनवरी को) सूर्योदय के कुछ मिनट बाद तक ग्रहण लगा रहा तो अवश्य ही कहा जायगा कि उस दिन (अर्थात १ जनवरी को) सूर्यग्रहण लगा था। १३ दिन बाद १४ जनवरी हो जायगी। उस दिनाक को यदि रात बीतने के दस-पाँच मिनट पहले चद्रग्रहण आरभ हुआ तो अवश्य ही लोग कहेंगे कि १४ जनवरी को चद्रग्रहण लगा, क्योकि विशुद्ध भारतीय पद्धति में दिनाक सूर्योदय के क्षण बदलता है, अर्धरात्रि के क्षण नही। इस उदाहरण में १ जनवरी वाले सूर्यग्रहण के मध्य से १४ जनवरी वाले चद्रग्रहण के मध्य तक १३ दिन से कई घटे अधिक बीत चुके रहेंगे, यद्यपि साधारण लोगो की भाषा मे १३ दिन पर ही ग्रहण लग गया। इसलिए १३ दिन पर ग्रहण लगना अवश्य ही सभव है।

तो भी, सभव होना एक बात है, वस्तुत घटित होना दूसरी बात है। मुझे तो महाभारत-युद्ध के आरभ में पूर्वोक्त दो ग्रहणो का लगना केवल कवि की कल्पना

[1] सर्व चंद्रग्रहण के अवसर पर ऐसा ही होता है।

जान पडती है। इस सदेह का समर्थन यो भी होता है कि दुर्योधन के मरने पर भी वही बात लिखी गयी है

राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशापते ॥ १० ॥

गदापर्व, अ २७

युद्ध के एक महीने पहले सूर्यग्रहण लग चुका था[1]। युद्ध के अत मे फिर सूर्य-ग्रहण का लगना असभव था। अपर्व मे ग्रहण लगना तो सर्वदा असभव है ही। इसलिए दुर्योधन के मरते समय अपर्व में ग्रहण लगना कवि की कल्पना ही हो सकती है। अत ग्रहण सबधी अन्य चर्चाएँ भी अवास्तविक हो तो क्या आश्चर्य है।

परतु इन उल्लेखो से यह तो स्पष्ट ही है कि ग्रहण कितने-कितने दिन पर लग सकते है इसका अच्छा ज्ञान उस समय भी था।

राहु सूर्य को निगल जाता है, इससे सूर्यग्रहण लगता है, इस कथन से पता नही चलता कि सूर्यग्रहण और चद्रग्रहण का वास्तविक कारण महाभारत के समय के ज्योतिषियो को ज्ञात था या नही। परतु ग्रहो के सबध में महाभारत में कही उन्हे पाँच माना गया है, कही सात। सात ग्रह तभी सभव है जब राहु और केतु भी उनमें गिने जायें। परतु राहु और केतु का भी ग्रह माना जाना सूचित करता है कि उनकी गतियाँ ज्ञात थी। इससे बडी सभावना हो जाती है कि ग्रहणों का ठीक कारण भी उस समय ज्ञात था।

ग्रह

ग्रहो की सख्या के सबध में एक उद्धरण नीचे दिया जाता है

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेया प्रहारिण ॥
राक्षस दुद्रुवु सख्ये ग्रहा पच रवि यथा ॥३७॥

भीष्मपर्व, अ १००.

अर्थ—जैसे पाँच ग्रह सूर्य को घेरते है, वैसे ही द्रौपदी के पाँचो महान धनुर्धर पुत्रो ने क्रुद्ध होकर अलम्बुष नामक राक्षस को घेर कर उस पर आक्रमण किया।

[1] दीक्षित, भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ११५।

ग्रहों की अनुदिश तथा प्रतिदिश (वक्र) गतियाँ, अर्थात उनका आगे और पीछे चलना, भी महाभारत के समय के लोग जानते थे[1]। लिखा है :

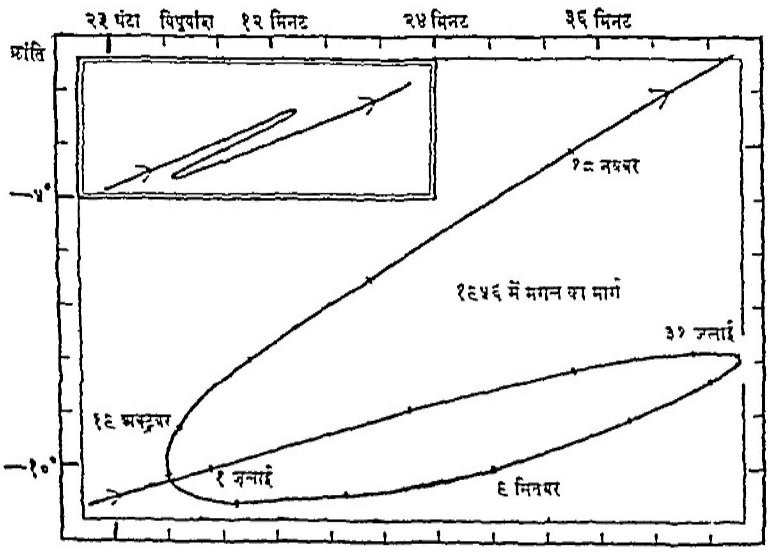
प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने ससप्तकान् बहून् ॥
वक्रातिवक्रगमनादंगारक इव ग्रहः ॥ १ ॥
कर्णपर्व, अ. १४ (भडारकर रि० इं०).

अर्थ—फिर अर्जुन ने पीछे लौटकर बहुत-से ससप्तकों पर उसी प्रकार प्रहार किया जैसे तीव्र वक्र गति से चलता हुआ मङ्गल नामक ग्रह।

तारों के बीच कौन ग्रह कहाँ है इसका उल्लेख बीसों स्थान पर है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

श्वेतोग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ॥ १२ ॥
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति ॥ १३ ॥
मघास्वगारको वक्र श्रवणे च बृहस्पतिः ॥
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीडचते ॥ १४ ॥

[1] पाठकों की जानकारी के लिए नीचे १९५६ में तारों के सापेक्ष मंगल का मार्ग दिखाया गया है। देखें कि लगभग ५ जूलाई से ९ अक्टूबर तक मगल की गति वक्र (अर्थात उलटी दिशा में) है। [कोने में अन्य ग्रह का मार्ग दिखाया गया है।]



रचना सिद्धान्तशिरोमणि को ११५० ई० में तैयार किया। उनके बाद फिर किसी भारतीय ज्योतिषी ने विशेष ख्याति नही प्राप्त की।

आर्यभट के पहले के ज्योतिषी

जैसा ऊपर बताया गया है आर्यभट की पुस्तक आर्यभटीय आज भी प्राप्य है। परतु आर्यभट के पहले भी कुछ प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गये है जिनकी पुस्तकें अब लुप्त हो गयी है। इन ज्योतिषियो में से गर्ग की चर्चा कई स्थानो पर आती है। महाभारत मे लिखा है कि गर्ग महर्षि राजा पृथु के ज्योतिषी थे। उनको काल का ज्ञान विशेष-रूप से अच्छा था। उनका गार्गी-सहिता अब लुप्त हो गया है, परतु सम्भव है गणित-ज्योतिष के बदले इसमें फलित ज्योतिष की बातें ही अधिक रही हो। वराहमिहिर ने पचसिद्धान्तिका के अतिरिक्त बृहत्सहिता नामक ग्रथ भी लिखा है जो फलित ज्योतिष पर है। उसमें उन्होने गर्ग से कई अवतरण दिये है जिनमें से दो तीन यहाँ दिये जाते है[1]

"वृद्ध गर्ग के प्रमाण पर मै कहता हूँ कि सप्तऋषि मघा में थे।"[2]

"देवताओ के निवासस्थान मेरु पर्वत की इस वाटिका में नारद ने रोहिणी योग के नियमो की शिक्षा वृहस्पति को दी। उन्ही नियमो की शिक्षा गर्ग, पराशर, कश्यप और मय अपने अनेक शिष्यो को देते रहे है। उनके तथ्यो का निरीक्षण कर मै सक्षिप्त पुस्तक लिखता हूँ"[3]।

"मैंने केतुओ की चर्चा की है, परतु पहले मैंने गर्ग, पराशर और असित देवल की पुस्तको का, तथा अन्य सब पुस्तको का, चाहे वे गिनती में कितनी भी अधिक हों, अध्ययन कर लिया है"[4]।

पुलिश, जिसके पौलिशसिद्धान्त को सक्षेप में वराहमिहिर ने अपनी पचसिद्धान्तिका मे दिया है, सभवत कोई यवन था, क्योकि अलबीरूनी ने (सन १०३१ ई० में) अपने 'भारतवर्ष' में लिखा है कि पौलिश सिद्धान्त को पुलिश ने बनाया है, जो सैत्र (सम्भवत अलेक्जेंड्रिया) का निवासी था।

[1] के महाशय की पुस्तक 'हिन्दू ऐस्ट्रॉनोमी' में दिये गये अवतरणो से सकलित।

[2] बृहत्सहिता २।३।

[3] बृहत्सहिता २४।२। पराशर तथा कश्यप के बारे में हमें अन्य कोई ज्ञान नहीं है। मय ने सूर्य-सिद्धान्त की घोषणा की थी।

[4] बृहत्सहिता ११।१। असित देवल का भी पता अब नहीं चलता।

ज्योतिष पर बौद्ध धर्म के विचार

बौद्ध धर्म फलित ज्योतिष को, और अशत गणित ज्योतिष को भी, बहुत ही हीन दृष्टि से देखता था। लिखा है कि

"कुछ ब्राह्मण और शर्मा लोग अपनी जीविका का उपार्जन नीच वृत्तियो मे करते है और भय द्वारा दिये गये अन्न का भोग करते है। वे भविष्यवाणी करते है कि सूर्य-ग्रहण लगेगा, चद्रग्रहण लगेगा, नक्षत्रो का ग्रहण लगेगा; चद्रमा और सूर्य पथ में चलेगे, चद्रमा और सूर्य उपपथ मे चलेंगे, नक्षत्र पथ में चलेंगे; नक्षत्र उपपथ में चलेंगे, उल्कापात होगा, दिशा-दाह (?) होगा, भूचाल होगा, देवदुदुभि बजेगी, सूर्य, चद्रमा और नक्षत्र का उलटा-पलटा उदय होगा, अस्त होगा; सब पर विपत्ति पडेगी।"[1]

आर्यभट

जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा, गुप्तकाल में हिंदू धर्म का उत्थान हुआ और यवनो की ज्योतिष का भी भारतवर्ष में आगमन हुआ, तब भारतीय ज्योतिष का भी अध्ययन-अध्यापन ज़ोरो से होने लगा[2]। इसका फल यह हुआ कि विक्रम की छठवी शताब्दी में ज्योतिष के कई आचार्य उत्पन्न हो गये। किसी ने भारतीय ज्योतिष का मथन करके ज्योतिष पर ग्रथ रचे, किसी ने यवन ज्योतिष का सार लेकर ग्रथ बनाये, किसी ने दोनो का सार लेकर ज्योतिष के ग्रथो की रचना की (और किसी ने खोजो से प्राप्त नवीन ज्ञान का भी समावेश किया)। इनमे सब से प्रमुख आर्यभट हुए, जिन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक आर्यभटीय में अपना जन्म-काल कलियुग सवत ३५७७ बताया है और ग्रहो की गणना के लिए ३६०० कलि सवत निश्चय किया है। इनकी पुस्तक मे शक काल अथवा विक्रम सवत की चर्चा नही है। इस नाम के एक और ज्योतिषी ९५० ई० के लगभग हो गये है जिन्होने महासिद्धात नामक ज्योतिष-ग्रथ की रचना की है। इसलिए इन्हें हम प्रथम आर्यभट कहेगे।

[1] दीघनिकाय १।६८ (पाली टेक्स्टबुक सोसायटी)।

[2] यहां से इस अध्याय के अंत तक की पूरी सामग्री मेरे द्वारा सपादित सरल विज्ञानसागर नामक ग्रथ के एक अध्याय से लिया गया है, जिसके लेखक स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव थे।

आर्यभटीय के ध्रुवांक

प्रथम आर्यभट के समय में ६० सवत्सरो के युग का प्रचार अच्छी तरह हो गया था, क्योंकि इन्होंने अपना जन्म-काल बताते हुए ६० सवत्सरो के युग का प्रयोग किया है और लिखा है कि ६० सवत्सरो के ६० युग और तीन युगपाद (सतयुग, त्रेता, द्वापर) जब बीत गये तब मेरे जन्म से २३ वर्ष बीत चुके थे[1]। इन्होंने कुसुमपुर[2] में, जिसे आजकल पटना कहते हैं, अपने ग्रथ आर्यभटीय का निर्माण किया था। ये बडे ही प्रतिभाशाली ज्योतिषी थे और प्राचीन ग्रथो को अपने अनुभवो से शोधकर आर्यभटीय ग्रथ की रचना[3] की। पीछे के आचार्यो, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, आदि, के कथनो[4] से प्रकट होता है कि इन्होंने एक और ग्रथ की रचना की थी जिसके ध्रुवाङ्क आर्यभटीय के ध्रुवाङ्क से कुछ भिन्न थे, युग का आरभ अर्द्ध-रात्रि से माना गया था और महायुगीय सावन दिनो का मान ३०० दिन अधिक था। ब्रह्मगुप्त ने अपने खण्डखाद्यक नामक ज्योतिष-ग्रथ की रचना इन्ही ध्रुवाङ्को के आधार पर की थी। अब इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिल गया है कि आर्यभट ने दो ग्रथो की रचना की थी, एक में युग का आरभ आधी रात से और युग में सावन दिनों की सख्या

[1] षष्ट्यब्दाना षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादा.।
अधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीता ॥१०॥
कालक्रियापाद।

[2] ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चित ज्ञानम् ।१॥
गणितपाद।

[3] सदसज्ज्ञानसमुद्रात् समुद्धृत देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तमरत्न मया निमग्न स्वमतिनावा ॥४९॥
गोलपाद।

[4] युगरविभगणा ख्युघ्रीति यत् प्रोक्त तत्तयोर्युग स्पष्टम्।
त्रिशतानि रवुदयाना तदन्तर हेतुना केन ॥
ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त, ११, ५।

लङ्कार्द्धरात्रसमये दिनप्रवृत्ति जगाद चार्य्यभट।
भूय स एव सूर्य्योदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम् ॥
पंचसिद्धान्तिका, १५, २०।

३०० अधिक मानी गयी थी और दूसरे में युग का आरभ सूर्योदय से माना गया था। पहली गणना को अर्द्ध-रात्रिक गणना और दूसरी को औदयिक गणना कहते हैं। यह प्रमाण महाभास्करीय और लघुभास्करीय नामक ग्रथों से मिलता है। इन पुस्तकों की रचना भास्कर नामक किसी ज्योतिषी ने की थी जो आर्यभट की शिष्य-परपरा में थे और सिद्धान्तशिरोमणि के रचयिता प्रसिद्ध भास्कराचार्य से भिन्न थे। इसलिए इनका नाम भास्कर प्रथम लिखना ठीक होगा। प्रथम पुस्तक में पहले औदयिक[1] विधि से गणना करने के ध्रुवाङ्क दिये गये हैं; फिर अर्द्धरात्रिक विधि से। जान पडता है कि आर्यभट का पहले का लिखा हुआ ग्रथ वही था जो किसी प्रकार लुप्त हो गया और आर्यभटीय दूसरा ग्रथ है जिसकी रचना २३ वर्ष की अवस्था में नही की गयी थी, वरन अधिक अवस्था में की गयी थी, जब आर्यभट ने बार-बार के वेधो से अपनी पहली रचना मे सशोधन कर लिये थे। आर्यभटीय की रचना-पद्धति बहुत ही वैज्ञानिक और भाषा बहुत ही सक्षिप्त तथा मँजी हुई है। इसलिए इनका जन्म-काल बताने वाले श्लोक का अर्थ केवल इतना ही है कि ३६०० कलियुग में उनकी अवस्था २३ वर्ष की थी जब ग्रहो के ध्रुवाङ्कों की गणना निश्चय की गयी थी। यही बात आर्यभटीय के टीकाकारों[2] ने भी मानी है।

संख्या लिखने की अनोखी रीति

आर्यभटीय में कुल १२१ श्लोक हैं जो चार खण्डो मे विभाजित किये गये हैं :— (१) गीतिकापाद, (२) गणितपाद, (३) कालक्रियापाद और (४) गोलपाद। गीतिका-

[1] निबन्धः कर्म्मणां प्रोक्तो योऽसावौदयिको विधिः।
अर्द्धरात्रेस्त्वयं सर्व्वो यो विशेष. स कथ्यते ॥२१॥
त्रिशती भूदिने क्षेप्या ह्यवमेभ्यो विशोध्यते।
ज्ञगुर्वोर्भगणेभ्योऽपि विंशतिश्च ततोऽव्ययः ॥२२॥
अन्यस्याप्येवमेव स्यात् शेषा. प्रागुवतकल्पना।
एतत्सर्वं समासेन तन्त्रान्तरमुदाहृतम् ॥२३॥

[2] एतदेवाचार्य्यार्य्यभटस्य शास्त्रव्याख्यानसमये वा
पाण्डुरंग स्वामिलाटदेवनि शंकुप्रभृतिभ्यः प्रोवाच।
भास्कर प्रथम
अस्यायमभिप्रायः। अस्मिन् काले गीतिकोक्त भगणैस्त्रै-
राशिकेनानीता ग्रहमध्यमोच्चपाताः स्फुटाः स्यु ॥
सूर्यदेव यज्वा की 'प्रकाशिका' टीका

पाद सबसे छोटा, केवल ११ श्लोको का है, परतु इसमें इतनी सामग्री भर दी गयी है जितनी सूर्यसिद्धात के पूरे मध्यमाधिकार और कुछ स्पष्टाधिकार में आयी है। इसके लिए आर्यभट ने अक्षरो द्वारा सक्षेप में सख्या लिखने की एक अनोखी रीति का निर्माण किया है जो इस श्लोक में प्रकट की गयी है --

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ य।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा॥

अर्थ—क से आरम करके वर्ग अक्षरो को वर्ग स्थानो में और अवर्ग अक्षरो को अवर्ग स्थानो में (व्यवहार करना चाहिए), (इस प्रकार) ङ और म मिलकर य (होता है)। वर्ग और अवर्ग स्थानो के ९ के दूने शून्यो को ९ स्वर प्रकट करते हैं। यही (क्रिया) ९ वर्ग स्थानो के अन्त के पश्चात (दुहरानी) चाहिए[1]।

एकाई, सैकडा, दस हजार, दस लाख आदि विषम स्थानो को वर्ग स्थान और दहाई, हजार, लाख आदि सम स्थानों को अवर्ग स्थान कहते हैं, क्योकि १, १००, १०००० आदि के वर्गमूल पूर्णाङ्को में जाने जा सकते हैं, परतु १०, १०००, १००००० आदि के वर्गमूल पूर्णाङ्को मे नही निकल सकते। सस्कृत या हिन्दी व्याकरण में वर्णमाला के अक्षर दो भागो में बाँटे गये है, १६ स्वर और ३३ व्यजन। फिर, व्यजन दो भागो में बाँटे गये हैं, वर्ग और अवर्ग। क से म तक के अक्षर पाँच वर्गो में, अर्थात कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग में, बाँटे गये है। शेष ८ अक्षरो को (अर्थात य, र, ल, व, श, ष, स, ह को) अवर्ग कहा गया है। आर्यभट ने वर्ग अक्षरो को १, २, . ., २५ तक की सख्याओ को सूचित करने के लिए निर्धारित किया, अवर्ग अक्षरो मे ३०, ४०, ,१०० को निरूपित किया, और शून्य लगाने के लिए स्वरो से काम लिया।

[1] इस श्लोक के अर्थ पर पाश्चात्य विद्वानगण व्हिश, ब्राक्हाउस, कर्न, बार्थ, रोडे, के, फ्लीट, क्लार्क और भारतीय विद्वानगण दत्त, गगोली, दास और लहिरी ने अच्छी तरह विचार किया है। 'ख' का अर्थ क्लार्क और फ्लीट ने 'स्थान' किया है, परतु इस का अर्थ शून्य युक्तियुक्त और परम्परा के अनुसार है, और आर्यभटीय के व्याख्याकार भास्कर प्रथम, सूर्यदेव यज्वा आदि ने यही अर्थ किया है (देखें विभूतिभूषण दत्त और अवधेश नारायण सिंह की हिस्टरी ऑव हिन्दू मैथिमैटिक्स, भाग १, पृष्ठ ६५)।

१६ स्वरो में केवल ९ स्वर अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ इस काम के लिए प्रयुक्त होते हैं और वे क्रमानुसार $१००^{०}$, $१००^{१}$, $१००^{२}$, $१००^{३}$, $१००^{४}$, ... प्रकट करते हैं।

रीति का स्पष्टीकरण

पूर्वोक्त कल्पना के अनुसार अक्षरो से सख्या लिखने की रीति यह है —

क = १	ट = ११	फ = २२
ख = २	ठ = १२	व = २३
ग = ३	ड = १३	भ = २४
घ = ४	ढ = १४	म = २५
ङ = ५	ण = १५	य = ३०
च = ६	त = १६	र = ४०
छ = ७	थ = १७	ल = ५०
ज = ८	द = १८	व = ६०
झ = ९	ध = १९	श = ७०
ञ = १०	न = २०	प = ८०
	प = २१	स = ३०,
		ह = १००,

अ = १,

इ = १००,

उ = $१००^{२}$ अर्थात १००००,

ऋ = $१००^{३}$ अर्थात १००००००,

ऌ = $१००^{४}$ अर्थात १००००००००,

ए = $१००^{५}$ अर्थात १००००००००००,

ऐ = $१००^{६}$ अर्थात १००००००००००००,

ओ = $१००^{७}$ अर्थात १००००००००००००००,

औ = $१००^{८}$ अर्थात १००००००००००००००००,

उदाहरण

नियम का अधिक विस्तार न करके केवल तीन उदाहरण देकर बताया जायगा कि आर्यभट ने अपनी रीति का व्यवहार कैसे किया है। एक महायुग में सूर्य पृथ्वी का

४३,२०,००० चक्कर (भगण)[1] लगाता हुआ माना गया है, चन्द्रमा ५,७७,५३,३३६ और पृथ्वी १,५८,२२,३७,५०० वार घूमती हुई मानी गयी है। इन तीन सख्याओ को आर्यभट ने इस प्रकार प्रकट किया है

ख्युघृ, चयगियिङुशुछ्लृ और ङिशिबुण्लृष्खृ

ख २ के लिए लिखा गया है और य ३० के लिए। दोनों अक्षर मिलाकर लिखे गये है और इनमें उ की मात्रा लगी है जो १००² या १०००० के समान है, इसलिए ख्यु का अर्थ हुआ ३२ × १००² या ३२००००। घृ के घ का अर्थ है ४ और ऋ का १००³ या १००००००, इसलिए घृ का अर्थ हुआ ४००००००, इसलिए ख्युघृ = खु + यु + घृ। अब

	खु =	२००००
	यु =	३०००००
	घृ =	४००००००
इसलिए	ख्युघृ =	४३२००००

इसी प्रकार,	च =	६
	य =	३०
	गि =	३००
	यि =	३०००
	ङु =	५००००
	शु =	७०००००
	छ्लृ =	५७००००००
		५७७५३३३६

[1] भग के 'भ' का अर्थ है नक्षत्र, इसीलिए भगण का अर्थ हुआ नक्षत्रगण या रविमार्ग के २७ नक्षत्र, जिन पर एक वार चलने से ग्रहो का एक चक्कर पूरा होता है। इसलिए भगण का अर्थ हुआ चक्कर, और भगणकाल का अर्थ हुआ एक चक्कर या परिक्रमा करने का समय।

यहां छ में लृ की मात्रा नही लगी है वरन् छ और ल मे ऋ की मात्रा लगी है, इसलिए छ्ल का अर्थ हुआ ५७।

ऐसे ही,

डि=	५००
शि=	७०००
वु=	२३००००
णलृ=	१५०००००००००
ख्वृ=	८२००००००
	१५८२२३७५००

सख्या लिखने की इस रीति में सबसे बडा दोष यह है कि यदि अक्षरो मे थोडा-सा भी हेर-फेर हो जाय तो बडी भारी भूल हो सकती है। ऊपर के तीसरे उदाहरण में कर्न की पुस्तक मे वु के स्थान मे षु छप गया है, जिसका अर्थ हुआ ८,००,०००, जब वु का अर्थ होता है २,३०,०००।

दूसरा दोष यह है कि ल में ऋ की मात्रा लगायी जाय तो इसका अब रूप वही होता है जो लृ स्वर का, परन्तु दोनो के अर्थो मे बडा अतर पडता है। दूसरे उदाहरण में छ्लृ में छ और ल अलग-अलग अक्षर है और इन दोनो में ऋ की मात्रा लगायी गयी है, परतु तीसरे उदाहरण में ण मे लृ की मात्रा लगी है, ल स्वतत्र अक्षर नही है। दूसरे उदाहरण का अक्षर छ सात की सख्या सूचित करता है, इसलिए यह ल के साथ, जो ५० की सख्या सूचित करता है, जोडा जा सकता है और दोनो मे ऋ की मात्रा लगायी जा सकती है, परतु तीसरे मे पहला अक्षर ण १५ की सख्या सूचित करता है, इसलिए इसमें ल अक्षर नही जोडा जा सकता, परतु लृ की मात्रा लगायी जा सकती है। निस्सदेह, हाथ से लिखने मे पहले ल मे ऋ की मात्रा और लृ की मात्रा में अतर स्पष्ट कर दिया जाता रहा होगा, परतु आधुनिक छपाई में यह अतर मिट गया है।

आर्यभटीय की विषय-सूची

इन दोषो के होते हुए भी इस प्रणाली के लिए आर्यभट की प्रतिभा की प्रशसा करनी ही पडती है। इसमे उन्होने थोडे ही श्लोको में बहुत-सी बाते लिख डाली है। गागर में सागर भर दिया है।

ऊपर के उद्धृत श्लोक तथा इससे पहले के प्रथम श्लोक की, जिसमे ब्रह्मा और परमब्रह्म की वदना की गयी है, कोई क्रमसख्या नही दी गयी है, क्योकि ये प्रस्तावना

के रूप में है और गीतिकापाद में सम्मिलित नही किये गये है, जैसा कि गीतिकापाद के ११वें श्लोक[1] में आर्यभट ने स्वयं लिखा है। इसके बाद के श्लोक की क्रमसख्या १ है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, शनि, गुरु, मगल, शुक्र और बुध के महायुगीय भगणों की सख्या बतायी गयी है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि आर्यभट ने एक महायुग मे पृथ्वी के घूर्णन की सख्या भी दी है, क्योकि उन्होंने पृथ्वी का दैनिक भ्रमण माना है और इसके लिए आगे गोलपाद के ९वें श्लोक में नौका के चलने का उदाहरण भी दिया है। इस बात के लिए पीछे के आचार्यों ने, जैसे वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि ने, इनकी निन्दा की है। इससे भी आर्यभट की स्वतत्रता का पता चलता है।

अगले श्लोक में ग्रहो के उच्च और पात के महायुगीय भगणो की सख्या बतायी गयी है। तीसरे श्लोक मे बताया गया है कि ब्रह्मा के एक दिन में कितने मन्वन्तर और युग होते है और युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के दिन (गुरुवार) के पहले कितने युग और युगपाद बीत चुके थे। इस श्लोक में भी एक नवीनता है। प्रत्येक महायुग में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग भिन्न-भिन्न परिमाण के माने जाते है। परन्तु आर्यभट ने सबको समान माना है, उन्होंने लिखा है कि वर्तमान महायुग के तीन युगपाद (=युग के चतुर्थांश) बीत गये थे जब कलियुग लगा। आगे के सात श्लोको में राशि, अश, कला आदि का सबध, आकाश-कक्षा का विस्तार, पृथ्वी, सूर्य, चद्र आदि की गति, अगुल, हाथ, पुरुष और योजन का सबध, पृथ्वी के व्यास तथा सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहो के बिम्बो के व्यास के परिमाण, ग्रहो की क्रान्ति और विक्षेप, उनके पातो और मदोच्चोंके स्थान, उनकी मद परिधियो और शीघ्र परिधियो के परिमाण तथा ३ अश ४५ कला के अतरो पर ज्याओं के मानो की सारणी है। इस प्रकार प्रकट है कि आर्यभट ने अपनी नवीन सख्या गणना की पद्धति से ज्योतिष और त्रिकोणमिति की बहुत-सी बातें दस श्लोको म भर दी है।

अकगणित और रेखागणित

आर्यभट पहले आचार्य हुए है जिन्होंने अपने ज्योतिष सिद्धान्त-ग्रथ में अङ्कगणित, बीजगणित और रेखागणित के प्रश्न दिये है। उन्होंने बहुत-से कठिन प्रश्नो को तीन श्लोको मे भर दिया है। एक श्लोक मे तो श्रेढी-गणित के ५ नियम आ गये है। पहले श्लोक में अपना नाम और स्थान भी बता दिया है। स्थान कुसुमपुर

[1] दशगीतिकासूत्रमिद भूग्रहचरित भपञ्जरे ज्ञात्वा।
ग्रहभगणपरिभ्रमण स याति भित्त्वा पर ब्रह्म॥

है, जिसे आजकल पटना कहते हैं। दूसरे श्लोक में संख्या लिखने की दशमलव पद्धति की एकाइयों के नाम हैं। इसके आगे के श्लोकों में वर्ग, वर्गक्षेत्र, घन, घनफल, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, त्रिभुजाकार शंकु का घनफल, वृत्त का क्षेत्र-फल, गोल का घनफल, विषम-चतुर्भुज क्षेत्र के कर्णों के सम्पात से भुज की दूरी और क्षेत्रफल तथा सब प्रकार के क्षेत्रों की मध्यम लम्बाई और चौड़ाई जानकर क्षेत्रफल जानने के साधारण नियम दिये गये हैं। एक जगह बताया गया है कि परिधि के छठवें भाग की ज्या उसकी त्रिज्या के समान होती है। एक श्लोक में बताया गया है कि वृत्त का व्यास दो हजार हो तो उसकी परिधि ६२८३२ होती है। इससे परिधि और व्यास का संबंध चौथे दशमलव स्थान तक शुद्ध आ जाता है। दो श्लोको में ज्याओं के जानने की व्युत्पत्ति बतायी गयी है, जिससे सिद्ध होता है कि ज्याओं की सारणी आर्यभट ने कैसे बनायी थी। आगे वृत्त, त्रिभुज और चतुर्भुज खींचने की रीति, समतल के परखने की रीति, लवक (साहुल प्रयोग करने की रीति, शंकु और छाया से छायाकर्ण जानने की रीति, किसी दीपक और उससे बनी हुई शंकु की छाया से दीपक की ऊँचाई और दूरी जानने की रीति, एक ही रेखापर स्थित दीपक और दो शंकुओं के संबंध के प्रश्न की गणना करने की रीति, समकोण त्रिभुज के भुजों और कर्ण के वर्गों का संबंध, जिसे पाइथागोरस का नियम कहते हैं, परन्तु जो शुल्व सूत्र में हजारों वर्ष पहले लिखा गया था, वृत्त की जीवा और शरों का संबंध, दो काटते हुए वृत्तों के सामान्य खण्ड और शरों का संबंध, दो श्लोकों में श्रेढ़ी-गणित के कई नियम, एक श्लोक में एक-एक बढ़ती हुई संख्याओं के वर्गों और घनों का योगफल जानने का नियम, यह नियम कि

$$(\text{क}+\text{ख})^{2}-(\text{क}^{2}+\text{ख}^{2})=2\ \text{कख},$$

दो राशियों का गुणनफल और अंतर जानकर राशियों को अलग-अलग करने की रीति, ब्याज की दर जानने का एक कठिन प्रश्न जो वर्ग समीकरण का उदाहरण है, त्रैराशिक का नियम, भिन्न के हरों को सामान्य हर में बदलने की रीति, भिन्नों को गुणा और भाग देने की रीति, बीजगणित के कुछ कठिन समीकरणों को सिद्ध करने के नियम, दो ग्रहों का युतिकाल जानने का नियम[1] और कुट्टक नियम बताये गये हैं।

जितनी बातें ३० श्लोकों में बतायी गयी हैं उनको यदि आजकल की परिपाटी के अनुसार विस्तार करके लिखा जाय तो एक बड़ी-सी पुस्तक बन सकती है और

[1] अर्थात इनडिटर्मिनेट समीकरणों के हल करने का का नियम।

इन सबको समझने के लिए हाई-स्कूल तक की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी भी कठिनाई का अनुभव करेंगे।

कालक्रियापाद

कालक्रियापाद नामक अध्याय में ज्योतिष सबंधी बातें हैं। पहले दो श्लोको में काल और कोण की एकाइयो का सबध बताया गया है। आगे के ६ श्लोको में अनेक प्रकार के मासो, वर्षों और युगो का सबध बताया गया है। यहाँ एक विशेषता है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ब्रह्मा का दिन या कल्प १००८ महायुगो का बताया गया है जो गीता, मनुस्मृति तथा अन्य सिद्धान्त-ग्रथो के प्रतिकूल है, क्योकि वे एक हजार महायुग का कल्प मानते हैं। नवे श्लोक में बताया गया है कि युग का प्रथमार्ध उत्सर्पिणी और उत्तरार्ध अवसर्पिणी काल है और इनका विचार चन्द्रोच्च से किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ समझ मे नही आता। किसी टीकाकार ने इसकी सतोषजनक व्याख्या नही की है। दसवे श्लोक की चर्चा पहले ही आ चुकी है जिसमे आर्यभट ने अपने जन्म का समय बताया है। इसके आगे बताया है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से युग, वर्ष, मास और दिवस की गणना आरभ होती है। आगे के २० श्लोको मे ग्रहो की मध्यम और स्पष्टगति सबधी नियम है।

गोलपाद

गोलपाद आर्यभटीय का अतिम अध्याय है। इसमें ५० श्लोक हैं। पहले श्लोक से प्रकट होता है कि रविमार्ग के जिस विन्दु को आर्यभट ने मेषादि माना है वह वसत-विषुव विन्दु था, क्योकि वे कहते है कि मेष के आदि मे कन्या के अत तक रवि-मार्ग उत्तर की ओर हटा रहता है और तुला के आदि से मीन के अत तक दक्षिण की ओर। आगे के दो श्लोको में बताया गया है कि ग्रहो के पात और पृथ्वी की छाया, ये रविमार्ग पर भ्रमण करते है। चौथे श्लोक में बताया गया है कि सूर्य से कितने अतर पर चन्द्रमा, मगल, बुध, आदि दृश्य होते है। पाँचवां श्लोक बताता है कि पृथ्वी, ग्रहो और नक्षत्रो का आधा भाग अपनी ही छाया मे अप्रकाशित है और आधा सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित है, यद्यपि नक्षत्रो के सबध में यह बात ठीक नही है। श्लोक ६, ७ में बताया गया है कि पृथ्वी के चारो ओर जल-वायु आदि फैले हुए हैं। ८वें श्लोक मे यह विचित्र बात बतायी गयी है कि ब्रह्मा के दिन में पृथ्वी की गोलाई एक योजन बढ जाती है और ब्रह्मा की रात्रि मे एक योजन घट जाती है। श्लोक ९ मे बताया गया है कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर पेडो को उल्टी दिशा मे चलता हुआ देखता है, वैसे ही लका (भूमध्य रेखा) मे स्थिर

तारे पश्चिम की ओर चलते हुए दिखाई पडते है। परतु १०वें श्लोक में यह भी बताया गया है कि प्रवह वायु के कारण नक्षत्र-चक्र और ग्रह पश्चिम की ओर चलते हुए उदय-अस्त होते है। श्लोक ११ में सुमेरु पर्वत (उत्तरी ध्रुव) का आकार और श्लोक १२ में सुमेरु और वडवामुख (दक्षिणी ध्रुव) की स्थिति बतायी गयी है। श्लोक १३ में विषुवत रेखा पर नव्वे-नव्वे अश की दूरी पर स्थित चार नगरो का वर्णन है। श्लोक १४ में लका मे उज्जैन का अतर बताया गया है, जिससे लका का अक्षाश ज्ञात होता है। श्लोक १५ में बताया गया है कि भूगोल की मोटाई के कारण खगोल आधे भाग से कम क्यो दिखायी पडता है। १६वें श्लोक में बताया गया है कि उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव पर खगोल किस प्रकार घूमता हुआ दिखायी पडता है। श्लोक १७ में देवताओ, असुरो, पितरो और मनुष्यो के दिन-रात का परिमाण है। श्लोक १८ मे २१ तक खगोल-गणित की कुछ परिभाषाएँ है। श्लोक २२, २३ में भू-भगोल यत्र का वर्णन है। श्लोक २४-३३ मे त्रिप्रश्नाधिकार के प्रधान सूत्रो का वर्णन है, जिनसे लग्न, काल, आदि, जाने जाते है। श्लोक ३४ में लम्बन, ३५ में दृक्कर्म और ३६ में अयन दृक्कर्म का वर्णन है। श्लोक ३७ से ४७ तक मे सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणो की गणना करने की रीति है। श्लोक ४८ मे बताया गया है कि क्षितिज और सूर्य के योग से सूर्य के, सूर्य और चन्द्रमा के योग मे चन्द्रमा के, और चन्द्रमा, ग्रह तथा तारो के योग से सब ग्रहो के मूलाङ्क जाने गये है। श्लोक ४९ में बताया गया है कि सत और असत ज्ञान के समुद्र से बुद्धि रूपी नाव में बैठकर सद्ज्ञान रूपी ग्रथरत्न किस प्रकार निकाला गया है। श्लोक ५० में बताया गया है कि आर्यभटीय ग्रथ वैसा ही है जैसा आदि काल मे स्वयम्भू का था, इसलिए जो कोई इसकी निन्दा करेगा उसके यश और आयु का नाश होगा।

आर्यभटीय के इतने वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें ज्योतिष-सिद्धान्त की प्राय सभी बाते और उच्चगणित की कुछ बाते सूत्र रूप मे लिखी गयी है। इसमें तिथि, नक्षत्र, आदि, की गणना तथा नक्षत्रों की सूची और उनकी स्थितियो के सम्बध में कुछ नही कहा गया है। जान पडता है कि इन सब बातो का विशद विवेचन आर्यभट ने अपने दूसरे ग्रथ में किया था जिसका पता अब नही है।

आर्यभटीय की टीकाएँ

दक्षिण भारत में आर्यभटीय के आधार पर बने हुए पचाग वैष्णव धर्म वालो को मान्य होते है। ब्रह्मगुप्त, जो आर्यभट के बडे तीव्र समालोचक थे, अत में इसी के आधार पर खण्डखाद्यक नामक करण-ग्रथ लिखा था। हिन्दी मे आर्यभटीय की

कोई अच्छी टीका नही है। संस्कृत में इसकी चार टीकाएँ हैं। प्रथम भास्कर, सूर्यदेव यज्वा, परमेश्वर और नीलकंठ की टीकाओं की चर्चा हिस्ट्री ऑव हिन्दू मैथिमैटिक्स[1] में है। इनमें से परमेश्वर या परमादीश्वर की भटदीपिका टीका के साथ उदयनारायण सिंह ने अपनी हिन्दी की टीका संवत १९६३ में प्रकाशित की थी। सूर्यदेव यज्वा की संस्कृत टीका का नाम आर्यभट-प्रकाश है। यह टीका भटदीपिका से बहुत अच्छी है, परन्तु अभी तक छपी नही है। अँग्रेजी में आर्यभटीय की एक टीका डाक्टर कर्न ने भटदीपिका के साथ सन १८७४ ई० में लाइडेन (हालैण्ड) में छापी थी।

[1] विभूतिभूषण दत्त तथा अवधेश नारायण सिंह कृत।

अध्याय ६

वराहमिहिर

पंचसिद्धातिका

भारतीय ज्योतिप के इतिहास में वराहमिहिर-लिखित पचसिद्धातिका का विशेप महत्त्व है, क्योकि इस अकेले ग्रथ से पाँच विभिन्न सिद्धानो का परिचय मिलता है, जिनमें से कुछ तो वराहमिहिर के समय से बहुत प्राचीन समय के थे और कुछ उसी समय के। बहुत दिनो तक यह ग्रथ अप्राप्य था, परतु प्रोफेसर बूलर जिनको बम्बई की सरकार ने सस्कृत हस्तलिखित पोथियो की खोज का काम सिपुर्द किया था, इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त करने मे सफल हुए। डाक्टर थीबो और महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी ने इसे अँग्रेजी अनुवाद और सस्कृत टीका सहित सन १८८९ मे प्रकाशित किया। डाक्टर थीबो ने इस अनुवाद के साथ एक विस्तृत भूमिका भी लिखी है। नीचे दी हुई बातें अधिकतर थीबो के अनुसार है।

पुस्तक की मूल दोनो प्रतियाँ बहुत स्थानों में अशुद्ध थी, यहाँ तक की उनका अर्थ लगाना कठिन था। अनुमान से पाठ का सशोधन करके सशोधित पाठ छापा गया है। परतु कही-कही तो इस प्रकार का अनुमान लगाना भी कठिन हो गया। यदि पचसिद्धातिका का कोई प्राचीन भाष्य होता तो इतनी कठिनाई न होती, परन्तु दुर्भाग्यवश कोई भी भाष्य उपलब्ध न था।

सूर्य-सिद्धात मे लिखा है कि सूर्य ने स्वय उस पुस्तक मे बतायी गयी विद्या को मयासुर को बताया और उसने दूसरो को। इस प्रकार पाठको के हृदय मे यह बात जम जाती है कि उस पुस्तक मे कोई त्रुटि नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें स्वय सूर्य भगवान की बतायी हुई बातें है। इसी प्रकार अन्य सिद्धातो में भी प्रमाणिकता प्राप्त करने की कोई-न-कोई कथा रहती है। वराहमिहिर भी चाहते तो अपना सिद्धात ही लिखते, उनके पाडित्य में कोई भी शका नही है। परतु उन्होने उसके बदले अपने समय के पाँच प्रमुख सिद्धातो का सारांश दिया। इतिहास की दृष्टि से यह बहुत ही अच्छा हुआ।

करणग्रंथ

यद्यपि ग्रंथ का नाम पचसिद्धातिका है, जिसमे बोध होता है कि इसमें पाँच सिद्धात दिये गये है, तो भी यह करणग्रंथ है। करणग्रंथ का अर्थ है काम-चलाऊ पुस्तक। करणग्रंथो में ऐसे नियम दिये रहते है जिनसे ज्योतिष की प्रमुख गणनाएँ चटपट हो जाती है, चाहे उत्तर पूर्णतया शुद्ध होने के बदले केवल मोटे ही हिसाब से शुद्ध निकले। सिद्धान-ग्रंथो में नियमो के सिद्धात दिये रहते है और ऐसे नियम दिये रहते है जिनसे उत्तर यथासभव शुद्ध निकले, चाहे उन्हें निकालने में बहुत अधिक समय क्यो न लगे। परतु पचसिद्धातिका में कई स्थानो में ऐसे विषय भी है जो साधारणत करणग्रंथो मे नही रहते, केवल सिद्धातो मे रहते है।

विवादग्रस्त अध्याय

पचसिद्धातिका में पैतामह, वासिष्ठ, रोमक, पौलिश और सौर (सूर्य) इन पाँच सिद्धातो का साराश दिया गया है। वराहमिहिर ने यह भी लिख दिया है कि इन सिद्धातो में सबसे उत्तम कौन-सा है और शेष के स्थान क्या है। उन्होने कहा है कि सूर्य-सिद्धात सबसे उत्तम है, उसके बाद रोमक और पौलिश लगभग समकक्ष है और शेष दो सिद्धात इनसे बहुत हीन है। पचसिद्धातिका में इन सिद्धातो का विस्तार भी लगभग इसी क्रम में है। परतु थीबो और सुधाकर द्विवेदी यह ठीक-ठीक निर्णय नही कर पाये कि प्रत्येक सिद्धान का विस्तार पचसिद्धातिका में कहाँ तक है, क्योकि कुछ अध्याय ऐसे है जिनके न आरभ मे और न अत में, या कही अन्यत्र, बताया गया है कि किस सिद्धात के अनुसार वह अध्याय लिखा गया है। अधिकाश अध्यायो के बारे में कोई सदेह नही है। विवादग्रस्त अध्याय सभवत वराहमिहिर के निजी है, या सभवत वे दो या अधिक सिद्धातो में सर्वनिष्ठ है।

सूर्य-सिद्धात

सूर्य-सिद्धान नामक ग्रंथ हमें अलग से भी उपलब्ध है और इस ग्रंथ का साराश पचसिद्धातिका में भी है। तुलना करने से पता चलता है कि दोनो में बहुत अतर है। ऐसा जान पडता है कि पुराने सूर्य-सिद्धात में, जो वराहमिहिर के समय में प्रचलित था, पीछे से सशोधन कर दिये गये है, जिनका उद्देश्य यह था कि सूर्य, चद्रमा, आदि, के भगण (चक्कर लगाने का काल) वेध-प्राप्त (अर्थात आँख से देखे गये या यत्रो से नापे गये) मानो के यथासभव निकट आ जायें। सशोधित सूर्य-सिद्धात पुराने ग्रंथ से अधिक शुद्ध फल देता है, इसमें सदेह नही। इस सशोधित सूर्य-सिद्धात को

हम आधुनिक सूर्य-सिद्धात कहा करेगे, यद्यपि सशोधन हुए लगभग १००० वर्ष हो गये हैं। कई बातो के सूक्ष्म विवेचन से थीबो और सुधाकर द्विवेदी इस निर्णय पर पहुँचे कि वराहमिहिर ने अपने समय में प्रचलित सूर्य-सिद्धात का सच्चा साराश दिया है, उसमे कोई मनमाना परिवर्तन नही किया है। इससे उनको विश्वास हो गया कि अन्य चार सिद्धातो का साराश भी वराहमिहिर ने बिना कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये ही दिया होगा।

सिद्धात ग्रथो मे कलियुग के आरभ से गणना करने की परिपाटी है। आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे दी हुई बातो के अनुसार हम कलियुग के आरभ की गणना कर सकते है। इस प्रकार कलियुग का आरभ ३१०२ ईसवी पूर्व की १८वी फरवरी के प्रारभ वाली अर्धरात्रि पर होना ठहरता है। सिद्धातो मे यह भी बताया जाता है कि कलियुग के आरभ मे सूर्य चद्रमा, मगल, बुध आदि ग्रह, राहु और वसंत विषुव का क्या स्थान था। यह भी दिया रहता है कि एक युग मे कितने वर्ष और कितने अहोरात्र होते है, चद्रमा कितना चक्कर लगाता है, मगल कितना, इत्यादि। इस प्रकार सूर्य आदि पिडो का कोणीय वेग ज्ञात रहता है, उनकी प्रारभिक स्थिति ज्ञात रहती है और यह भी ज्ञात रहता है कि कलियुग के आरभ से इष्ट समय तक कितने दिन बीते है। इसलिए सरल अकगणित से ज्ञात किया जा सकता है कि इष्ट समय पर उस पिड की स्थिति क्या है, अर्थात चलते-चलते अपने आकाशीय मार्ग में वह पिड कहाँ पहुँचा होगा।

लबी गणनाएँ

थोडा विचार करने से पाठक सुगमता से देख सकता है कि ऊपर की रीति में बहुत-सा परिश्रम बेकार करना पडता है। पिड ने जितने समूचे चक्कर लगा लिये है उनसे हमारा कुछ प्रयोजन नही रहता। इसलिए कलियुग के आरभ से गणना करने के बदले क्यो न किसी निकटतर क्षण से गणना आरभ की जाय? उदाहरणत, यह भी तो सभव है कि हम किसी सुविधाजनक दिनाक को चुन ले, उस दिन किसी सुविधाजनक क्षण को चुन ले और सब आवश्यक आकाशीय पिडो की स्थितियो की गणना उस क्षण के लिए कर ले। यह काम बस एक बार करना पडेगा। फिर यह देखे कि चुने क्षण से इष्ट क्षण तक (आज स्थिति जाननी हो तो आज तक) कितने दिन बीते है। फिर, पिडो का कोणीय वेग ज्ञात है ही, अर्थात यह ज्ञात है कि एक दिन मे वह कितना अश (कितना डिगरी) चलता है। इस प्रकार हम गणना कर सकते है कि इष्ट क्षण पर पिड की स्थिति क्या होगी। इस गणना मे विशेष सुविधा यह है कि चुने हुए प्रारभिक क्षण से इष्ट क्षण तक थोडे ही दिन बीते रहेंगे (कुछ सौ या

कुछ हजार दिन) और इसलिए यदि पिडो की दैनिक गति में थोडी-बहुत त्रुटि भी रहेगी तो इष्ट क्षण पर गणना द्वारा प्राप्त स्थिति में उपेक्षणीय ही अतर पडेगा। पाठक सुगमता से समझ सकता है कि जब कलियुग के आरभ से गणना की जाती है तो तब से आज तक के दिनो की सख्या, जिसे ज्योतिष में अहर्गण कहते है, बहुत ही बडी हो जाती है, और पिड में तनिक-सी भी त्रुटि रहने मे पिंड की इष्टकालिक स्थिति मे अनुपेक्षणीय अशुद्धि आ जाती है।

करणग्रथो मे ठीक वही काम किया जाता है जो ऊपर बताया गया है एक क्षण चुन लिया जाता है जो इष्ट समय के पर्याप्त निकट रहता है और तभी से गणना की जाती है। वस्तुत, कुछ लोग इसी बात को करणग्रथ का मुख्य लक्षण समझते है। उनके विचार में वह ग्रथ सिद्धात है जिसमे कलियुग के आरभ से गणना हो और वह करणग्रथ है जिसमें किसी निकटस्थ विशिष्ट काल से गणना हो[1]। यह विशिष्ट काल (जिसे हम आदिकाल कहेंगे) ग्रथकार की रुचि के अनुसार ग्रथ आरभ करने का दिन होता है, या ग्रथकार का जन्म दिन होता है, या उस समय के राजा के राजगद्दी पाने का दिन होता है, या इसी प्रकार का कोई महत्त्वपूर्ण अवसर चुना जाता है। इसलिए आदिकाल ज्ञात होने से ग्रथ के रचनाकाल का भी अनुमान लग जाता है। पचसिद्धातिका के आदिकाल पर विचार नीचे किया जायगा।

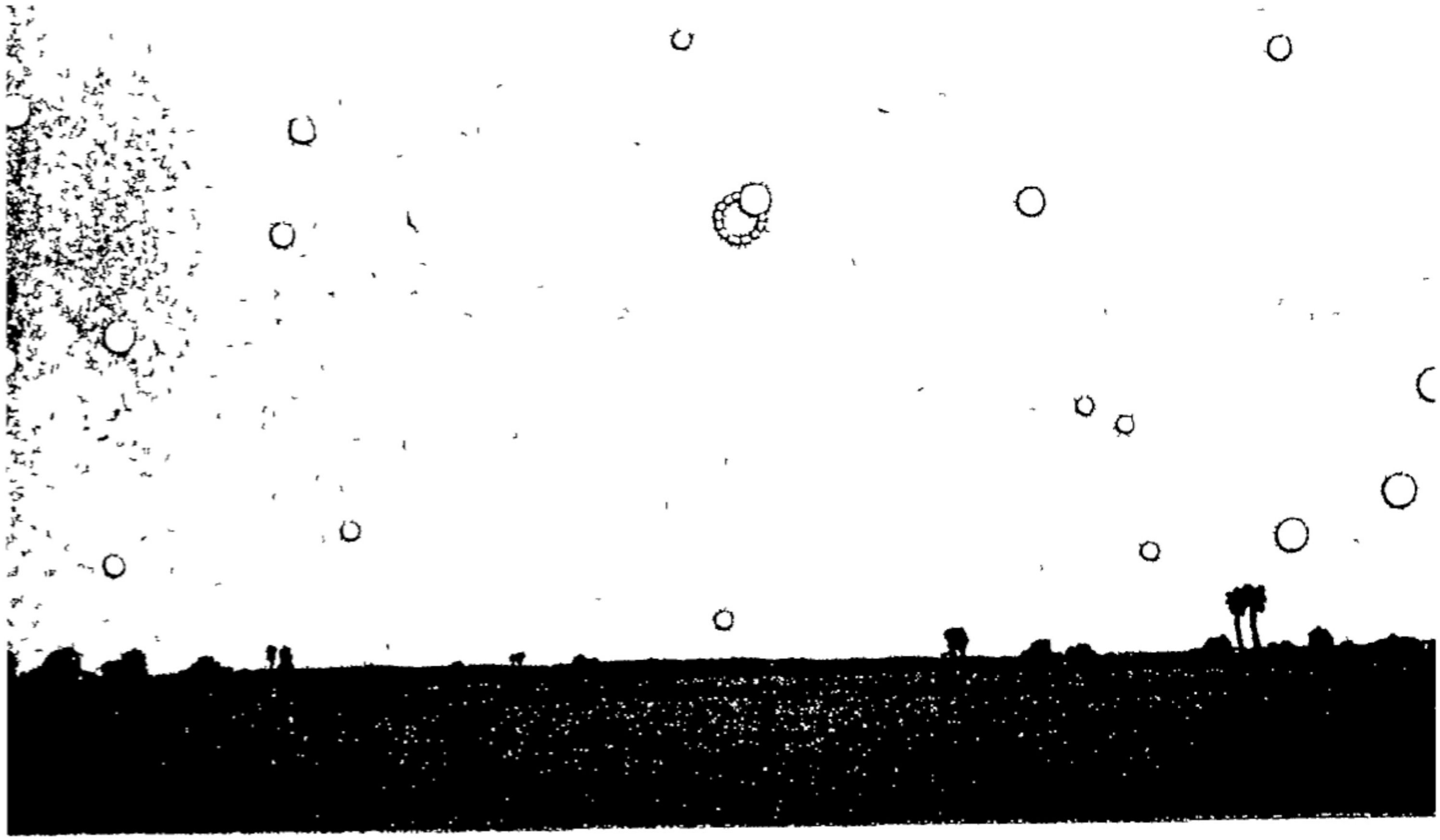
पितामह-सिद्धात

पचसिद्धातिका का बारहवाँ अध्याय पितामह-सिद्धात का साराश देता है। इस अध्याय मे कुल पाँच श्लोक है। प्रथम तीन का अर्थ नीचे दिया जाता है, जिसमे पचसिद्धातिका की शैली का नमूना मिल जायगा —

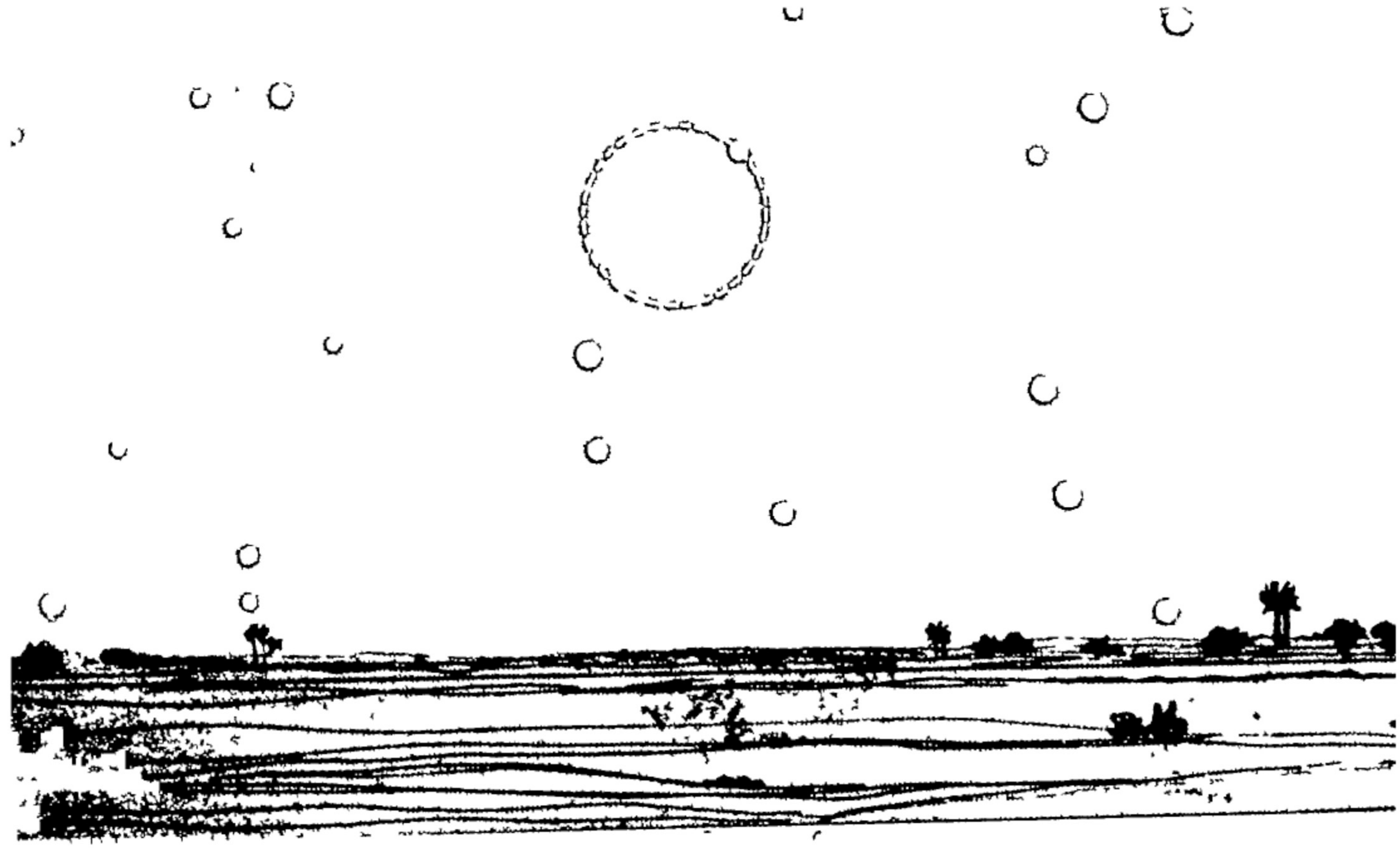
१ पितामह के अनुसार रवि और शशि का युग पाँच वर्ष का होता है। तीस महीने में एक अधिमास होता है और बासठ दिनो में एक तिथि का क्षय होता है।

२ शकेंद्र काल (शको के राजा के अनुसार चलने वाले वर्ष) से २ घटा दो और उसे पाँच से भाग दो। जो शेष बचे उससे अहर्गण बनाओ, और वह (अहर्गण) माघ शुक्ल पक्ष से आरभ होगा।

[1] कुछ लोग कलियुग से गणना करने वाले ग्रथो को तत्र कहते है, और केवल उन ग्रथो को सिद्धात कहते है जिनमें कल्प के आदि से गणना की जाती है, परन्तु अधिकाश लोग सिद्धात और तत्र को पर्यायवाची समझते है।

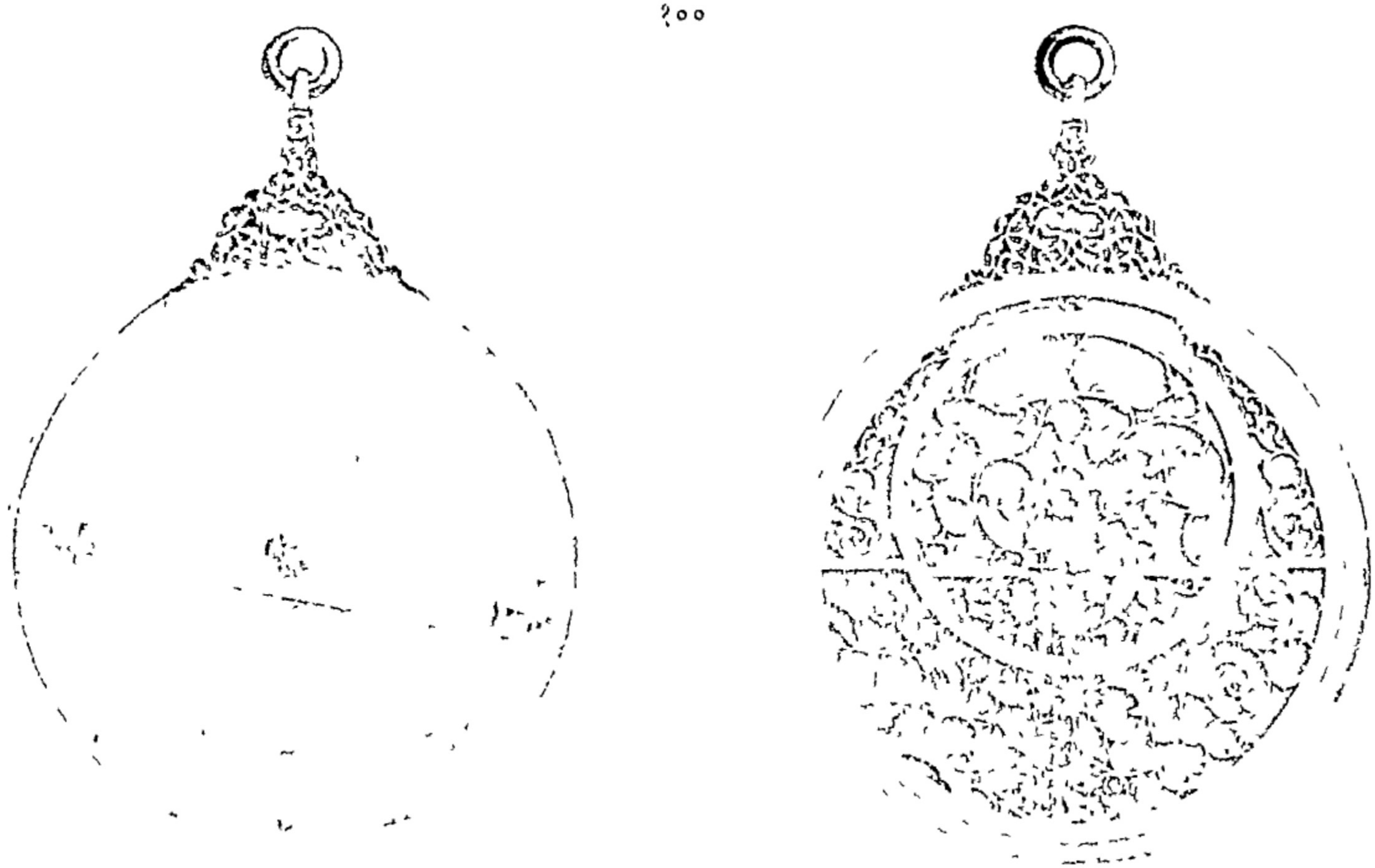


वर्तमान ध्रुव-तारा।
वर्तमान ध्रुव-तारा पूर्णतया अचर नही हैं। यह बहुत छोटे वृत्त मे प्रति दिन एक चक्कर लगाता हैं।

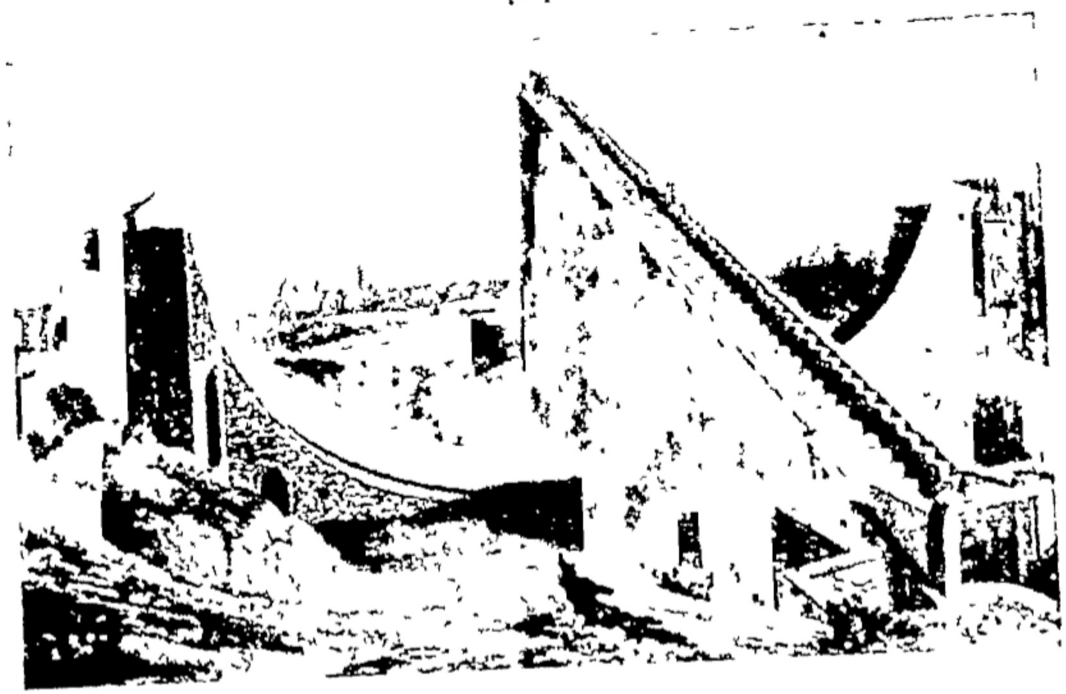


सन १३०० ई० पू० में

... था और प्रति दिन इतने बड़े वृत्त मे चलता था कि कोई उसे ध्रुव नही मान सकता था ।

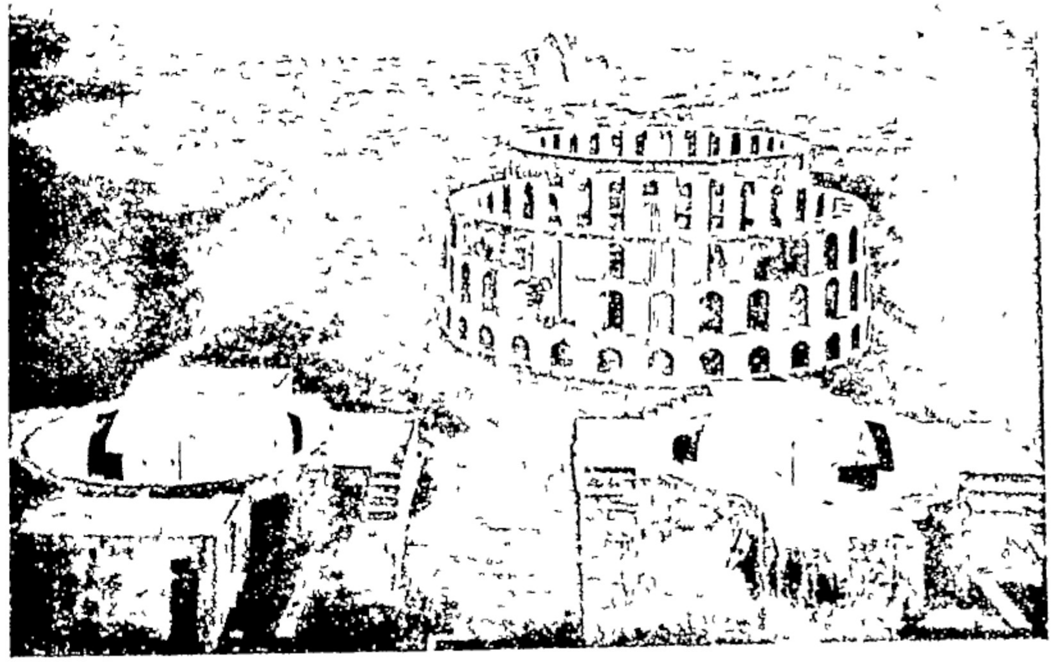


यन्त्रराज।
जयसिंह के बनवाये पीतल के ये यंत्र जयपुर में सुरक्षित हैं।



सम्राट-यंत्र, दिल्ली।

सन १८१५ में प्रकाशित एक चित्र में। अब इस यंत्र का पुनरुद्धार कर दिया गया है। दिल्ली के प्रसिद्ध 'जंतर-मंतर' नामक उद्यान में यह सबसे बड़ा यंत्र है। इससे तारों की स्थिति बताने वाले निर्देशांक (विषुवांश और क्रांति) नापे जाते हैं।



रामयंत्र, दिल्ली।

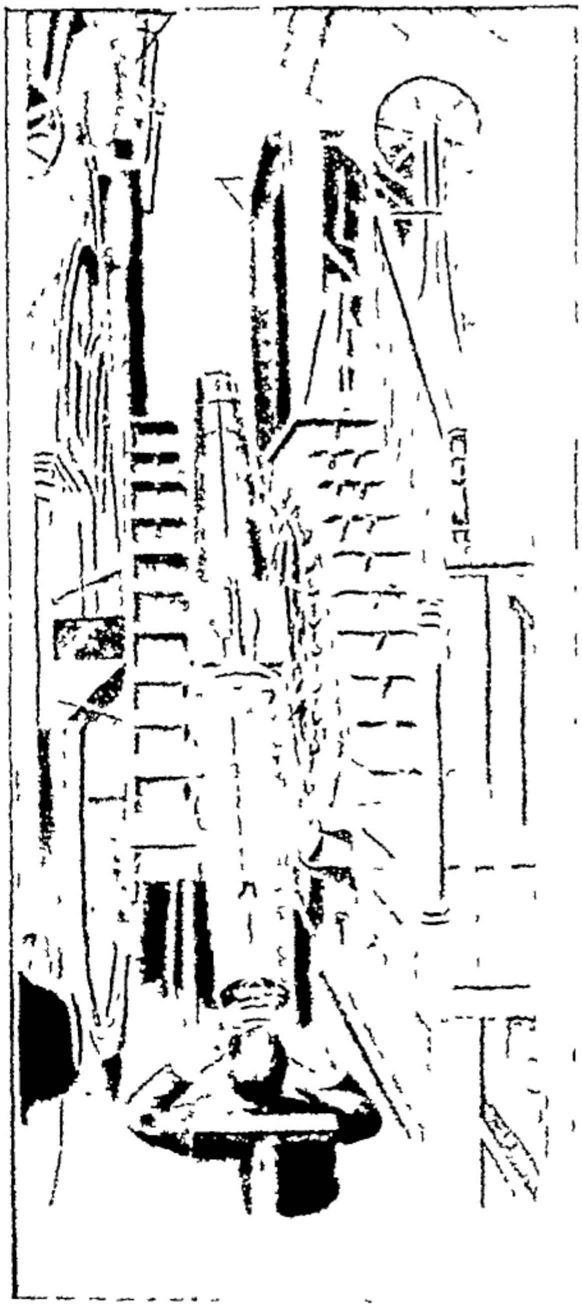
रामयन्त्र में वस्तुतः एक जोडी यंत्र रहते हैं और इनसे उन्नतांश और दिगंश नापे जाते हैं। अग्रभूमि में एक जोडी जयप्रकाश यंत्र है। [के महोदय की पुस्तक "एस्ट्रोनॉमिकल ऑब्ज़रवेटरीज ऑव जयसिंह" से]



[छायाकार : अरुण कुमार राय

मिश्र-यंत्र, दिल्ली।

दिल्ली के जन्तर-मन्तर में एक यंत्र यह भी है। इस अकेले यंत्र से कई यंत्रों का काम चल सकता है। इसी से इसे मिश्रयंत्र कहते हैं।



आधुनिक याम्योत्तर यंत्र ।

३ यदि अहर्गण में उसी का एकसठवाँ भाग जोड दिया जाय तो योगफल तिथियाँ वतायेगा। यदि अहर्गण को ९ से गुणा किया जाय और गुणनफल को १२२ से भाग दिया जाय तो फल सूर्य का नक्षत्र वतायेगा। अहर्गण को ७ से गुणा करो, फिर ६१० से भाग दो और फल को (अहर्गण मे) घटाओ। फल चद्रमा का नक्षत्र होगा, जो धनिष्ठा के आरम्भ से गिना जायगा।

ऊपर के अनुवाद मे बहुत से शब्द आ गये है जो मूल सस्कृत में नही है। मूल पाठ तो बहुत ही सक्षिप्त है। उदाहरणत तीसरा श्लोक इस प्रकार है[1]।--

सैकषष्टयंशे गणे तिथिर्भमार्कं नवाहतेऽक्ष्यर्कैः।
दिग्रसभागैः सप्तभिरून शशिभं धनिष्ठाद्यम् ।।३।।

पचसिद्धानिका में १८ अध्याय है और कुल ४४२ श्लोक है।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि पैतामह-सिद्धात मे वेदाग-ज्योतिष की तरह पाँच वर्ष का युग था। अन्य बातो में भी यह वेदाग-ज्योतिष से मिलता-जुलता है। वर्ष मे महत्तम दिनमान १८ मुहूर्त माना गया है और लघुतम दिनमान १२ मुहूर्त।

रोमक-सिद्धात

पचसिद्धातिका के प्रथम अध्याय के पद्रहवें श्लोक में रोमक-सिद्धात के युग का सक्षिप्त वर्णन है। यह युग भी सूर्य और चद्रमा का युग कहा गया है, परतु इसमें २८५० वर्ष है। कहा गया है कि एक युग मे १०५० अधिमास होते है और १६५४७ क्षय तिथियाँ। यदि हम इन सख्याओ को १५० से भाग दे दें तो रोमक-सिद्धात के अनुसार १९ वर्ष में ठीक-ठीक ७ अधिमास होते है। ये सख्याएँ ठीक वे ही है जिनका प्रचार प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी मेटन ने लगभग ४३० ई० पू० में—वराहमिहिर के समय से लगभग एक हजार वर्ष पहले—किया था। रोमक-सिद्धात के कर्त्ता ने १९ वर्ष का युग न मानकर २८५० वर्षो का युग इसलिए लिया कि युग में केवल वर्षो और मासो की ही सख्याएँ पूर्ण सख्याएँ न हो, दिनों की सख्या भी पूर्ण सख्या हो। रोमक-सिद्धात मे दी हुई बातो के आधार पर गणना करने से पता चलता है कि उसके कर्त्ता के अनुसार वर्ष का मान

३६५ दिन ५ घटा ५५ मिनट १२ सेकड

[1] यह सशोधित पाठ है।

इति० ८

था। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार वर्ष[1] मे लगभग ३६५ दिन ५ घटा ४८ मिनट ४६ सेकड होता है। रोमक का वर्षमान ठीक वही है जो यवन ज्योतिषी हिपार्कस का था[2]।

कुछ अन्य बातो में भी रोमक-सिद्धात और यवन (अर्थात ग्रीस देश के) ज्योतिष मे समानता है, परतु कई बातो मे विभिन्नता भी है।

रोमक-सिद्धात का लेखक

रोमक-सिद्धात को श्रीषेण ने लिखा था। परतु थीबो का मत है कि श्रीषेण ने कोई मौलिक पुस्तक नही लिखी थी। उसने किसी पुराने रोमक-सिद्धात को केवल नवीन रूप दिया था। ब्रह्मगुप्त ने अपने स्फुट-सिद्धात में श्रीषेण के नाम का कई बार उल्लेख किया है और इन स्थानो पर टीका करते समय ब्रह्मगुप्त के टीकाकार ने स्पष्ट रूप से और कई बार लिखा है कि रोमक-सिद्धात का लेखक श्रीषेण था। परतु थीबो ने स्फुट-सिद्धात के पाठ का कुछ सशोधन करके निम्न अर्थ लगाया है

"श्रीषेण, विष्णुचद्र, प्रद्युम्न, आर्यभट, लाट और सिह की ग्रहणादि विषयो पर बाते एक दूसरे के विपरीन होने से यह प्रति दिवस सिद्ध है कि वे अज्ञानी है। (इस अध्याय के पूर्वगामी खड में) मैने जो दूषण आर्यभट के सबध में बताये है वे थोडे हेर-फेर मे पूर्वोक्त सभी आचार्यो पर लागू है। परतु मै श्रीषेण आदि पर कुछ और आलोचना करता हूँ।" "लाट से श्रीषेण ने सूर्य और चद्रमा की मध्य गतियाँ ली, चद्रोच्च और पात भी लिया, फिर मगल, बुध-शीघ्र, बृहस्पति, शुक्र-शीघ्र और शनि की गतियाँ भी ली, वसिष्ठ से व्यतीत वर्षो की सख्या और युगो का भगण लिया, आर्यभट से मदोच्च, परिधि और पात सबधी नियम लिये और ग्रहो की स्पष्ट गतियाँ भी, और इस प्रकार रत्नो की ढेर रोमक को श्रीषेण ने गूदड बना डाला।"

रोमक-सिद्धात का काल

पचसिद्धातिका मे दिये हुए रोमक-सिद्धात के अनुसार अहर्गण बनाने के लिए यह आदेश है कि शक वर्ष से ४२७ घटाया जाय। इसका अर्थ यह है कि शक ४२७ आदिकाल माना गया है जहाँ से अहर्गण आदि की गणना आरभ की गयी है। इसीलिए शक ४२७ को ही लोग वराहमिहिर का समय मानते है। अलबीरूनी ने भी इसी को पचसिद्धातिका का समय माना है। डाक्टर कर्न का मत है

[1] यह सायन वर्ष का मान है, सायन वर्ष वह वर्ष है जो ऋतुओ के अनुसार चलता है।

[2] हिपार्कस का काल सन १४६-१२७ ई० पू० के लगभग था।

कि शक ४२७ (= सन् ५०५ ईसवी) वराहमिहिर के जन्म का वर्ष है। उसका देहात शक ५०९ में हुआ, ऐसा आमराज ने लिखा है, और दोनो में सामजस्य है। यह भी विचार योग्य है कि आर्यभट का जन्म शक ३९८ में हुआ था और उसने अपनी पुस्तक आर्यभटीय की रचना शक ४२१ में की थी। आर्यभट का उल्लेख पचसिद्धातिका में है। इसलिए इतना तो प्रत्यक्ष है कि पचसिद्धातिका शक ४२१ के वर्षो बाद लिखी गयी होगी।

प्रश्न यह उठता है कि शक ४२७ स्वय रोमक-सिद्धात का ही आदिकाल तो नही था। परन्तु बात ऐसी नही जान पडती। एक तो वराहमिहिर ने बहुत अर्वाचीन सिद्धात को पर्याप्त प्रामाणिक नहीं माना होगा, दूसरे, ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धात मे लाटदेव का नाम आया है, जिससे श्रीषेण ने सूर्य, चद्रमा आदि की गतियाँ ली। वराहमिहिर ने स्वय अध्याय १५, श्लोक १८ में लिखा है "लाटाचार्य ने कहा है कि यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना की जाती है"। इससे स्पष्ट है कि लाटाचार्य अवश्य थे और वे श्रीषेण से पर्याप्त पहले रहे होगे, अन्यथा श्रीषेण को नवीन सिद्धात लिखने की आवश्यकता ही नही रहती। इन सब बातो से यही अनुमान किया जाता है कि रोमक-सिद्धात और भी पुराना रहा होगा, और शक ४२७ रोमक-सिद्धात का निजी आदिकाल नही है, इसे वराहमिहिर ने चुना होगा।

पचसिद्धातिका मे रोमक-सिद्धात के अतिरिक्त रोमक देश का भी नाम आया है, यवनपुर, यवनाचार्य आदि शब्द भी आये है। यवनपुर का देशातर भी दिया है, जिससे पता चलता है कि यवनपुर अलेक्जेंड्रिया[1] नामक नगर रहा होगा। फिर, जैसा ऊपर बताया गया है, रोमक-सिद्धात के मुख्य स्थिराक वे ही थे जो यवन ज्योतिष

[1] सन ३३२ ई० पू० में इस नगर की नींव अलेक्जेंडर महान (सिकदर) ने डाली थी और अब यह मिस्र देश (ईजिप्ट) का प्रमुख नौकाशय (बंदरगाह) है। नींव पडने के सौ वर्ष के भीतर ही यह बहुत बडा शहर हो गया था। यह यूरोप, तथा अरब और भारतवर्ष के बीच वाणिज्य का केंद्र था। यहाँ पर यवनो का सब से बड़ा विश्वविद्यालय था। परंतु सन ८० ई० पू० में यह रोमन लोगो के हाथ में चला गया। ऑगस्टस सीजर के काल में इसकी जनसंख्या ३ लाख थी। सन ६१६ में इस पर अरब वालों का अधिकार हो गया। अरब सेनापति 'अम्र ने अपने नरेश को अलेक्जेंड्रिया जीतने पर लिखा था कि यहाँ "४,००० महल, ४,००० स्नानागार, १२,००० तेल बेचने वाले, १२,००० माली, ४०,००० यहूदी जो कर देते है और ४०० नाट्यशालाएँ है"। पृष्ठ ११८ पर इस नगर की स्थिति दिखायी गयी है।

में प्रचलित थे। इन सब बातो से स्पष्ट हो जाता है कि रोमक-सिद्धात यवन ज्योतिष पर आश्रित था।

पुलिश-सिद्धात

पचसिद्धातिका की प्राप्य प्रतियो में उस श्लोक का पाठ जिसमें पुलिश-सिद्धात के अनुसार अहर्गण बनाने का नियम है इतना अशुद्ध था कि थीबो और सुधाकर ठीक से उसका अर्थ न लगा सके। परतु इसमें एक स्थान पर ९७६ की सख्या है (**ऋतु सप्त नव भवत**), अवश्य ही यह उन दिनो की सख्या होगी जिसके पश्चात एक अधिमास पडता है। इसी प्रकार ६३ (**त्रिऋतु**) सभवत उन दिनो की सख्या है जिसके पश्चात एक तिथि का क्षय होता है। जान पडता है कि पुलिश-सिद्धात ने किसी बडे युग को लेकर उसमें कुल अधिमासो और क्षय तिथियो को बताने की रीति को नही अपनाया। उसने यही बताकर काम चला लिया कि कितने-कितने दिनो पर अधिमास पडता है या क्षय तिथि पडती है। पुलिश-सिद्धात में वर्ष ३६५ दिन ६ घटा १२ मिनट का माना गया था।

पुलिश-सिद्धात में ग्रहणो की गणना के लिए भी नियम दिये गये हैं, परतु वे सूर्य-सिद्धात और रोमक-सिद्धात के नियमो की अपेक्षा बहुत स्थूल हैं। गणना की सुविधा के लिए सन्निकट मानों और सन्निकट नियमो से काम चलाया गया है। पुलिश-सिद्धात में उज्जयिनी (उज्जैन) और काशी (बनारस) से यवनपुर का देशान्तर दिया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यवनपुर अलेक्जेंड्रिया ही रहा होगा।

पुलिश-सिद्धात नामक ग्रथ का उल्लेख भट्टोत्पल ने वराहमिहिर के बृहत्सहिता की टीका में और पृथूदक स्वामी ने ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धात की टीका में किया है। परतु इन दोनो टीकाकारो ने जिस पुलिश-सिद्धात का उल्लेख किया है वह कोई और ही ग्रथ रहा होगा, क्योकि उसमें एक महायुग था जिसमें वर्षो, मासो, दिनो, और ग्रहो के भगणो की सख्याएँ पूर्ण सख्याएँ थी। उसमें वर्षमान ३६५ दिन ६ घटे १२ मिनट ३६ सेकड था, जो वराहमिहिर में उल्लिखित पुलिश-सिद्धात से भिन्न है।

वसिष्ठ-सिद्धात

वसिष्ठ-सिद्धात (या वासिष्ठ सिद्धात) बहुत सक्षेप में ही पचसिद्धातिका में दिया गया है। यह बहुत-कुछ पितामह-सिद्धात की तरह है, परतु उससे कई बातो में अधिक शुद्ध है। वराहमिहिर ने स्वय इस सिद्धात और पितामह-सिद्धात को निम्नतम श्रेणी का माना है। पितामह-सिद्धात की तरह वसिष्ठ-सिद्धात में भी माना

गया है कि जब दिन बढने लगता है तो प्रति दिन बराबर वृद्धि होती है (जो अशुद्ध है, या बहुत स्थूल है),परतु लघुतम और महत्तम दिनो के मान पितामह-सिद्धात के मानों से भिन्न हैं।

वसिष्ठ-सिद्धात में राशियो की चर्चा है। लग्न भी है, जो बताता है कि रविमार्ग का कौन-सा भाग पूर्वीय क्षितिज मे लगा हुआ है। परन्तु सूर्य, चद्रमा, आदि, की मध्यक और स्पष्ट गतियो में भेद का ज्ञान इस सिद्धात के कर्त्ता को न था। इसलिए वसिष्ठ-सिद्धात की गिनती उस श्रेणी मे नही की जा सकती जिसमें सूर्य-सिद्धात आदि है।

ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धात में विष्णुचद्र के लिखे वसिष्ठ-सिद्धात का उल्लेख है, परन्तु वहाँ अर्थ यह जान पडता है कि जैसे श्रीषेण ने रोमक-सिद्धात को गूदड बना दिया वैसे ही विष्णुचद्र ने वसिष्ठ-सिद्धात को। ब्रह्मगुप्त तथा वराहमिहिर के एक-दो सकेतो से ऐसा जान पडता है कि वसिष्ठ-सिद्धात की रचना विजयनन्दिन ने की थी, यद्यपि यह बात स्पष्ट रूप से नही कही गयी है।

वर्तमान समय मे जो ग्रथ लघु वसिष्ठ-सिद्धात के नाम से छपता है उसका कोई संबंध पचसिद्धातिका के वसिष्ठ-सिद्धात से नही दिखायी पडता।

सूर्य-सिद्धात

पचसिद्धातिका के सूर्य-सिद्धात की चर्चा आधुनिक सूर्य-सिद्धात के सबध में की जायगी।

तुलना

पंचसिद्धातिका के पाँच सिद्धातो की तुलना से स्पष्ट पता चलता है कि किस प्रकार भारतीय-ज्योतिष धीरे-धीरे विकसित होकर सूर्य-सिद्धांत के ज्योतिष में परिवर्तित हुआ। पितामह-सिद्धात वेदाग-ज्योतिष, गर्ग-सहिता, सूर्य-प्रज्ञप्ति आदि की जाति का था। इन सब ग्रथो में पाँच वर्ष का युग था, सूर्य, आदि आकाशीय पिंड सदा समान वेग से चलते हुए माने जाते थे और दिन समान रूप से बढता हुआ माना जाता था। सूर्य और चद्रमा की स्थिति साधारणत नक्षत्रो से बतायी जाती थी। उत्तरायण का आरभ तब माना जाता था जब सूर्य धनिष्ठा के आदि बिंदु पर रहता था। वराहमिहिर की पचसिद्धातिका में पितामह-सिद्धात के अनुसार पचवर्षीय युग की गणना करने में शक २ से आरभ करने को कहा गया है।

इन प्राचीन ज्योतिष ग्रथो की एक-दो विशेषताएँ पीछे के सभी ग्रथो मे अपनायी गयी। एक तो युग का महत्व। सभी सिद्धात-ग्रथो मे युग का प्रयोग

किया गया। युग लंबे होते गये, परतु उनका तिरस्कार किसी ने नहीं किया, यद्यपि ऐसा करना सभव था। करण-ग्रथों के रचयिताओ ने अवश्य इसका तिरस्कार किया। दूसरी बात थी तिथियो का प्रयोग। यह तो आज तक चालू है। अन्य किसी देश में तिथियो का प्रयोग नहीं होता।

वसिष्ट-सिद्धात पितामह-सिद्धात से अधिक विकसित था, परतु सूर्य-सिद्धात से बहुत निम्न कोटि का था।

शेष तीन सिद्धात—पौलिश, रोमक और सौर—तीनो बहुत कुछ एक तरह के थे। इन तीनो में उन विषयो का समावेश था जो नवीन भारतीय ज्योतिष के द्योतक थे। इन सब में सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट गतियो की भी चर्चा है, अर्थात उनकी स्थिति केवल यह मान कर नहीं निकाली गयी है कि वे सदा समान कोणीय वेग से चलते हैं, यह भी बताया गया है कि उनका कोणीय वेग समान वेग से कितना अधिक या न्यून कब रहता है। पौलिश और रोमक सिद्धातो में अधिक सादृश्य है। सूर्य-सिद्धात इन दोनों से अधिक विकसित है, अधिक शुद्ध और अधिक परिपूर्ण है। सूर्य-सिद्धांत में ग्रहण-गणना के नियम पूर्ण और पर्याप्त हैं, उनकी तुलना में रोमक-सिद्धात के नियम बहुत कम और स्थूल हैं, और पौलिश सिद्धात के नियम तो और भी स्थूल हैं।

ग्रीष्म अयनात पहले आश्लेषा के मध्यमें होता था और वराहमिहिर के समय में पुनर्वसु के आरभ में। ये बातें वराहमिहिर को ज्ञात थी, क्योंकि पचसिद्धातिका में दोनो की चर्चा है, परतु उसने कोई बात ऐसी नहीं लिखी है जिससे पता चले कि उसने इसका कारण समझ लिया था कि वसत विषुव तारो के सापेक्ष पीछे-मुँह क्यो खिसकता रहता है।

यवन ज्योतिष से सबध

पौलिश और रोमक सिद्धातों के नामो से ही सदेह होता है कि इनका सबध यवन ज्योतिष से था। इन दोनो में वर्ष का मान वह है जो सायन वर्ष का है (नाक्षत्र वर्ष का नहीं, जो सूर्य-सिद्धात में है)[1]। एक में अहर्गण की गणना यवनपुर के याम्यो-

[1] सायन वर्ष वह है जिसका आरभ सदा एक ही ऋतु में पडता है, चाहे हजारों वर्ष क्यो न बीत जायें। नाक्षत्र वर्ष वह है जिसका आरभ सूर्य के सदा किसी विशेष तारे के पास पहुँचने पर होता है। अयन के कारण दोनों में लगभग २० मिनट का अन्तर है।

त्तर मे की गयी है और दूसरे में यवनपुर से उज्जयनी का देशातर दिया गया है। दोनो में वे नवीन बातें है जो यवन ज्योतिष में थी, परन्तु वेदाग-ज्योतिष, पितामह-सिद्धात और वसिष्ठ-सिद्धात में नही थी। इससे धारणा होती है कि नवीन भारतीय ज्योतिष यवन ज्योतिष पर आधारित था। परतु जब इसकी खोज की जाती है कि किस विशेष यवन पुस्तक या यवन आचार्य से भारतीयो ने अपना ज्ञान प्राप्त किया तो बडी कठिनाई पडती है। यवन और नवीन भारतीय ज्योतिष में सादृश्य होते हुए भी पर्याप्त विभिन्नता है। ऐसा जान पडता है कि भारत में यवन ज्योतिषियो का ज्ञान हिपार्कस के बाद और टॉलमी[1] के पहले आया, सभवत थोडी-थोडी मात्रा में और कई बार, और भारतीय ज्योतिषियो ने इस ज्ञान को अपने निजी विवेचन और खोज से अपने विशेष साँचे में ढाल लिया और फिर वे उसकी उन्नति करते रहे। सूर्य-सिद्धात में कई बातें ऐसी है जो विशेष महत्त्व की है और यवन ज्योतिष में नही मिलती।

वराहमिहिर ने आर्यभट के सिद्धात का साराश अपनी पचसिद्धातिका में नही दिया। इससे समझा जा सकता है कि उसके समय मे आर्यभट का ग्रंथ इतना प्राचीन नही समझा जाता था जितना रोमक-सिद्धात या सूर्य-सिद्धात। आर्यभटीय के नियम सूर्य-सिद्धात के नियमो से मिलते-जुलते है। वस्तुत सूर्य-सिद्धात के नियमो को अधिक शुद्ध करने की चेष्टा भी आर्यभट ने की थी, परतु वर्तमान सूर्य-सिद्धात आर्यभटीय से अधिक शुद्ध है, जैसा एक अन्य अध्याय में विस्तार से दिखाया गया है।

त्रैलोक्य-संस्थान

पचसिद्धातिका में त्रैलोक्य-सस्थान नाम का तेरहवाँ अध्याय है जो पूर्वोक्त सिद्धातो में से किसी का नही जान पडता। सभवत यह अध्याय वराहमिहिर की स्वतत्र रचना है। इसमें विश्व की रचना तथा कुछ फुटकर बातें बतायी गयी है। वराहमिहिर ने इस अध्याय के पहले श्लोक में बताया है कि

पंचमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तान्त:स्थो लोह इवावस्थितो वृत्त.॥

अर्थ—पचभूत से बनी पृथ्वी का गोल तारो के पजर (ठठरी) में उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार चुबको के बीच लोहा।

[1] आगामी अध्याय देखें।

इस प्रकार वराहमिहिर जानता था कि पृथ्वी किसी अन्य वस्तु पर टिकी नहीं है। अंतरिक्ष में चारों ओर से बेलाग है। उसने यह भी लिखा है[1] कि जैसे मनुष्यों के देश में अग्निशिखा वायु में ऊपर उठती है और फेंके जाने पर भारी वस्तु पृथ्वी पर गिरती है, उसी प्रकार उलटी ओर, असुरों के देश में भी, होता है।

परंतु पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण के संबंध में वराहमिहिर की राय आधुनिक मत के विरुद्ध थी। उसने लिखा है कि "कुछ लोग कहते हैं कि पृथ्वी भ्रमण करती है, परंतु यदि ऐसा होता तो चील तथा अन्य पक्षी आकाश से अपने घोसले में न लौट सकते[2]। और फिर, यदि पृथ्वी वस्तुतः एक दिन में एक चक्कर लगाती तो ध्वजा आदि पृथ्वी के वेग के कारण पश्चिम की ओर फहराते रहते। और यदि कोई कहे कि पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती है तो फिर (एक दिन में एक बार) वह कैसे घूम लेती है?"[3]

[1] पंचसि० १३।४।

[2] पंचसि० १३।६-७।

[3] कुछ पाठकों को आज भी शंका हो सकती है कि वस्तुतः क्या बात है कि चील आदि ऊपर उड़ जाने पर पीछे नहीं छूट जाते। इस शंका का समाधान इस प्रकार हो जाता है कि रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठकर गेंद सीधा ऊपर उछालने से गेंद अंत में सीधा नीचे ही तो गिरता है, वह पीछे थोड़े ही छूट जाता है। कारण यह है कि उछालते समय गेंद में वह वेग भी था जो रेलगाड़ी में था और यह वेग बराबर बना रहता है, इसलिए गेंद पीछे नहीं छूटता। रेलगाड़ी में बैठे व्यक्ति को जान पड़ता है कि गेंद सीधे ऊपर गया और सीधे नीचे गिरा, परंतु भूमि पर स्थित व्यक्ति को वही गेंद वक्र में चलता दिखायी पड़ेगा। वह देखेगा कि यात्री के हाथ से फेंके जाने पर गेंद वक्र में चल कर फिर यात्री के नवीन स्थिति में जा पहुँचता है। वराहमिहिर और साधारण पाठक के हृदय का भ्रम इस बात पर आश्रित है कि वे समझते हैं कि वेग को बनाये रखने के लिए बल लगाने की आवश्यकता है, परंतु आधुनिक गति-विज्ञान कहता है कि "प्रत्येक पिंड अपनी विश्रामावस्था में पड़ा रहता है, या सरल रेखा में समवेग से चलता रहता है, और केवल तभी वह अपनी विश्रामावस्था या समवेग से सरल रेखा में चलने की अवस्था को छोड़ता है जब वह बाहर से लगे बल द्वारा प्रेरित होता है।" (देखें गोरखप्रसाद और हरिश्चन्द्र गुप्त गतिविज्ञान, अध्याय ४)।

जैनियो का मत था कि आकाश में दो सूर्य होते हैं, दो चन्द्रमा होते हैं। इस पर वराहमिहिर का कहना है कि यदि, जैसा अर्हत ने कहा है, दो सूर्य और दो चद्रमा होते जो पारी-पारी से उदित होते है, तो यह कैसे होता है कि सूर्य से ध्रुव तक जाने वाली रेखा (जो उस पर स्थित तारो के कारण सूर्य के अस्त होने पर भी दिखायी देती है) एक दिन में चक्कर लगा लेती है ?

चद्रमा में कलाएँ क्यो दिखायी पडती है इसका सच्चा कारण वराहमिहिर को ज्ञात था। लिखा[1] है · जैसे-जैसे प्रति दिन चद्रमा का स्थान सूर्य के सापेक्ष बदलता है तैसे-तैसे उसका प्रकाशमय भाग बढता जाता है, ठीक उसी तरह जैसे अप-राह्न मे घडे का पश्चिम भाग अधिकाधिक प्रकाशित होता जाता है।

ज्यौतिष यंत्र

वराहमिहिर के समय मे अच्छे ज्यौतिप यत्रो का अभाव था। शकु (अर्थात खडा या तिरछा डडा) बहुत काम में आता था। लिखा है कि ऋजु (सीधे) शकु की जड पर आँख लगा कर शकु को इस प्रकार तिरछा करो कि शकु का अग्र, आँख, और ध्रुव-तारा, तीनो एक रेखा मे आ जायें। तब (शकु के अग्र से आँख द्वारा खीचे गये समतल पर डाला गया) लब अक्षाश की ज्या है। · ऐसे प्रयोगो से सत विश्वसनीय रीति से भूकेंद्र या समस्त पृथ्वी को नापते है, जैसे लवण मिले थोडे-से जल से लवण का स्वाद जाना जा सकता है[2]। ऐसे शकु को भास्कराचार्य ने पीछे यष्टियत्र का नाम दिया (अध्याय १४ देखें)।

परतु वराहमिहिर ने सब यत्रों का भेद खोल कर रख देना उचित न समझा। छेदक यत्राणि नामक चौदहवें अध्याय में साधारण यत्रो और रीतियो का वर्णन देकर यह लिखा है[3]. गुरु को चाहिए कि केवल स्थिर-बुद्धि शिष्यो को ये बातें बताये और शिष्य को चाहिए कि इन बातो को सीखकर अपने यत्रो को इस प्रकार बनाये कि पुत्र को भी उसका भेद ज्ञात न हो।

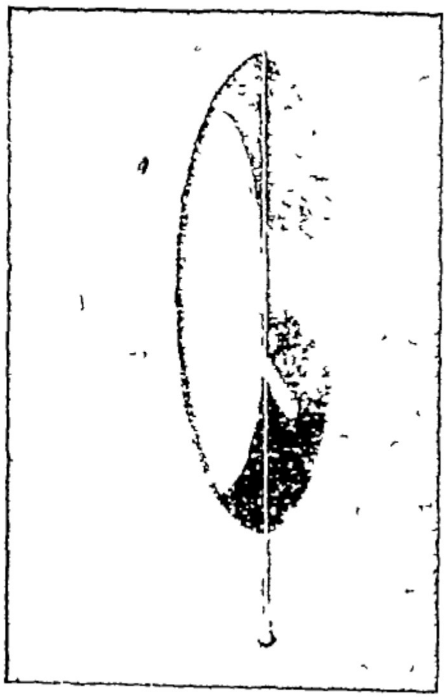
[1] पचसि० १३।३७।

[2] पंचसि० १३।३१-३४। वराहमिहिर का कहना ठीक है। दो स्थानो पर पूर्वोक्त रीति से शकु द्वारा अक्षांश नाप कर सारी पृथ्वी की नाप जानी जा सकती है। (देखे लेखक-रचित सरल गणित-ज्योतिष, पृष्ठ १५७।)

[3] पंचसि० १४।२८।

इस अध्याय में ज्यामितीय रचनाओं और शंकुओं के अतिरिक्त एक उन्नतांश-मापक का भी वर्णन है जो इस प्रकार है

ऐसा चक्र लो जिसकी परिधि ३६० बराबर अंशों में बँटी हो, जिसका व्यास एक हस्त हो और जो मोटाई में आधी अँगुली हो। उसकी मोटाई के बीच में एक स्थान पर छेद कर दो। इस छोटे-से छेद द्वारा मध्याह्न पर सूर्य की रश्मियों



उन्नतांशमापक।
वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खींचा गया चित्र।

को तिरछी दिशा में घुसने दो [और ऐसा प्रबंध करो कि वह रश्मि पूर्वोक्त चक्र के केंद्र से होकर जाय]। तो चक्र के निचले भाग में जितने अंश [सूर्यरश्मियों से प्रका-

शित विंदु और] चक्र-केंद्र से लटकाये गये साहुल-सूत्र के बीच पडते हैं वे मध्याह्न-सूर्य की शिरोविंदु-दूरी के अंश हैं[1]।



नाडिका-यंत्र।

वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खीचा गया चित्र।

समय नापने के लिए जल-घटी का उपयोग वताया गया है —

तांवे का वरतन आधे घडे के रूप में वनाओ और पेंदे में छेद करो। शुद्ध जल से भरे वडे वरतन में इसे रक्खो। जव यह पानी से भर उठे तो एक नाडिका वीती रहेगी। पेंदे का छिद्र इतना छोटा होना चाहिए कि एक अहोरात्र (रात-दिन) में यह ६० वार डूवे[2]।

वराहमिहिर की जीवनी

वराहमिहिर ने अपने को अवंती का वताया है[3]। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं उसका देहान्त सन ५८७ ईसवी में हुआ।

[1] पंचसि० १४।२१-२२।
[2] पंचसि० १४।३२।
[3] पंचसि० १८।६१।

वराहमिहिर को गणित-ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष में अधिक रुचि थी। उसकी बृहत्संहिता नामक पुस्तक वस्तुत एक बडी-सी पोथी है जो फलित ज्योतिष पर है। उसके बृहज्जातक और योगयात्रा नामक ग्रथ भी फलित ज्योतिष पर है। परतु उसकी पचसिद्धातिका गणित-ज्योतिष पर है और वह तत्कालीन ज्योतिष के ज्ञान के लिए अपूर्व सिद्ध हुई है। पचसिद्धानिका न होती तो ज्योतिष-इतिहास का हमारा ज्ञान बहुत अधूरा ही रह जाता। अलबीरूनी ने अपने 'भारतवर्ष' में वराहमिहिर को बहुत आदर प्रदान किया है। लिखा है कि "वराह के कथन सत्य पर आश्रित है, परमेश्वर करे कि सभी बडे लोग उसके आदर्श का पालन करें।"

हिन्दी-शब्दसागर में वराहमिहिर के सम्बन्ध में निम्न सूचना दी गयी है—

"वराहमिहिर के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रवाद कुछ वचनो के आधार पर प्रचलित है। जैसे, ज्योतिर्विदाभरण के एक श्लोक में कालिदास, धन्वन्तरि आदि के साथ वराहमिहिर भी विक्रम की सभा के नौ रत्नो में गिनाये गये है। पर इन नौ नामो में से कई एक भिन्न-भिन्न काल के सिद्ध हो चुके है। अत यह श्लोक प्रमाण के योग्य नही। अपने बृहज्जातक के उपसहाराध्याय में वराहमिहिर ने अपना कुछ परिचय दिया है। उसके अनुसार ये अवन्ती (उज्जयिनी) के रहने वाले थे। 'कायित्य'[1] स्थान में सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होने वर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था।"

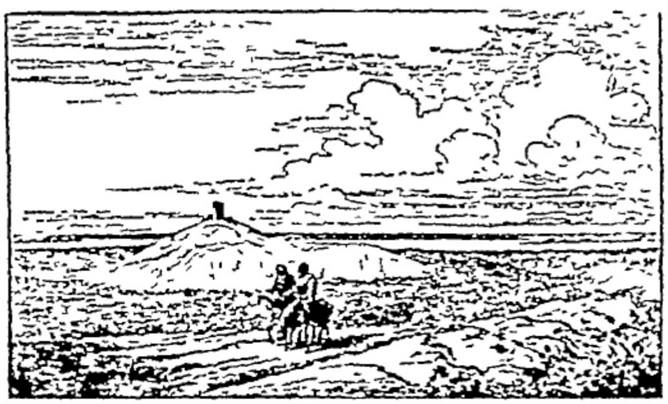
[1] सभवत यह कपित्थ-ग्राम है जो उज्जैन के निकट (आज भी) 'कायथा' के नाम से विद्यमान है। इनके पुत्र का नाम पृथुयशस् था, और उनकी रचना षट्-पचाशिका भी प्रसिद्ध है।

अध्याय १०

पाश्चात्य ज्योतिष का इतिहास

यवनों ने ज्योतिष ज्ञान कहाँ से पाया

भारत में कहाँ तक ज्योतिष का ज्ञान यवनो से आया इसे आँकने के लिए पाश्चात्य ज्योतिष के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा। ज्योतिष की आवश्यकता सभी देशवासियो को पडती है और दीर्घकाल तक आकाशीय पिंडो के अध्ययन से ज्योतिष की अधिकाश मोटी-मोटी बातें सभी को ज्ञात हो जाती है। प्राचीन समय में बाबुल लोगों (बैबिलोनियनो) का ज्योतिष-ज्ञान बहुत

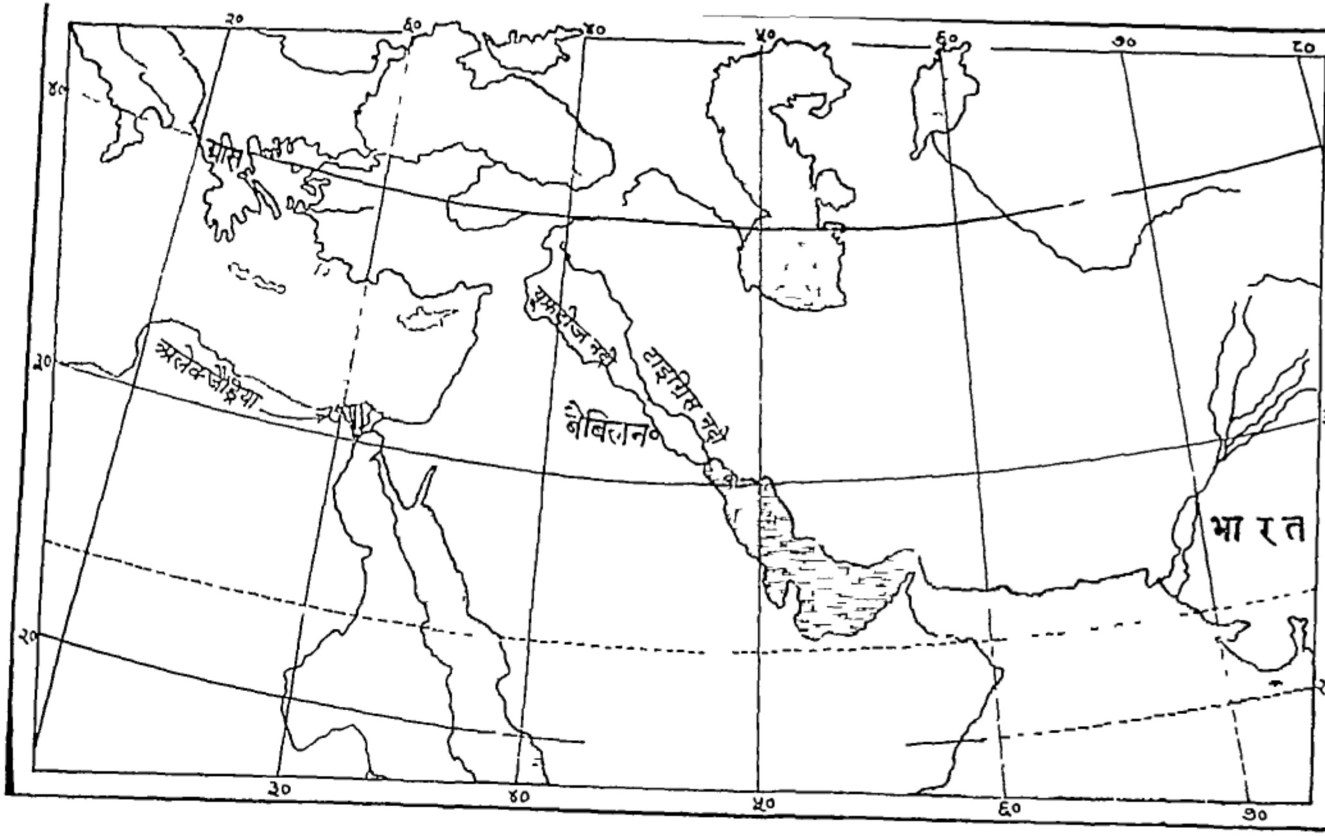


[चित्रकार: फैलिक्सटॉमस

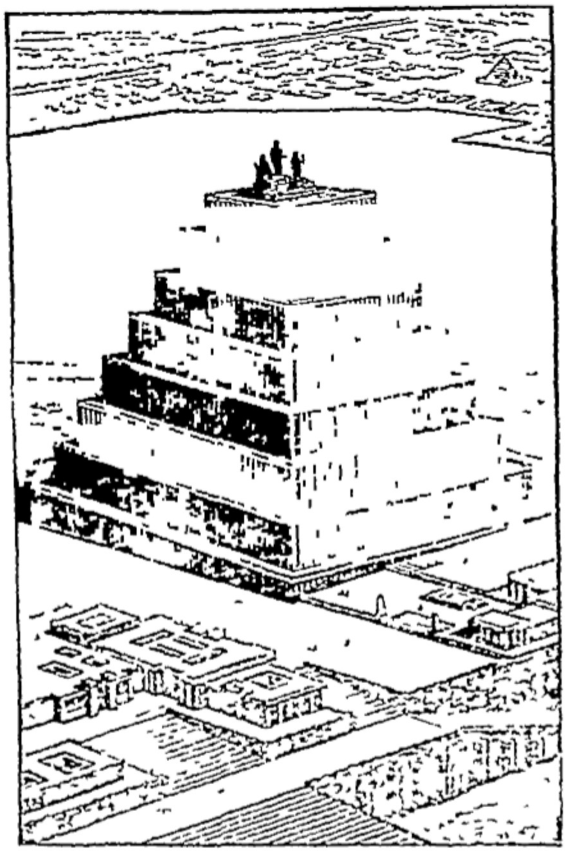
प्राचीन मंदिरो का अवशेष।

बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे स्थानो पर मदिर बनाते थे और उनकी छतो से ज्योतिष सबधी वेध किया करते थे।

बढा-चढा था। ये लोग टाइग्रिस और यूफ्रटीज नदी के मध्य की तथा समीपवर्ती भूमि में रहते थे (आगामी पृष्ठ पर चित्र देखें)। उन्ही से यवनो (अर्थात ग्रीक


ग्रीस
अलेक्झांड्रिया
युफ्रेटीज नदी
टाइग्रिस नदी
बेबिलॉन
भारत

देश के निवासियो) को ज्योतिष की प्रारभिक बातों का ज्ञान हुआ । इतना निश्चित है कि तारा-मडलो में तारो का विभाजन यवनों ने बाबुलों से पाया। ग्रहो का ज्ञान भी उन्हें बाबुलो से मिला। बाबुलो ने ग्रहणो की भविष्यवाणी करने के लिए सैरॉस नामक युग का आविष्कार किया था। यह २२३ चाद्र मासो का (लगभग १८ वर्ष ११ दिन का) होता है। ऐसे एक युग के ग्रहण आगामी युग में उसी क्रम में और प्राय ठीक उतने ही समयों पर होते हैं। इस युग का आविष्कार कब हुआ यह अब कहा नही जा सकता, परतु एक राजा के समय के लेखो से स्पष्ट हो जाता है कि सन ३८०० ईसवी पूर्व मे तारा-मडलो के नाम पड गये थे, यद्यपि उनमें थोडा-बहुत परिवर्तन होता रहा। यवनो को तारा-मडलो का जो ज्ञान मिला और जिसे ऐरेटस नामक कवि ने छदबद्ध किया अवश्य ही ऐसे तारा-मडलो का है जो लगभग २८०० ई० पू० में देखे गये होंगे। इसका प्रमाण यह है कि जिन तारा-मडलो का नाम पूर्वोक्त सूची में नही है अवश्य ही वे तारा-मडल होंगे जो उस देश से नही दिखायी पडते थे। इस प्रकार हम जानते हैं कि तारो का कौन-सा क्षेत्र वहाँ नही दिखायी पडता था। इस क्षेत्र का केंद्र अवश्य ही दक्षिण ध्रुव रहा होगा।



पिरॉट और चिपीज की पुस्तक से

मदिर या वेधशाला ?

बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे मदिर बनाया करते थे और उनकी छतो पर से आकाशीय पिंडो का वेध किया करते थे।

इसलिए हम जानते हैं कि उस समय दक्षिण-ध्रुव तारो के बीच कहाँ रहा होगा। अब देखने की बात है कि दक्षिण ध्रुव और उत्तर ध्रुव भी तारो के बीच अयन के कारण चला करते है और तारो के सापेक्ष उनकी स्थिति जानने से हम बता सकते हैं कि पूर्वोक्त स्थिति किस काल में रही होगी। ऐसे ही विचारों से ऐरेटस के वर्णन से तारामडलो के बनने का काल निर्णय किया गया है। ऐरेटस ने २७० ई० पू० में अपने छद लिखे थे, परतु तारा-मडलो का विभाजन निस्सदेह लगभग २८०० ई० पू० का है और ४० अक्षाश के देश में बना है।

बाबुल में ज्योतिष

मिट्टी के कुछ खपडे मेसोपोटेमिया[1] से मिले है जिन पर तरह-तरह की बातें लिखी हुई है। इन्हें पढने में भाषा-वैज्ञानिको ने सफलता पायी है। उन खपडो से पता चलता है कि दूसरी शताब्दी ई० पू० में मेसोपोटेमिया में ज्योतिष का कितना ज्ञान था। उस समय वहाँ के ज्योतिषियों को ज्ञात था कि शुक्र, बुध, शनि, मगल और बृहस्पति अपने पुराने स्थान पर क्रमानुसार ८, ४६, ५९, ७९, ८३ वर्षों में लौटते है। इन युगो की लबाई से ही स्पष्ट है कि बाबुल लोग सैकडो वर्ष पहले से ही ग्रहों का नियमित रूप से वेध करते रहे होगे। प्रति वर्ष पचाग (खपडों पर खुदे अक्षरो में) प्रकाशित किया जाता था, जिसमें अमावस्या का दिनाक दिया जाता था, और यह भी कि चद्र-दर्शन कब होगा, ग्रहणो का दिनाक और ब्योरा भी पहले से बता दिया जाता था, तारो का उदय-अस्त और ग्रहो की स्थितियां भी प्रकाशित होती थी। उनका नाक्षत्र वर्ष सच्चे मान से कुल ४½ मिनट अधिक था। पादरी एफ० एक्स० क्यूगलर ने एक महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है कि बाबुलो के चाद्र मास आदि का काल ठीक उतना ही था जितना प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी हिपार्कस का, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि हिपार्कस ने इनका ज्ञान वस्तुत बाबुलो से पाया था, वह इनका स्वय आविष्कारक न था।

बैबिलोनिया मे ज्योतिष का ज्ञान ग्रीस में लगभग सातवी शताब्दी ई० पू० में अच्छी तरह पहुँचा। लगभग ६४० ई० पू० में एक बाबुल विद्वान ने कोस द्वीप में पाठशाला खोली और थेल्स नामक यवन सभवत उसका शिष्य था। पाइथागोरस ने (लगभग ५३० ई० पू० में) बैबिलोनिया, मिस्र देश और भारतवर्ष आदि देशो में पर्यटन करके, तथा निजी खोज से ज्योतिष तथा गणित का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

[1] बाबुलो के देश का आधुनिक नाम।

यह वही गणितज्ञ है जिसके नाम से पाइथागोरस का प्रमेय प्रसिद्ध है—ज्यामिति का यह प्रमेय बताता है कि समकोण त्रिभुज मे कर्ण पर बना वर्ग शेष भुजाओ पर बने वर्गो के योग के बराबर होता है[1]। पाइथागोरस का मत था कि पृथ्वी अतरिक्ष मे बेलाग टिकी है, अन्य किसी पिंड या पदार्थ या जीव पर आश्रित नही है। उसके शिष्यो की पुस्तको से प्रत्यक्ष है कि वे यह मानते थे कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती रहती है। अरिस्टार्कस का (लगभग २८०–२६४ ई० पू० मे) सिद्धात था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते है, परतु आर्किमिडीज़ ने इस सिद्धात को भ्रमपूर्ण बताया। यूडॉक्सस ने (४०८–३५५ ई० पू० मे) इसका भी प्राय शुद्ध सिद्धात बनाया कि क्यो ग्रह बराबर एक दिशा में चलने के बदले आगे-पीछे चलते है। कुछ अन्य ज्योतिषियो ने इसमे थोडा-बहुत सशोधन किया, परतु इस विषय पर अपोलोनियस (लगभग २५०–२२० ई० पू० मे) वह सिद्धात बना लिया था जो सूर्य-सिद्धात मे भी है और अपोलोनियस के समय से लगभग १८०० वर्षो तक ठीक समझा गया। अरिस्टिलस और टिमोरिस ने (लगभग ३२०–२६० ई० पू० में) तारो की स्थितियाँ नाप कर तारा-सूचियाँ बनायी। अरिस्टार्कस ने सूर्य और चद्रमा की दूरियो का अनुपात जानने की भी एक रीति का वर्णन किया जो सिद्धातत ठीक है परतु प्रयोग मे बहुत अच्छा परिणाम नही देता। एराँटॉसथिनिज़ ने रविमार्ग और विषुवत के बीच के कोण को नापा और उसकी नाप में कुल ५ कला की अशुद्धि थी। उसने पृथ्वी के व्यास की भी गणना दो स्थानो मे ध्रुव के उन्नताशो को नाप कर किया।

हिपार्कस

इसमे सदेह नही कि यवन ज्योतिषियो में सबसे महान हिपार्कस और टालमी थे। हिपार्कस का जन्म कब हुआ या मृत्यु कब हुई इसका ठीक पता नही है, परतु उसका काल लगभग १४६–१२७ ई० पू० था। उसकी गणना प्रसिद्धतम प्राचीन ज्योतिषियो और गणितज्ञो मे होती है। उसका जन्म-स्थान नीशिया था। १६१ से १४६ ई० पू० मे वह अलेक्जेंड्रिया[2] मे ज्यौतिष वेध किया करता था और

[1] सभवत. पाइथागोरस ने इस प्रमेय को भारतवर्ष में सीखा था। देखें साइटश्रिफ्ट डर डॉयटशेन मॉरगनलेडिशेन गजेलशाफ्ट।

[2] पृष्ठ ११८ के चित्र में इसकी स्थिति दिखायी गयी है; पृष्ठ ११२ पर इस नगर का वर्णन दिया जा चुका है।

इति० ९

उसके पहले अपनी जन्मभूमि में। उसकी पुस्तकें अब अधिकाश लुप्त हो गयी है। परतु हमें उसके विषय मे जानकारी स्ट्रेबो (प्रथम शताब्दी ई० पू०) और मिश्र के महान ज्योतिषी टालमी के लेखो से प्राप्त होती है। टालमी ने अपनी पुस्तक सिनटैक्सिस में बार-बार हिपार्कस की चर्चा की है और कई स्थानो पर तो हिपार्कस के वाक्यो का ज्यो-का-त्यो उद्धरण दिया है। सिनटैक्सिस का नाम पीछे ऐलमैजेस्ट पड गया, क्योकि अरब वाले इसे अल मजस्ती कहते थे। यह ग्रथ कोपरनिकस (१४७३–१५४३ ई०) और केपलर (१५७१–१६३० ई०) के समय तक वेद-पुराण की तरह अकाट्य समझा जाता था, और इसी से यह सुरक्षित रह गया। टालमी ने हिपार्कस की बडी प्रशसा की है और सदा बताने की चेष्टा की है कि कितनी बातें उसे हिपार्कस से मिली, परतु बहुत से स्थानो में सदेह बना ही रह जाता है कि कितना अश हिपार्कस से मिला और कितना स्वय टालमी का नया काम है। जान पडता है कि हिपार्कस ने कई एक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ फुटकर विषयो पर लिखी थी, परतु सपूर्ण ज्योतिष पर किसी ग्रथ की रचना नही की थी। इसके विपरीत सिनटैक्सिस मे सब बातो का पूरा विवेचन था, ज्योतिष राशियो के मान पहले से बहुत अच्छे थे, और पुस्तक बहुत अच्छे ढग से लिखी गयी थी। सभवत इसी कारण से हिपार्कस की कृतियो का आदर कम हो गया और समय पाकर वे लुप्त हो गयी। टालमी हिपार्कस के लगभग ३०० वर्ष बाद हुआ था। ज्योतिष के प्रमुख प्रश्नो के उत्तर हिपार्कस ने दे दिये थे। टालमी ने उनको परिष्कृत किया, त्रुटियो की पूर्ति की और नवीन सारणियाँ बनायी।

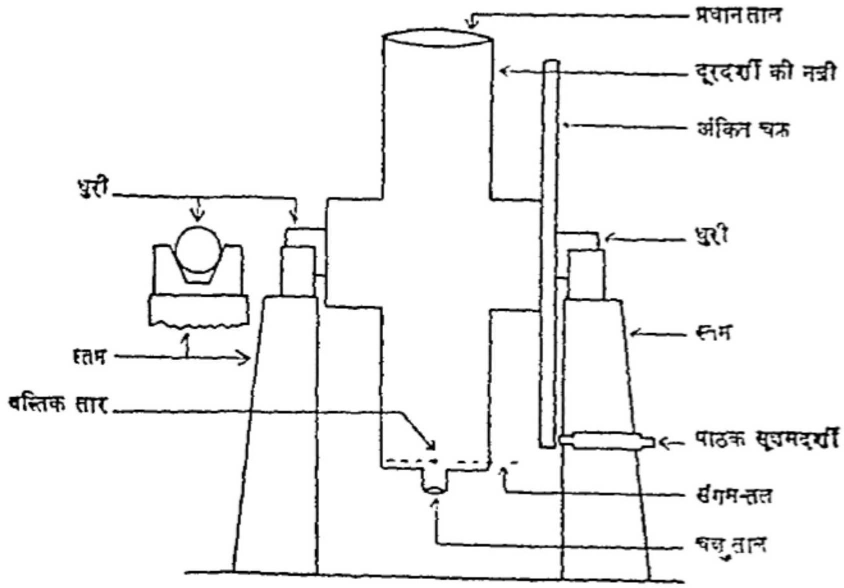
हिपार्कस का काम

हिपार्कस ने ज्योतिष के प्रमुख ध्रुवाको को निर्धारित कर दिया था, जैसे सायन और नक्षत्र वर्षो की लबाइयाँ, चाद्रमास की लबाई, पाँचो ग्रहो के सयुति-काल, रवि-मार्ग की तिर्यक्ता (तिरछापन) जिसे प्राचीन भारत के ज्योतिषी परम क्राति कहते थे, चद्रमार्ग की तिर्यक्ता, सूर्य-कक्षा का मदोच्च (जहाँ सूर्य हमसे दूरतम रहता है), सूर्य-कक्षा की उत्केंद्रता (अथवा चिपटापन), चद्रमा का लबन (अथवा दूरी), और इन सभी राशियो के मान प्राय ठीक थे। अवश्य ही उसने बहुत-सी बातें खाल्दी[1] (कैल्डियन) लोगो से सीखी थी, परतु स्पष्ट है कि उसने स्वय इन राशियो को नापा था और कई एक के नवीन तथा अधिक सच्चे मान दिये थे। हिपार्कस गोले पर तारो

[1] बाबुलो के देश में ही पीछे खाल्दियो का अधिकार हुआ।

(नक्षत्रो) का चित्र बनाकर उनका अध्ययन करता था। इस गोले को हम खगोल कहेंगे। तारा-मडलो के वर्णन में जो नवीन बाते हिपार्कस ने बतायी —कौन-सा तारा किन तारो के बीच मे है; किस तारा-मडल की आकृति किस प्रकार की है; इत्यादि—सब खगोल देखकर बताये हुए जान पडते हैं।

इसकी विशेष सभावना जान पडती है कि हिपार्कस किसी-न-किसी प्रकार के याम्योत्तर यत्र का प्रयोग करता था। आधुनिक याम्योत्तर यत्र में एक दूरदर्शी इस प्रकार आरोपित रहता है कि वह केवल याम्योत्तर[1] मे चल सके। इसकी सरचना नीचे के चित्र से समझ में आ जायगी। इसकी प्रयोग-विधि पृष्ठ १०४ पर दिखायी गयी है।



याम्योत्तर यंत्र।

इस चित्र से आधुनिक याम्योत्तर यत्र के अवयवो को सुगमता से समझा जा सकता है।

आधुनिक वेधशालाओ का यह प्रधान यत्र है। अवश्य ही हिपार्कस के याम्योत्तर यत्र मे दूरदर्शी के बदले केवल सरल नलिका रही होगी। हिपार्कस ने बहुत से वेध

[1] शिरोबिंदु और उत्तर तथा दक्षिण बिंदुओ से जमाने वाले समतल को याम्योत्तर कहते हैं।

किये जो इतने शुद्ध थे कि आश्चर्य होता है कि कैसे उन यत्रो से वह इतनी सूक्ष्मता प्राप्त कर सका। उसने सूर्य और चद्रमा की गतियों का प्राय सच्चा सिद्धात बना लिया था, परन्तु ग्रहो के कभी आगे, कभी पीछे, चलने के सिद्धात में पूरी सफलता नही पायी थी। उसके काम को टालमी ने पूरा किया। हिपार्कस ने भी अरिस्टार्कस की यह बात नही मानी कि सूर्य निश्चल है और पृथ्वी तथा ग्रह उसकी प्रदक्षिणा करते है।

अयन का आविष्कार

हिपार्कस के आविष्कारो में से निस्सदेह अयन का पता लगाना अत्यत महत्त्व-पूर्ण था। जब वसत ऋतु में दिन रात बराबर होते है तब खगोल पर तारो के बीच सूर्य की स्थिति को वसत विषुव कहते है[१]। वसत विषुव तारो के बीच स्थिर नही रहता—वह चलता रहता है, इसी चलने को अयन कहते है। जब हिपार्कस ने अपने वेधो की तुलना टिमोकेरिस के वेधो से की तो उसे तुरत पता चल गया कि अवश्य ही वसत विषुव पीछे मुँह (अर्थात सूर्य के चलने से उलटी दिशा में) चलता रहता है। वसत विषुव के सापेक्ष सूर्य के एक चक्कर लगाने को सायन वर्ष कहते है, तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगाने को नाक्षत्र वर्ष कहते है। दोनों में २० मिनट २३ सेकड का अन्तर है। हिपार्कस को इन दोनो वर्षो का भेद ज्ञात था। भार-तीय ज्योतिषियो को इनका भेद ७०० वर्ष पीछे वराहमिहिर के समय मे भी ज्ञात नही हुआ। वस्तुत, भारत के अधिकाश पचाग आज भी सायन वर्ष की अवहेलना करते है।

अयन के कारण वसत विषुव का स्थान बहुत धीरे-धीरे ही बदलता है। वसत विषुव आकाश का एक चक्कर लगभग २६००० वर्षो में लगा पायेगा। सूर्य के व्यास के बराबर (अर्थात लगभग आधा अश) हटने में वसत विषुव को लगभग ३६ वर्ष लग जाता है। यही कारण है कि अयन का पता लगाना कठिन है। हिपार्कस ने टिमोकेरिस और अपने वेधो की तुलना से अयन का आभास तो पा लिया, परतु

[१] यह स्थूल परिभाषा है, शुद्ध परिभाषा यह है कि रविमार्ग और विषुवत के एक छेदन-बिंदु को वसत विषुव कहते है, दूसरे को शरद विषुव, इनमें से वसत विषुव वह है जहाँ सूर्य, पृथ्वी के उत्तर गोलार्ध में वसत ऋतु रहने पर, स्थिर रहता है। वसत विषुव और ध्रुव में घनिष्ठ सबध है। वसत विषुव का पीछे मुँह चलना ध्रुव के एक वृत्त में चलने का परिणाम है। ध्रुव के चलने की बात पहले बतायी जा चुकी है। (पृष्ठ ५९ और पृष्ठ ९७ का चित्र देखें।)

उसे पूर्ण विश्वास तभी हुआ जब उसने और भी पुराने, खाल्दी लोगो के, वेधो से अपने वेधो की तुलना की। उसने अनुमान किया कि वसत विपुव एक वर्ष में ३६″ (छत्तीस विकला) है, परतु वस्तुत यह एक वर्ष में लगभग ५०″ चलता है।

हिपार्कस ने तारो की सूची भी बनायी जिसमे लगभग ८५० तारो का उल्लेख था और इसमे प्रत्येक तारे की स्थिति भोगाश (लॉन्जिट्यूड) और शर (लैटिट्यूड) देकर बतायी गयी थी। इस सूची का उद्देश्य सभवत यह रहा होगा कि यदि कोई नवीन तारा कभी दिखायी पडे तो उसका निश्चित पता चल सके, क्योकि हिपार्कस के समय मे वृश्चिक राशि मे एक नवीन तारा वस्तुत दिखायी पडा था, जिसका उल्लेख चीन के ज्योतिषियो ने किया है (१३४ ई० पू०)। हिपार्कस की सूची को, थोडा-बहुत सशोधन करके, टालमी ने प्रकाशित किया। हिपार्कस ने *कोणो की जीवाओ के भी मान दिये थे*[1]। उसके गणितीय तथा भौगोलिक कार्यो के विवेचन की यहाँ आवश्यकता नही जान पडती।

टालमी

टालमी अलेक्जैड्रिया (मिश्र देश) का निवासी था। उसका पूरा नाम क्लॉडियस टॉलिमेडयस था, जो अँग्रेजी मे सक्षिप्त होकर टालमी हो गया है। वह प्रसिद्ध ज्योतिषी, गणितज्ञ और भौगोलिक था। उसके जन्म अथवा मृत्यु-काल का ठीक पता नही है, परतु एक प्राचीन यवन लेखक के अनुसार उसने टाल्मेइस हरमाई नामक यवन नगर में जन्म लिया था। इतना अच्छी तरह ज्ञात है कि वह सन १२७ ईसवी से सन १४१ या १५१ ई० तक वेध करता रहा। अरबी लेखको के अनुसार टालमी ७८ वर्ष की आयु में मरा। यहाँ टालमी के गणित और भूगोल विषयक कार्यो पर विचार न किया जायगा। केवल उसके ज्योतिष सबधी कार्यो पर सक्षेप मे विवेचन किया जायगा।

हिपार्कस ने समतल और गोलीय त्रिकोणमिति के कुछ प्रमेयो का आविष्कार किया था और उसने ज्योतिष के सिद्धान्तो की उत्पत्ति मे सहायता ली थी। टालमी ने इस विषय का ऐसा पूर्ण और दोपरहित विवेचन दिया कि लगभग १४०० वर्षो तक कोई दूसरा लेखक उसके आगे न बढ सका। आकाशीय पिंडो के चलने का टाल्मीय सिद्धान्त भी इसी प्रकार लगभग इतने ही समय तक सर्वमान्य बना रहा। टालमी

[1] जीवा और ज्या का सबध यह है कि जीवा य = २ ज्या $\frac{1}{2}$ य।

की गणितीय तथा ज्योतिष कृतियाँ जिस पुस्तक में एक साथ छपी है उसका नाम यवनो ने मैथिमैटिके सिनटैक्सि रक्खा, जिसका अर्थ है गणित-संहिता। अरब वालो ने प्रशसापूर्ण नाम खोज कर इसे मजस्ती कहा जिसमें वे अरबी उपसर्ग अल लगा दिया करते थे। इसी से इस पुस्तक का नाम अँग्रेजी तथा कई अन्य यूरोपीय भाषाओ में अलमैजेस्ट पड गया। इसका अर्थ हुआ ग्रथराज।

सिनटैक्सिस

सिनटैक्सिस अर्थात अलमैजेस्ट के प्रथम खड में पृथ्वी, उसका रूप, उसका बेलाग स्थिर रहना, आकाशीय पिंडों का वृत्तों मे चलना, कोण-जीवाओ की गणना करने की रीति, कोण जीवाओ की सारणी, रविमार्ग की तिर्यक्ता, उसे नापने की रीति, और फिर ज्योतिष के लिए आवश्यक समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति और अत में रेखाश तथा भोगाश से विषुवाश तथा क्राति जानने की रीति और आवश्यक सारणी, ये सब बातें दी हुई हैं। खड २ में खगोल सबधी कुछ प्रश्नो का उत्तर है, जैसे किसी अक्षाश पर महत्तम दिनमान क्या होगा, इत्यादि। खड ३ में वर्ष की लबाई और सूर्य-कक्षा की आकृति आदि की गणना-विधि का विवेचन है, जिसमें सिद्धात मुख्यत यह है कि सूर्य ऐसे वृत्त में चलता है जिसका केन्द्र किसी अन्य वृत्त पर चलता है। इस खड के प्रथम अध्याय में टालमी ने यह भी बताया है कि सिद्धात ऐसा होना चाहिए जो सरलतम हो और वेध प्राप्त बातो के विरुद्ध न हो, और ऐसे वेधों में जिनमें सूक्ष्मता की आवश्यकता है उन वेधो को चुनना चाहिए जो दीर्घ कालो पर लिये गये हो, इससे वेधो की त्रुटियो का विशेष दुष्परिणाम न पडेगा। खड ४ में चाद्र मास की लबाई और चद्रमा की गति बतायी गयी है। खड ५ में ज्योतिष यत्र की रचना, सूर्य तथा चद्रमा के व्यास, छाया की नाप, सूर्य की दूरी आदि विषय है। खड ६ में चद्रमा और सूर्य की युतियो तथा ग्रहणो पर विचार किया गया है। खड ७ और ८ में तारो तथा अयन पर विचार किया गया है। खड ७ में उत्तरी तारा-सूची है और खड ८ में दक्षिणी तारा-सूची। दोनो में कुल मिलाकर १,०२२ तारे दिये गये है। प्रत्येक तारे के भोगाश और शर बताये गये है, और चमक भी। खड ८ में आकाशगगा का भी वर्णन है। खड ९ से १३ तक में ग्रह सबधी बाते बतायी गयी है।

सिनटैक्सिस के भाष्य

सिनटैक्सिस पर कई भाष्य लिखे गये है। पैपियस की यवन भाषा में लिखी टीका (जो केवल खड ६ और अशत खड ५ पर है) अब भी प्राप्य है। अलेक्जें-ड्रिया के थियन का भाष्य ग्यारह खडो में है। थियन लगभग सन ४०० ई०

मे था, परतु उसकी पुस्तक १५३८ ई० में प्रकाशित हुई। सन ८२७ मे सिनटैक्सिस का उल्था अरबी भाषा में किया गया। इसके बाद कई नवीन अरबी अनुवाद हुए और इनमें से एक अनुवाद का लैटिन अनुवाद सन ११७५ में हुआ। यवन भाषा से लैटिन अनुवाद १४५१ मे हुआ। हाइबर्ग ने टालमी की कृतियो का प्रामाणिक सस्करण १८९९-१९०७ में प्रकाशित कराया। इसके पहले कई सस्करण और अनुवाद छप चुके थे, जिनका ब्योरा इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका मे मिलेगा। एक जरमन अनुवाद १९१२-१३ मे छपा।

अलमैजेस्ट यवन ज्योतिष का उच्चतम शिखर था। टालमी के बाद डेढ हजार वर्ष तक कोई बडा ज्योतिषी हुआ ही नही, केवल भाष्यकार हुए।

अध्याय ११

सूर्य-सिद्धांत

मध्यमाधिकार

वराहमिहिर ने अपनी पचसिद्धातिका मे जिन पॉच सिद्धातो का साराश दिया है उनमे से एक सूर्य-सिद्धात भी है, और पाचो मे इसी का स्थान सबसे ऊँचा है। सूर्य-सिद्धात अब भी उपलब्ध है, परतु वर्तमान सूर्य-सिद्धात और वराहमिहिर के सूर्य-सिद्धात मे कुछ बातो मे अतर है। निस्सदेह पीछे के भाष्यकारो ने सूर्य-सिद्धात को अधिक परिष्कृत करने के लिए उसके ध्रुवाको मे आवश्यकतानुसार सशोधन कर दिया होगा। नीचे का विवरण वर्तमान सूर्य-सिद्धात के बारे मे है।

हिंदी पाठको के लिए सूर्य-सिद्धान्त का महावीरप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'विज्ञान-भाष्य तथा मूल' जो विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था, सर्वोतम है। एक अँग्रेजी अनुवाद पादरी बरजेस ने १८६० मे प्रकाशित कराया था जिसे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने १९३५ मे फिर से छापा। यह अनुवाद बहुत ही सुन्दर हुआ है और बरजेस की टिप्पणियाँ भी बहुत अच्छी है। कलकत्ता विश्वविद्यालय वाले सस्करण मे प्रबोधचद्र सेनगुप्त की भूमिका भी है जिसमे सूर्य-सिद्धान्त सबधी कई बातो का विशद विभेद है।

सूर्य-सिद्धात के आधुनिक रूप मे १४ 'अधिकार' अर्थात अध्याय है। पहले अध्याय में ग्रहो की मध्य गतियाँ है। यह समझने के लिए कि मध्यगति क्या है स्मरण रखना चाहिए कि सूर्य, चद्रमा, तथा बुध आदि ग्रह समान कोणीय वेग से नहीं चलते, परतु गणना की सुविधा के लिए पहले यह मान लिया जाता है कि वे समान वेग मे चलते है। इस कल्पना के अनुसार गणना करने से प्राप्त स्थितियाँ मध्यम या मध्यक स्थितियाँ कहलाती है। सूर्य-सिद्धान्त के प्रथम अध्याय मे इनकी ही गणना बतायी गयी है। इसी से पहला अध्याय मध्यमाधिकार कहलाता है।

सूर्य-सिद्धांत का लेखक

ईश्वर वदना के पश्चात आठ श्लोको मे यह भी बताया गया है कि पुस्तक का लेखक कौन है। ये इस प्रकार है

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुर ।
रहस्य परम पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥
वेदागमग्र्यमखिलं ज्योतिषा गतिकारणम् ।
आराधयन् विवस्वन्त तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥
तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।
ग्रहाणां चरित प्रादान् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥
विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् ।
दद्या कालाश्रय ज्ञान ग्रहाणा चरितं महत् ॥५॥
न मे तेज सहः कश्चिदाख्यातु नास्ति मे क्षण. ।
मदश. पुरुषोऽयं ते नि शेष कथयिष्यति ॥६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देव. समादिश्याशमात्मनः ।
स पुमान् मयामाहेद प्रणत प्राञ्जलिस्यितम् ॥७॥
श्रृणुष्वैकमना. पूर्व यदुक्त ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणा स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्य तदेवेद यत्पूर्व प्राह भास्करः ।
युगाना परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९॥

अर्थ[1]—सत्युग के कुछ शेष रहने पर मय नामक महा असुर ने सब वेदागो मे श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष्क पिडो की गतियो का कारण बताने वाले, परम पवित्र और रहस्य-मय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान की आराधना की ॥२–३॥

उसकी तपस्या से सतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान ने स्वय वर चाहने वाले मय को ग्रहो के चरित अर्थात ज्योतिषशास्त्र का उपदेश दिया ॥४॥

भगवान सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मै बहुत सतुष्ट हूँ, मै तुझे ग्रहो के महान चरित का उपदेश करता हूँ, जिससे समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है परतु मेरा तेज कोई सह नही सकता और उपदेश देन

[1] महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के विज्ञान-भाष्य से ।

के लिए मुझे समय भी नही है। इसलिए यह पुरुष, जो मेरा अश है, तुझे भली भाँति उपदेश देगा ॥५-६॥

इतना कहकर सूर्य भगवान अतर्घ्यान हो गये, और सूर्याश पुरुष ने, आदेशानुसार, मय से, जो विनीत भाव से झुके हुए और हाथ जोडे हुए थे, कहा—एकाग्रचित्त होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान सूर्य ने स्वय समय-समय पर महर्षियो से कहा था। भगवान सूर्य ने पहले जिस शास्त्र का उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है, युगो के परिवर्तन से केवल काल में कुछ भेद पड गया है ॥७-९॥

इस प्रकार स्वय सूर्य-सिद्धात के अनुसार यह पुस्तक दैव-वाणी है, परतु अपना नाम गुप्त रख कर पुस्तक को अलौकिक बताना प्राचीन लेखको की एक साधारण रीति थी। ऐसी पुस्तको का सभवत कुछ अधिक आदर होता था।

जिस प्रकार १८ पुराण थे उसी प्रकार १८ ज्योतिष सिद्धातो का भी उल्लेख मिलता है, जिनमें से अधिकाश के नाम प्राचीन ऋषियो के नाम पर पडे है। सुधाकर द्विवेदी ने अपनी पुस्तक "गणक-तरगिणी" में इस सबध में निम्न श्लोक दिया है

सूर्य पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि पराशर.।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरगिरा ॥
लोमश पौलिश्चैव च्यवनो यवनो भृगु ।
शौनकोऽष्टादशैवेते ज्योति शास्त्रप्रवर्त्तका ॥

चूँकि इसमें यवन सिद्धात का भी नाम आया है, इसलिए यह श्लोक बहुत प्राचीन न होगा। तो भी इन अठारह सिद्धातो में से अधिकाश लुप्त हो गये है।

सूर्य-सिद्धात के प्रथम अध्याय के ग्यारहवें और बारहवें श्लोक में समय की एकाइयाँ दी गयी है, जिनकी सूची टीकाकारो ने कुछ और बढा दी है। ये एकाइयाँ निम्नलिखित है

१० गुर्वाक्षर = १ प्राण,
१० प्राण = १ विनाडी,
६० विनाडी = १ नाडी,
६० नाडी = १ दिन।

नाडी को नाडिका और घटिका भी कहते है। सिद्धात ये सब एकाइयाँ तो बन गयी, परतु पता नही कि वे ठीक-ठीक कैसे नापी जा सकती थी। उस समय में जब नाडिका छेद वाले बरतन के डूबने से नापी जाती थी, विनाडी तक समय को ठीक-ठीक नापना कठिन ही रहा होगा।

इसके वाद मास और वर्ष की परिभाषाएँ है। एक वर्ष को देवताओ का एक दिन (दिन+रात) वताया गया है। देवताओ के ३६० दिनो को देवताओं का एक वर्ष वताया गया है। वारह हजार ऐसे वर्षों का एक चतुर्युग कहा गया है। ७१ चतुर्युगो का एक मन्वतर होता है, जिसके अत में सतयुग के वरावर की सध्या होती है। चौदह मन्वतरो का एक कल्प होता है। प्रारभिक सध्या को लेकर कल्प मे इस प्रकार ४,३२,००,००,००० वर्ष होते है।

वताया गया है कि एक कल्प को ब्रह्मा का एक दिन कहते है। ऐसे ३६० दिनो को ब्रह्मा का एक वर्ष कहते है और ब्रह्मा की आयु मे इस प्रकार के १०० वर्ष होते है। ब्रह्मा की आयु को "पर" भी कहते है। इसके आधे को परार्ध कहते है।

समय की एकाइयाँ

सूर्य-सिद्धात में समय का विभाजन वही है जो पुराणो में पाया जाता है, परतु यहाँ केवल ब्रह्मा की आयु पर ही एकाइयाँ समाप्त कर दी गयी है। विष्णु पुराण में इससे भी वडी एकाइयाँ है। वहाँ दो परार्धो को विष्णु का एक दिन कहा गया है और उसके आगे भी एकाइयाँ वतायी गयी है।

सूर्य-सिद्धात के अनुसार ब्रह्मा की आयु ३१,१०,४०,००,००,००,००० साधारण वर्षों की होती है।

अवश्य ही समय की ये सभी एकाइयाँ काम में नही आती थी। वहुत छोटी और वहुत वडी एकाइयाँ केवल आरभ में ही एकाइयो की सूची मे आयी है। अवश्य ही इनमे गणित में पटुता प्रदर्शित होती है, न कि समय को क्रियात्मक रूप मे नाप सकने में चातुर्य।

एकाइयो को वताने के वाद यह वताया गया है कि वर्तमान समय कौन से मन्वतर का कौन-सा युग है। सृष्टि में कितना समय लगा यह भी वताया गया है। फिर ग्रहो की गति वतायी गयी है। यह कल्पना की गयी है कि सव ग्रहो का अनुरैखिक वेग, अर्थात योजन प्रति घटी मे (अथवा मील प्रति घटा में) वेग, एक ही है। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार यह कल्पना अशुद्ध है। उनके अनुसार ग्रहो का अनुरैखिक वेग दूरी के वर्गमूल के व्युत्क्रम के अनुसार रहता है।

इसके पश्चात कोणीय नाप की एकाइयाँ वतायी गयी है —

६० विकला = १ कला,
६० कला = १ भाग (जिसे अंश भी कहते है);
३० भाग = १ राशि,
१२ राशि = १ भगण (अर्थात एक पूरा चक्कर)।

ग्रहों की गतियाँ

अव ग्रहो की कोणीय मध्यक गतियाँ वतायी गयी है। उन्हें वताने के लिए यह वताया गया है कि एक महायुग (= १/१००० कल्प) में सूर्य, वुध आदि कितने चक्कर लगाते है। उदाहरणत वताया गया है कि सूर्य ४३ लाख २० हजार चक्कर लगाता है, यह वस्तुत एक युग में वर्षो की सख्या है। मगल २२ लाख ९६ हजार ८ सौ वत्तीस चक्कर लगाता है, इत्यादि।

पाश्चात्य देशो मे ग्रहो की स्थितियाँ किसी निकट समय के विशेष क्षण पर वताकर उनकी दैनिक गति दे दी जाती है, जिससे उनकी स्थितियाँ अन्य क्षणो पर गणना द्वारा निकाली जा सकती है, परतु भारतीय ज्योतिष में इस पद्धति पर वने ग्रथो को करणग्रथ कहते थे और उनका आदर कम होता था, विशेष आदर सिद्धात-ग्रथो का होता था। ऐसे ग्रथो में मान लिया जाता था कि कल्प के प्रारभ में सूर्य, चद्रमा तथा सव ग्रह[1] आकाश के एक विंदु पर थे, और चद्रमा तथा ग्रहो की कक्षाओ के पात और सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के शीघ्रोच्च[2] भी वही थे। तव लवे युग में उनके भगणो (चक्करो) की सख्याएँ वतायी जाती थी, जो स्वभावत ऐसी होती थी कि ग्रथकार के समय में आकाशीय पिंडो की स्थितियाँ ठीक निकले और उनकी दैनिक गतियाँ भी यथासभव ठीक निकलें।

सूर्य-सिद्धात के अनुसार सत्युग के आरभ में सव ग्रह मेप राशि के आदि विंदु पर थे, केवल उनके उच्च और पात उस स्थान पर न थे। गणना से देखा जा सकता है कि कलियुग के आरभ में भी यही वात सच थी। सर्वसम्मति से यह आरभ ३१०२ ई० पू० की उज्जयनी की उस अर्धरात्रि को हुआ था जो १७ फरवरी के अत और १८ फरवरी के आरभ में पडती है।

अव प्रश्न यह उठता है कि क्या वस्तुत उक्त दिनाक पर सव ग्रहादि साथ थे। वर्जेस ने विनलॉक से गणना करायी, जो अमरीका के नॉटिकल अलमनक कार्यालय के उस समय अध्यक्ष थे। वेटली और वेली ने भी स्वतत्र रूप मे गणना की। इतने

[1] प्राचीन ग्रथो में सूर्य और चद्रमा को भी ग्रह मानते थे। जव सूर्य और चद्रमा को छोड अन्य ग्रहो का ही उल्लेख करने की आवश्यकता पडती थी तो उनको तारा-ग्रह कहते थे। हम इस पुस्तक में तारा-ग्रहों को केवल ग्रह कहेंगे और सूर्य तथा चद्रमा को ग्रह न मानेंगे।

[2] आगे पृष्ठ १३४ पर ये शब्द समझाये गये हैं।

दिन पहले के लिए ग्रहादि की स्थितियाँ वताने में उनकी नपी हुई गतियो की अवश्य-भावी त्रुटियो का प्रत्यक्षत वडा प्रभाव पडता है। आधुनिक ज्योतिष में अभी इतनी परिशुद्धता नही है कि निश्चयात्मक रूप से कहा जा सके कि कलियुग के आरभ में ग्रहादि के स्थान ठीक-ठीक क्या थे। इसी से विनलॉक, वेली और वेटली के उत्तरो मे अतर आया, परतु इतना निश्चित है कि कलियुग के आरभ मे सब ग्रह और सूर्य तथा चद्रमा, एक स्थान पर नही थे, यद्यपि वे एक दूसरे से बहुत दूर भी नही थे। जान पडता है कि सूर्य-सिद्धात के ग्रथकार ने, अथवा किसी अन्य सिद्धातकार ने, अपने समय मे ग्रहो की स्थितियो और उनकी दैनिक गतियो के आधार पर गणना की होगी और तब ऐसा समय चुना होगा जब ग्रहादि लगभग एक साथ थे, और उसी समय को कलि-युग का आरभ माना होगा। यदि कलियुग के आरभ मे सचमुच ग्रहादि एक साथ थे और लोगो ने उन्हे देखा था और सूर्य-सिद्धात के समय तक ऐसी लोक-कथा चली आ रही थी, तो अवश्य वेदो में, या वेदाग-ज्योतिष, या महाभारत या पुराणो मे इस बात की चर्चा होती। वरजेस के अनुसार ग्रहादि की स्थितियाँ स्थूल रूप मे कलियुग के आरभ में यो थी :—

	भोगाश
सूर्य	३०२°
बुध	२६१
शुक्र	३३५
मगल	२९०
बृहस्पति	३१८
शनि	२८२
चद्रमा	३०८

बीज-संस्कार

सूर्य-सिद्धात के आधार पर अब भी कुछ पचागो की गणना होती है, परतु दैनिक गतियो में त्रुटि रहने के कारण अब ग्रहो की स्थितियो में नौ-दस अश (डिगरी) का अतर पड जाता है। प्राचीन सूर्य-सिद्धात के स्थिराक और भी अशुद्ध थे। इसलिए उस ग्रथ के बनने के कुछ ही सौ वर्ष बाद उनके आधार पर गणना और वेध में अतर पडने लगा होगा। इसीलिए पीछे के ग्रथकारो ने सूर्य आदि आकाशीय पिंडो के लिए बीज-संस्कार बताया, अर्थात युग मे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के भगणो की संख्या में परिवर्तन कर दिया; दूसरे शब्दो में उनकी दैनिक गति बदल दी।

ग्रहों की गतियाँ

अब ग्रहो की कोणीय मध्यक गतियाँ बतायी गयी है। उन्हें बताने के लिए यह बताया गया है कि एक महायुग (= $\frac{१}{१०००}$ कल्प) में सूर्य, बुध आदि कितने चक्कर लगाते है। उदाहरणत बताया गया है कि सूर्य ४३ लाख २० हजार चक्कर लगाता है, यह वस्तुत एक युग में वर्षो की सख्या है। मगल २२ लाख ९६ हजार ८ सौ वत्तीस चक्कर लगाता है, इत्यादि।

पाश्चात्य देशो में ग्रहो की स्थितियाँ किसी निकट समय के विशेष क्षण पर बताकर उनकी दैनिक गति दे दी जाती है, जिससे उनकी स्थितियाँ अन्य क्षणो पर गणना द्वारा निकाली जा सकती है, परतु भारतीय ज्योतिष में इस पद्धति पर बने ग्रथो को करणग्रथ कहते थे और उनका आदर कम होता था, विशेष आदर सिद्धात-ग्रथो का होता था। ऐसे ग्रथो में मान लिया जाता था कि कल्प के प्रारभ में सूर्य, चद्रमा तथा सब ग्रह[1] आकाश के एक विंदु पर थे, और चद्रमा तथा ग्रहो की कक्षाओ के पात और सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के शीघ्रोच्च[2] भी वही थे। तब लवे युग में उनके भगणो (चक्करो) की सख्याएँ बतायी जाती थी, जो स्वभावत ऐसी होती थी कि ग्रथकार के समय में आकाशीय पिंडो की स्थितियाँ ठीक निकलें और उनकी दैनिक गतियाँ भी यथासभव ठीक निकले।

सूर्य-सिद्धात के अनुसार सत्युग के आरभ में सब ग्रह मेष राशि के आदि विंदु पर थे, केवल उनके उच्च और पात उस स्थान पर न थे। गणना से देखा जा सकता है कि कलियुग के आरभ मे भी यही बात सच थी। सर्वसम्मति से यह आरभ ३१०२ ई० पू० की उज्जयनी की उस अर्धरात्रि को हुआ था जो १७ फरवरी के अत और १८ फरवरी के आरभ मे पडती है।

अब प्रश्न यह उठना है कि क्या वस्तुत उक्त दिनाक पर सब ग्रहादि साथ थे। बरजेस ने विनलॉक से गणना करायी, जो अमरीका के नॉटिकल अलमनक कार्यालय के उस समय अध्यक्ष थे। बेंटली और बेली ने भी स्वतत्र रूप से गणना की। इतने

[1] प्राचीन ग्रथों में सूर्य और चद्रमा को भी ग्रह मानते थे। जब सूर्य और चद्रमा को छोड अन्य ग्रहो का ही उल्लेख करने की आवश्यकता पडती थी तो उनको तारा-ग्रह कहते थे। हम इस पुस्तक में तारा-ग्रहो को केवल ग्रह कहेंगे और सूर्य तथा चद्रमा को ग्रह न मानेंगे।

[2] आगे पृष्ठ १३४ पर ये शब्द समझाये गये हैं।

दिन पहले के लिए ग्रहादि की स्थितियाँ बताने में उनकी नपी हुई गतियों की अवश्य-भावी त्रुटियों का प्रत्यक्षत बड़ा प्रभाव पड़ता है। आधुनिक ज्योतिष में अभी इतनी परिशुद्धता नहीं है कि निश्चयात्मक रूप से कहा जा सके कि कलियुग के आरंभ में ग्रहादि के स्थान ठीक-ठीक क्या थे। इसी से विनलॉक, वेली और वेंटली के उत्तरों में अंतर आया, परंतु इतना निश्चित है कि कलियुग के आरंभ में सब ग्रह और सूर्य तथा चंद्रमा, एक स्थान पर नहीं थे, यद्यपि वे एक दूसरे से बहुत दूर भी नहीं थे। जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धांत के ग्रंथकार ने, अथवा किसी अन्य सिद्धांतकार ने, अपने समय में ग्रहों की स्थितियों और उनकी दैनिक गतियों के आधार पर गणना की होगी और तब ऐसा समय चुना होगा जब ग्रहादि लगभग एक साथ थे, और उसी समय को कलि-युग का आरंभ माना होगा। यदि कलियुग के आरंभ में सचमुच ग्रहादि एक साथ थे और लोगों ने उन्हें देखा था और सूर्य-सिद्धांत के समय तक ऐसी लोक-कथा चली आ रही थी, तो अवश्य वेदों में, या वेदांग-ज्योतिष, या महाभारत या पुराणों में इस बात की चर्चा होती। बरजेस के अनुसार ग्रहादि की स्थितियाँ स्थूल रूप से कलियुग के आरंभ में यों थीं —

	भोगांश
सूर्य	३०२°
बुध	२६९
शुक्र	३३५
मंगल	२९०
बृहस्पति	३१८
शनि	२८२
चंद्रमा	३०८

बीज-संस्कार

सूर्य-सिद्धांत के आधार पर अब भी कुछ पंचांगों की गणना होती है, परंतु दैनिक गतियों में त्रुटि रहने के कारण अब ग्रहों की स्थितियों में नौ-दस अंश (डिगरी) का अंतर पड़ जाता है। प्राचीन सूर्य-सिद्धांत के स्थिरांक और भी अशुद्ध थे। इसलिए उस ग्रंथ के बनने के कुछ ही सौ वर्ष बाद उसके आधार पर गणना और वेध में अंतर पड़ने लगा होगा। इसीलिए पीछे के ग्रंथकारों ने सूर्य आदि आकाशीय पिंडों के लिए बीज-संस्कार बताया, अर्थात् युग में सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों के भगणों की संख्या में परिवर्तन कर दिया, दूसरे शब्दों में उनकी दैनिक गति बदल दी।

यह लगभग १६वी शताब्दी ई० मे किया गया होगा, क्योकि नवीन आँकडो के अनुसार उमी समय चद्रमा और सूर्य की सापेक्षिक स्थितियो में न्यूनतम त्रुटि पडती है और अवश्य ही ये ही दो पिंड महत्तम महत्त्व के है, क्योकि उन्ही से अमावस्या और पूर्णिमा की गणना होती है। इन वीज सस्कारो से अमावस्याओ और पूर्णिमाओ की त्रुटियाँ इतनी कम हो गयी है कि आज भी उनसे गणना करने पर घटे, दो घटे से अधिक का अन्तर नही पडता।

वरजेस ने सारणी दी है जिसमें दिखाया गया है कि सूर्य-सिद्धात, सिद्धात-शिरोमणि, टालमी और आधुनिक ज्योतिष के अनुसार सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के भगण-काल क्या है। इस सारणी की दो पक्तियाँ यहाँ दी जाती है

पिंड	सूर्य-सिद्धात	सिद्धात-शिरोमणि	टालमी	आधुनिक
	दिन घ०मि०से०	दिन घ०मि० से०	दिन घ० मि० से०	दिन घ०मि० से०
सूर्य	३६५ ६ १२ ३६ ६	३६५ ६ १२ ९ ०	३६५ ३६ ९ ४८ ६	३६५ ६ ९ १० ८
चद्रमा	२७ ७ ४३ २ ६	२७ ७ ४३ १२ १	२७ ७ ४३ १२ १	२७ ७ ४३ ११ ४

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-मिद्धात के मान पर्याप्त शुद्ध है।

फिर वताया गया है कि एक युग में कितनी तिथियो का क्षय होता है, कितने अधिमास लगते है। कहा गया है कि एक महायुग में १,५७,७९,१७,८२८ दिन, १,६०,३०,००,०८० तिथियाँ, १५,९,३,३३६ अधिमास, २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियाँ, तथा ५,१८,४०,००० सौर मास होते है।

इसके वाद वताया गया है कि एक कल्प में सूर्य, मगल आदि के मदोच्च कितने चक्कर लगाते है, एक महायुग मे चद्रमा तथा ग्रहो के भगणो की सख्या भी वतायी गयी है।

मंदोच्च और पात

यह समझने के लिए कि मदोच्च और पात क्या है, ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य, चद्रमा, ग्रह आदि ममान कोणिय वेग से नही चलते। जब उनकी दैनिक कोणीय गति न्यूनतम रहतो है तव कहा जाता है कि वे मदोच्च पर है, जिस विंदु पर कोणीय वेग महत्तम रहता है उमे शीघ्रोच्च कहते है। फिर, चद्रमा और ग्रहो का आधा मार्ग रविमार्ग से दक्षिण रहता है, आधा उत्तर। जिन दो विंदुओ में ये मार्ग रविमार्ग को काटने है वे पात कहलाते है।

सूर्य-सिद्धात के अनुमार सूर्य का मदोच्च एक कल्प में (४,३२,००,००,००० वर्षों में) पूर्व की ओर चलकर ३८७ भगण करता है, अर्थात ३८७ चक्कर लगाता है। यह वास्तविकता से वहुत कम है, लगभग १/६००वाँ भाग। अन्य सिद्धात-

कारो ने भी मदोच्च-गति के लिए सूक्ष्म मान दिये हैं। वस्तुत उनका मान इन ग्रथो के अनुसार इतना कम हैं कि कहना पडता है कि सिद्धातकार सूर्य और ग्रहो के मदोच्च को स्थिर ही मानते थे। चद्र-कक्षा का मदोच्च प्रत्यक्षत चलता रहता है। सभवत इसीलिए सिद्धातकारो ने सूर्य और ग्रहो के मदोच्चो को भी चलायमान माना परतु उनकी गति इतनी कम बतायी कि उनका चलना, न चलना, बराबर ही रह गया।

मंदोच्च की गति कैसे नापी गयी

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि मदोच्चो की गति नापना बहुत कठिन हैं और उनका सूक्ष्म मान जानने के लिए शक्तिशाली यत्रो की आवश्यकता पडती है, जो सूर्य-सिद्धात के समय मे नही थे, और लगातार बहुत लबे काल तक वेध करना चाहिए; या, कम-से-कम, इस काल के आदि और अत मे वेध करना चाहिए।

सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की भगण-सख्याएँ जो ऊपर दी गयी है उन्हें जानने के लिए आवश्यक वेध अपेक्षाकृत सरल हैं। तो भी निश्चयात्मक रूप से यह बता सकना कि १,५७,७९,१७,८२८ दिनो मे ठीक १,६०,३०,००,०८० तिथियाँ होती है, अर्थात् १,६०,३०,००,०८० — ३० मास होते हैं, न एक कम, न एक अधिक, बहुत ही कठिन हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या सचमुच वेध उस समय इतना सूक्ष्म होता था कि ये सब बातें ठीक-ठीक बतायी जा सकती थी, या केवल सुनी-सुनायी या दूसरो के वेधो पर आश्रित बातो पर ही ये बातें लिख दी गयी और विभिन्न सिद्धातकारो ने यह देखकर कि उनके समय में वेध और गणना में कितना अतर पडता है बीज-सस्कार कर लिया। इसका उत्तर प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य ने यो दिया है[1] —

> किंतु यह रीति केवल वही जान सकता है जिसने (ज्योतिषशास्त्र की) विशेष भाषा में कुशलता प्राप्त की हो, नक्षत्रादि स्थानो को जानता हो, और जिसने भूगोल-खगोल के बारे में अच्छी तरह सुना हो। अपने-अपने मार्गों मे जाते हुए ग्रह (सूर्य, चंद्रमा, बुध, शुक्र मगल आदि), मदोच्च, शीघ्रोच्च तथा पात एक कल्प में इतने भगण करते हैं, इसका प्रमाण आगम अर्थात् परपरागत ज्ञान ही हैं। किन्तु अधिक समय बीतने के कारण लेखको, अध्यापको, तथा पढनेवालो की भूल से आगम अनेक हो गये हैं। इसलिए प्रश्न होता है कि कौन-सा आगम प्रमाण माना जाय। यदि ऐसा कहा जाय कि जो आगम

[1] सिद्धांत-शिरोमणि, गणिताध्याय। संस्कृत मूल के लिए सूर्य-सिद्धात का विज्ञान-भाष्य देखें (पृष्ठ ३७); यहाँ महावीरप्रसाद कृत अनुवाद दिया गया है।

गणित के अनुसार खरा सिद्ध हो उसी को प्रमाण मानकर जो भगण निकलें वे ही माने जायँ तो यह भी ठीक नही है, क्योकि अत्यत ज्ञानी पुरुष भी केवल रीति के जानने में समर्थ हो सकता है, परतु (केवल) रीति से ग्रहो के भगण की सख्या नही निकल सकती। [उसे वेध की आवश्यकता पडेगी, और वेध से भी वह पूर्णतया सफल नही हो सकता।] कारण यह है कि मनुष्य की आयु बहुत थोडी होती है और उपपत्ति जानने के लिए ग्रह को प्रति दिन वेध करना होता है, जब तक कि भगण (कई बार) पूरा न हो जाय, और शनि का एक भगण तो ३० वर्षो में पूरा होता है, मदोच्चो के भगण अनेक शताब्दियो में पूरे होते है। इसलिए यह कार्य पुरुष-साध्य नही है। इसलिए बुद्धिमान गणक, किसी ऐसे आगम को मानकर जो उस समय ठीक समझा जाता हो और जिसकी गणना की कुशलता प्रतिष्ठाप्राप्त गणको ने स्वीकार कर लिया हो, अपनी गणित तथा गोल सबधी ग्रहो को दिखाने के लिए, तथा भ्रमवश जो कुछ अनर्थकारी दोष आ गये है उनको दूर करने के लिए, दूसरे ग्रथ बनाते है।

भास्कराचार्य का जन्म सन १११४ ई० में हुआ था। ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य सूर्य, चद्रमा, बुध, शुक्र आदि का भगणकाल वेध से ठीक-ठीक निकालना असभव समझते थे। भारतीय ज्योतिषियो में से सबसे अधिक विस्तृत और विशद सिद्धात भास्कराचार्य का ही है। यदि वे इस काम को असभव समझते थे तो उनके कई पीढी पहले वाले ज्योतिषी भी स्वय भगण-सख्याएँ न निकाल सके होगे। इससे कुछ लोग अनुमान करते है कि ये सख्याएँ प्रथम बार विदेश से आयी और तब विविध ज्योतिषियो ने आवश्यकतानुसार उनमें सुधार कर लिया। मय के असुर होने मे भी सकेत मिलता है कि सूर्य-सिद्धात का अधिकाश विदेश से आया। परतु यह भी विचारणीय है कि सुधार करने के बाद कुछ बातो में सूर्य-सिद्धात के ध्रुवाको से निकाला फल टॉलमी के ध्रुवाको से निकाले गये फल से अधिक शुद्ध होता था[1]।

अहर्गण

सूर्य-सिद्धान्त के आगामी तीन श्लोको में बताया गया है कि सृष्टि के आरभ से किसी इष्ट समय तक सावन[2] दिनो की सख्या कैसे जानी जा सकती है। इन दिनो

[1] सूर्य-सिद्धात का विज्ञान-भाष्य, पृ० ५३।

[2] सावन दिन साधारण दिन को कहते थे, जिसे सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक नापा जाता था। दिव्य दिन, नाक्षत्र दिन, आदि, से स्पष्ट करने के लिए ही इसे सावन दिन कहते थे।

को सम्मिलित रूप से द्युगण या दिनराशि कहा गया है । पीछे इसी को अन्य सिद्धात-कार अहर्गण कहने लगे । तीनो शब्दो का अर्थ एक ही है ।

अहर्गण की गणना मे बड़ी-बड़ी सख्याएँ आती है । उदाहरणत, १९७९ विक्रमीय की वसत पचमी (माघ सुदी ५) तक का अहर्गण

७,१४,४०,४१,३१,६०३

है[1] । इसी से करण ग्रथो की सहायता से गणना करने मे सुगमता रहती है । करण-ग्रथो में कल्प की आदि से या कलियुग के आरभ से गणना करने के बदले किसी निकट दिनाक से ही गणना की जाती है । परतु सिद्धात का ही स्थान विद्वानो में अधिक ऊँचा रहा है ।

फिर, इष्टकाल कौन-सा वार है और वर्षपति तथा मासपति कौन-कौन है इसे जानने की रीति बतायी गयी है । मासपति और वर्षपति सूर्य, चद्रमा, मगल आदि ग्रह ही होते है और साधारण काम के लिए वे महत्त्वपूर्ण नही है ।

इसके बाद बताया गया है कि किसी विशेष ग्रह की मध्यम स्थिति कैसे जानी जा सकती है । कलियुग के आरभ मे इनका स्थान ज्ञात है ही । युग में भगणो की सख्या भी ज्ञात है । इसलिए साधारण अकगणित से ग्रहो की स्थिति ज्ञात हो जाती है । इसी प्रकार पात और मदोच्च की भी स्थितियो के लिए नियम बताये गये है ।

छप्पनवे श्लोक में यह है

विस्तरेणैतदुदितं सक्षेपाद्व्यावहारिकम् ।
मध्यमानयन कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥

अर्थ—ग्रहो के मध्यम स्थान जानने की रीति अब तक विस्तार के साथ कही गयी है, परतु व्यवहार के लिए इष्ट युग से ही यह काम सक्षेप मे करना चाहिए ।

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धांत का रचयिता भी यह अनुभव कर रहा था कि सृष्टि के आरभ से गणना करना निष्प्रयोजन बहुत-सा कार्य बढा देता है ।

पृथ्वी की नाप

इसके बाद पृथ्वी की नाप बताई गयी है (८०० योजन), फिर पृथ्वी की परिधि । सभी जानते है कि व्यास को ३ १४१६ से गुणा करने से परिधि निकलती है । सूर्य-सिद्धात में $\sqrt{(१०)}$ अर्थात ३ १६२ से गुणा करने को कहा गया है । इसमे सन्निकट मान निकलेगा, जिसमें लगभग $\frac{३}{४}$ प्रतिशत, अर्थात एक प्रतिशत से कम, की

[1]विज्ञान-भाष्य, पृ० ५७ ।

अशुद्धि रहेगी। विषुवत के समानातर किसी विशेष स्थान से होकर जाने वाले लघुवृत्त की परिधि जानने का सूत्र भी दिया गया है, जो पूर्णतया शुद्ध है।

मध्य याम्योत्तर रेखा वह बतायी गयी है जो अवती (उज्जैन) से होकर जाती है। इसी रेखा पर रोहीतक (सभवत वर्तमान रोहतक) है यह भी बताया गया है। आगे के तीन श्लोको में बताया गया है कि किसी स्थान का देशातर कैसे नापा जा सकता है। वर्तमान समय में रेडियो-सकेतो से देशातर जाना जाता है। इसके पहले तार-सकेतो से जाना जाता था। सूर्य-सिद्धात में सर्व चद्र-ग्रहण के आरभ या अत को देखकर देशातर नापने का आदेश है।

मध्य याम्योत्तर से पूर्व या पश्चिम वाले स्थानो में दिन का आरभ कब से मानना चाहिए यह बता कर नियम दिया गया है जिससे सूर्य, चद्र, मगल आदि का मध्यक स्थान, मध्यरात्रि से इच्छानुसार घडी आगे या पीछे, जाना जा सकता है। इस प्रकार इष्ट समय पर इन आकाशीय पिंडो का भोगाश जानने का सपूर्ण और ब्योरेवार नियम है। उसके बाद के श्लोको में इसकी गणना बतायी गयी है कि चद्रमा, मगल, आदि, रविमार्ग से कितना उत्तर या दक्षिण हटे रहते है, दूसरे शब्दों में, उनका शर क्या है।

स्पष्टाधिकार

प्रथम अध्याय का नाम है मध्यमाधिकार, क्योकि इसमें सूर्य आदि की मध्यक स्थितियां है, अर्थात वे स्थितियां जहां सूर्य आदि दिखायी पडते यदि वे सदा समान वेग से चलते और औसतन उतने ही काल में एक चक्कर लगाते जितने में वे वस्तुत लगाते ह। द्वितीय अध्याय का नाम स्पष्टाधिकार है। इसमें बताया गया है कि सूर्य आदि की मध्यक स्थितियो में क्या-क्या सशोधन करना चाहिए जिसमें सशोधित स्थितियां वही हो जायें जो आकाश में वस्तुत रहती है।

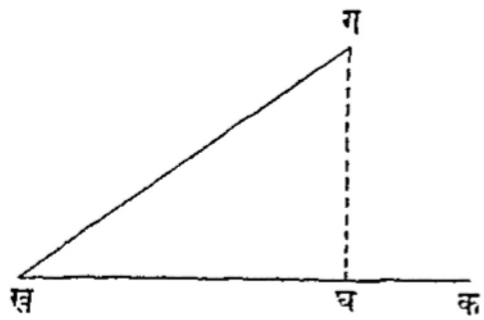
पहले तो एक व्यापक सिद्धात दिया गया है कि सूर्य आदि क्यो मध्यक वेग से कभी शीघ्रतर चलते है, कभी मदतर। इस सिद्धात का साराश यह है कि अतरिक्ष में वायु-धाराएँ है जो उनको नियमित रूप से इधर या उधर खीचती रहती है। फिर शीघ्रतर, शीघ्र, सम, मद, मदतर वेग बताये गये है।

- तेरह श्लोको में ज्या-सारणी बतायी गयी है, जो पर्याप्त शुद्ध है। बरजेस ने बताया है कि ये ज्याएँ पहले कैसे निकाली गयी होंगी और फिर उनकी वृद्धि की जांच करके उनकी गणना के लिए अधिक सुगम नियम कैसे बने होंगे[1]। उप-

[1]कलकत्ता वाला सस्करण, पृष्ठ ६१।

लब्ध साक्ष्य की जांच मे वरजेस का विश्वास है कि ज्या की सारणी अवश्य भारत मे बनी होगी।

ज्या की सारणी बनाने में वृत्त की परिधि और व्यास की निष्पत्ति की आवश्यकता पडती है और यहाँ $\sqrt{(१०)}$ के बदले प्राय. पूर्णतया शुद्ध मान लिया गया है। इससे स्पष्ट है कि शुद्ध मान सिद्धातकारो को ज्ञात था, केवल सुविधा के विचार से, स्थूल गणना के लिए, उसका मान $\sqrt{(१०)}$ भी ले लिया जाता था।



यदि कखग कोई कोण है और विंदु ग से भुजा खग पर लंब गघ गिराया गया है तो गघ—खग के मान को कोण कखग की 'ज्या' कहते हैं। यह आधुनिक परिभाषा है। सूर्य-सिद्धात में खग को ३४३८ मान लिया गया है और तब बताया गया है कि विविध कोणो के लिए गघ का मान कितना होता है और गघ के मान को ज्या कहा गया है। एक समकोण को २४ बराबर भागो में बांट कर एक भाग, दो भाग, तीन भाग, इत्यादि की ज्याएँ बतायी गयी हैं। ज्या की आवश्यकता कई गणनाओ मे पडती है।

आगामी श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य की परम क्राति, अर्थात महत्तम क्राति, कितनी होती है, वस्तुत परम क्राति की ज्या बतायी गयी है। फिर उसी श्लोक में यह भी बताया गया है कि किसी अन्य अवस्था में क्राति की गणना कैसे की जा सकती है।

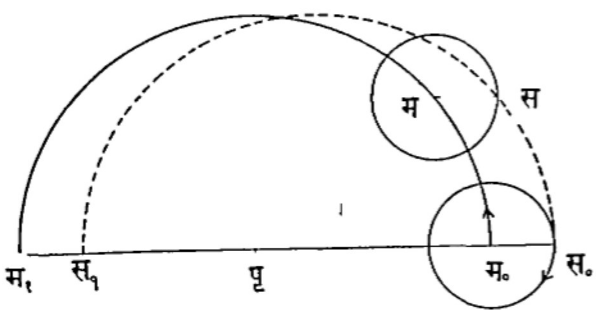
श्लोक २९ में बताया गया है कि मदोच्च, शीघ्र, केंद्र, पद, भुजज्या और कोटि की गणना कैसे करनी चाहिए। यहाँ केंद्र शब्द सस्कृत नही है, क्योंकि इसके पहले की पुस्तको में इसका प्रयोग नही होता था। वरजेस ने लिखा है कि केंद्र ग्रीक शब्द Κεντρον (केंट्रन) है, और ग्रह के स्पष्ट स्थान निकालने की नींव में ही इस शब्द के आने में गढ रहस्य है।

सारणी से ३ अश या इनके दुगुने, तिगुने आदि की ही ज्या जानी जा सकती है; अब बताया गया है कि अन्य कोणो की ज्या किस प्रकार जानी जा सकती है; जो नियम दिया गया है वह सरल अंतःक्षेपण का नियम है।

मद-परिधि

चौतीसवे और उसके वाद वाले श्लोको में बताया गया है कि सूर्य, चद्रमा, मगल आदि का स्पष्ट स्थान कैसे ज्ञात किया जा सकता है। इसके समझने के लिए साथ के चित्र पर विचार करें। गणना के लिए कल्पना की जाती थी कि पिंड एक छोटे से वृत्त पर समान वेग से चलता है और उस वृत्त का केंद्र समान वेग से दूसरे वृत्त पर चलता है। छोटे वृत्त को सूर्य-सिद्धात में मद-परिधि कहा गया है। वडा वृत्त वही है जिस पर पिंड की मध्यक स्थिति रहती है, वस्तुत मद-परिधि का केंद्र पिंड की मध्यक स्थिति है।

उदाहरण के लिए सूर्य पर विचार करें। चित्र में पृ पृथ्वी है। मध्यक सूर्य[1] वृत्त म$_०$, म, म$_१$ पर चलता है। जव मध्यक सूर्य विंदु म$_०$ पर रहता है तव वास्तविक सूर्य स$_०$ पर रहता है। जब तक मध्यक सूर्य म$_०$ से म पर जाता है तव तक



वास्तविक सूर्य विंदु स पर पहुँचता है, और जव मध्यक सूर्य म$_१$ पर पहुँचता ह तव वास्तविक सूर्य विंदु स$_१$ पर पहुँचता है। इस प्रकार वास्तविक सूर्य कक्षा स$_०$ स स$_१$ पर चलता है। गणित से सिद्ध किया जा सकता है कि कक्षा स$_०$ स स$_१$ एक वृत्त है जो मध्यक सूर्य की कक्षा के ठीक वरावर है, परतु पृथ्वी कक्षा स$_०$ स स$_१$ के केंद्र पर नही है। परिणाम यह होता है कि गणना के अनुसार सूर्य की दूरी जो निकलती है वह समय के अनुसार कभी कम, कभी अधिक रहती है और इसी प्रकार सूर्य की दैनिक कोणीय गति भी न्यूनाधिक निकलती है, और ये दोनो गणना-प्राप्त मान वास्तविक मान के प्राय वरावर होते है।

[1] अर्थात सूर्य की मध्यक स्थिति, अथवा वह कल्पित विंदु जो वास्तविक सूर्य के औसत कोणीय वेग से और औसत दूरी पर चलता है।

मंद-परिधि में सूर्य के एक चक्कर लगाने का समय ठीक उतना ही माना जाता है जितने में मध्यक सूर्य अपनी कक्षा मे एक चक्कर लगाता है, परतु चद्रमा के लिए दोनो के चक्कर लगाने का समय एक नही माना जाता। मगल आदि ग्रहो में भी सूर्य की ही तरह मद-परिधि में वास्तविक ग्रह के चक्कर लगाने का समय और मध्यक ग्रह के चक्कर लगाने का समय एक माना जाता है, परतु इन ग्रहो के लिए और भी काम करना पडता है, जो, कुछ कठिन होने के कारण, यहाँ नही समझाया जायगा।

टालमी से तुलना

जब सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने की रीति की तुलना टालमी की रीति से की जाती है तो कई बातो में विभिन्नता दिखायी पडती है। चद्रमा का स्थान टालमी के अनुसार गणना करने पर कुछ अधिक सच्चा निकलता है। वर्तमान गणित से तुलना करने पर सूर्य-सिद्धात की रीति बहुत स्थूल है विशेष कर चद्रमा की स्पष्ट स्थिति जानने की रीति। वर्तमान रीति से चद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने के लिए कई सौ सशोधन करने पड़ते है। ब्रिटिश तथा अन्य पाश्चात्य नाविक पचागो के लिए ब्राउन[1] की चद्र-सारणियों से काम लिया जाता है, जो दो बडे आकार के मोटे खडो में छपा है; एक साल की चाद्र स्थितियो की गणना में कई व्यक्ति पाँच-छ महीने तक गणना करते है, गणक-मशीनो की सहायता लेते है और वेध-प्राप्त बीज सस्कार करते है। इतना करने पर भी सूर्य-ग्रहण की गणना मे वास्तविकता से तुलना करने पर कुछ सेकड का अतर रह ही जाता है। इसलिए कोई आश्चर्य न होना चाहिए कि सूर्य-सिद्धात के अनुसार गणना करने पर घटे, दो घटे का अतर पड जाता है। सूर्य-ग्रहण की गणना के लिए सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट स्थितियाँ सूक्ष्मता से ज्ञात रहनी चाहिए। सूर्य का स्थान तो प्राय ठीक ही ज्ञात रहता है। चद्रमा की स्थिति में कुछ अनिश्चितता आधुनिक गणित में भी रह जाती है। इसी से सूर्य-ग्रहण के लिए गणना-प्राप्त समय में कुछ त्रुटि रह जाती है।

सूर्य-सिद्धात में एक अन्य सूक्ष्मता भी लायी गयी है। मद-परिधि को सब स्थितियो में एक ही व्यास का नही माना गया है। माना गया है कि इनका व्यास एक ओर अधिक रहता है, और जैसे-जैसे इनका केंद्र मध्यक ग्रह की कक्षा की दूसरी ओर पहुँचता है तैसे-तैसे इसका व्यास घट कर लघुतम हो जाता है।

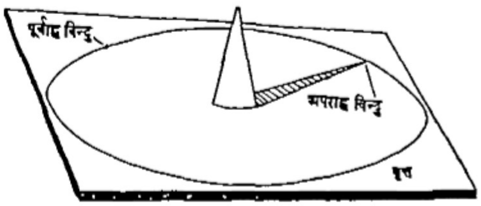
[1] देखो गोरखप्रसाद . चद्र-सारणी (काशी-नागरीप्रचारिणी सभा)।

ग्रहो की स्थितियो की गणना बताने के बाद इसकी गणना बतायी गयी है कि किसी दिन कौन-सी तिथि है यह कैसे जाना जाय। फिर करणो की गणना बतायी गयी है।[१]

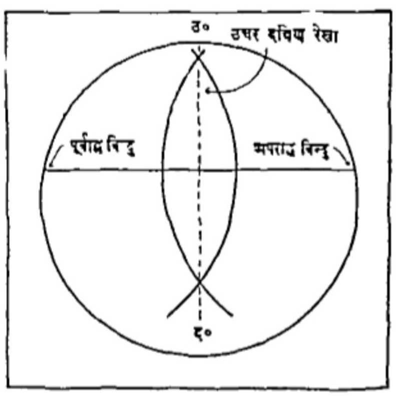
त्रिप्रश्नाधिकार

त्रिप्रश्नाधिकार में तीन विषयो पर विचार किया गया है दिशा, देश और काल (समय)। पहले तो शकु स्थापित करने के लिए आदेश है

जल के द्वारा शोध कर समतल किये हुए पत्थर के तल पर अथवा वज्रलेप (सुर्खी, चूने आदि के मिश्रण) से बने हुए समतल चबूतरे पर शकु के अनुसार इष्ट अगुल (अर्थात इच्छानुसार नाप) के व्यासार्ध का एक वृत्त खीचो। इस वृत्त के केंद्र में बारह अगुल का एक शकु लब रूप में स्थापित करो। इसकी छाया की नोक मध्याह्न के पहले और पीछे पूर्वोक्त वृत्त को जहाँ-जहाँ स्पर्श करे वहाँ-वहाँ वृत्त पर बिंदु बना दो, इन दो बिंदुओं को पूर्वाह्न और अपराह्न बिंदु कहते है। फिर इन दो बिंदुओं के बीच में तिमि द्वारा (अर्थात मछली की आकृति की ज्यामितीय रचना



शकु।
शकु की पूर्वाह्न और अपराह्न छाया देख कर पूर्व-पश्चिम रेखा खीची जाती थी।



उत्तर-दक्षिण दिशा जानने की रीति।

[१] करण, योग आदि क्या है यह इस पुस्तक के अतिम अध्याय में बताया गया है।

करके[1]) उत्तर-दक्षिण रेखा खीचो। उत्तर-दक्षिण दिशाओ के बीच मे तिमि द्वारा पूरब-पच्छिम रेखा खीचो।

यहाँ शकु की सब नाप नही बतायी गयी है।

भारतीय ज्यौतिष ग्रथो में कही भी यत्रो का ब्योरेवार वर्णन नही है, परतु जान पडता है कि शकु उस समय एक महत्त्वपूर्ण यंत्र माना जाता था। इसका वर्णन सूर्य-सिद्धात मे है ही। अन्यत्र भी इसका वर्णन मिलता है।

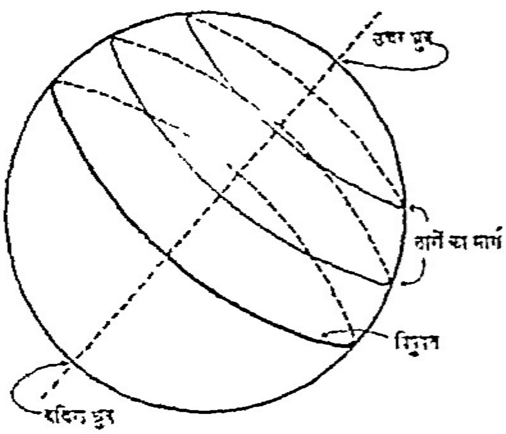
श्लोक ५ से ८ तक में छाया सबधी परिभाषाएँ तथा आदेश है।

श्लोक ९ और १० में एक अत्यत महत्त्वपूर्ण बात बतायी गयी है। कहा गया है :

एक युग में नक्षत्र-चक्र ६०० बार पूर्व की ओर लोलक की तरह आन्दोलन करता है। इस ६०० को इष्ट अहर्गण से गुणा करके महायुगीय सावन दिनो की सख्या से भाग देने पर जो आये उसका भुज बना कर भुज से ३ को गुणा करके १० से भाग दे दो। ऐसा करने से जो कुछ आये वही अयनाश कहलाता है। ग्रहो (अर्थात सूर्य, चद्रमा, मगल, आदि) के स्थानो में इसका सस्कार देकर (जोड कर) ग्रहो की क्राति, छाया, चरदल, इत्यादि जानना चाहिए।"

अयन

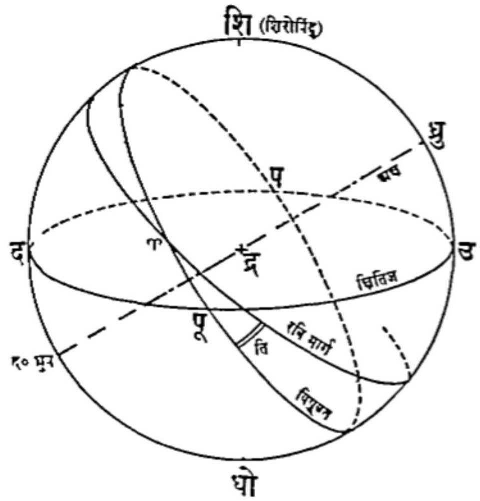
इस श्लोक का महत्त्व यह है कि इसमें अयन की गणना बतायी गयी है। अयन को समझने के लिए ध्यान दे कि आकाश में तारे, ग्रह, चद्रमा, सूर्य, सब पूर्व क्षितिज पर उदित होते है और मोटे हिसाब से २४ घटे में एक चक्कर लगाकर दूसरे दिन फिर पूर्व क्षितिज पर पहुँच जाते है। आकाशीय पिंडो की यह दैनिक गति है। यदि आकाश को गोले से निरूपित किया जाय और हम



[1] यह वही रचना है जिससे दी हुई सरल रेखा पर लंब-अर्धक खड़ा किया जाता है।

पर तारो के दैनिक मार्ग अकित किये जायें तो वे सब समानातर वृत्त होगे। इस गोले को हम खगोल कहेगे। खगोल के केंद्र से जो रेखा पूर्वोक्त सब वृत्तो के समतल पर लब खीची जा सकती है वही खगोल का अक्ष है। अक्ष खगोल को दो विंदुओ में काटता है जिनमें से एक उत्तर ध्रुव है और दूसरा दक्षिण ध्रुव। इन दोनो ध्रुवों के ठीक मध्य में रहने वाला खगोल पर खीचा गया वृत्त विषुवत कहलाता है।

हम खगोल पर सूर्य की स्थिति भी अकित कर सकते हैं। यदि हम शकु की छाया देखें तो हमें सूर्य की दिशा और उन्नताश (ऊँचाई) ज्ञात हो जाती है, और इससे खगोल पर सूर्य की स्थिति का पता चल जाता है। यदि हम प्रतिदिन मध्याह्न पर सूर्य की स्थिति ज्ञात करके उसे अपने खगोल पर अकित करें तो एक वर्ष में ज्ञात होगा कि सूर्य एक वृत्त पर चलता है, जिसे हम रविमार्ग कहेगे। हम देखेगे कि रविमार्ग विपुवत को दो व्यास्त सम्मुख (अर्थात सामने-सामने के) विन्दुओ में काटता है। इनमें एक वसत विपुव विंदु (सक्षेपत वसत विपुव) है और दूसरा शरद विपुव विंदु।



खगोल।
रविमार्ग विपुवत को लगभग २३½ अश के कोण पर काटता है।

यदि वसत विपुव विंदु का स्थान समय-समय पर खगोल पर अकित किया जाय तो पता चलेगा कि वसत विपुव (और इसलिए शरद विपुव भी) तारो के सापेक्ष धीरे-धीरे खिसकता रहता है। इसी को अयन कहते हैं। यह गति बडी ही धीमी है। एक चक्कर लगाने में विपुव को लगभग २६,००० वर्ष लगता है।

अब गति-विज्ञान के नियमों से सिद्ध कर दिया गया है कि विपुव बराबर ही एक दिशा में चलता रहेगा और समय पा कर चक्कर पूरा कर लेगा। परतु केवल वेध से बताना असभव है कि विपुव चक्कर लगायेगा या कुछ दूर जा कर लौट आयेगा। सूर्य-सिद्धांत का मत है कि विपुव बराबर एक ही दिशा में नही चलता, यह अपनी

औसत स्थिति के इधर-उधर दोलन किया करता है, जैसे तागे से लटका हुआ लगर ।

सूर्य-सिद्धात में जो बाते दी है उनसे यह परिणाम निकलता है कि विपुव एक वर्ष में ५४ विकला चलता है । गणना से यह ज्ञात है कि सूर्य-सिद्धात के समय में विपुव प्रति वर्ष ५० विकला ही चलता रहा होगा । इस प्रकार दोनो मे कुछ अतर है, परतु अयन का नापना इतना टेढा है कि आश्चर्य होता है कि कैसे इतनी सूक्ष्मता से इसे उस काल में किसी ने नापा होगा । अयन का पता यवन (ग्रीक) ज्योतिषी हिपार्कस ने लगाया (पृष्ठ १२१ देखो) और उसने कहा कि अयन ३६ विकला प्रति वर्ष से कम न होगा । प्रसिद्ध टालमी ने अयन को अधिक सूक्ष्मता से नापने के बदले ३६ विकला प्रति सेकड को ही शुद्ध मान लिया । जिन लोगो की यह धारणा है कि ज्योतिप सबधी सब सूक्ष्म ज्ञान भारत में ग्रीस से आया यह नही बता पाते कि भारतीयो ने अयन का इतना अच्छा मान कैसे प्राप्त किया । हम देख चुके है (पृष्ठ ५६) कि पहले कृत्तिकाएँ वसत विपुव पर थी । क्या कोई पारपर्य था जिससे सूर्य-सिद्धात के समय के ज्योतिपी अनुमान कर सके कि शतपथ ब्राह्मण के काल से उस समय तक लगभग कितने वर्ष बीते थे और इस प्रकार अपने समय मे विपुव की स्थिति को देख कर वे गणना कर सकें कि इतने वर्षो में विपुव इतना चला तो एक वर्ष मे कितना चलता होगा ? कम-से-कम इतना तो है कि सूर्य-सिद्धात के अनुसार विपुव इधर-उधर २७ अश तक दोलन करता है और कृत्तिका से सूर्य-सिद्धात के समय तक विपुव कुल २६¾ अश चला था । बहुत सभव है कि २७ अश इसीलिए चुना गया हो, सिद्धातकार का विश्वास रहा होगा कि पुरानी स्थिति फिर आयेगी ।

कुछ पाश्चात्यो को सदेह है; वे समझते है कि सयोगवश ही भारतीयो का पूर्वोक्त मान इतना सच्चा निकला ।

क्या वसत विपुव दोलन करता है ?

हम देख चुके है कि वर्तमान सूर्य-सिद्धात में और वराहमिहिर के समय में उपलब्ध सूर्य-सिद्धात में अंतर है । अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सूर्य-सिद्धात के प्राचीन रूप में भी अयन की चर्चा थी । ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त में अयन की कोई चर्चा नहीं की है, यद्यपि वह वराहमिहिर के बहुत पीछे हुआ, और इसलिए प्राचीन सूर्य-सिद्धात के बहुत ही पीछे । इससे सभावना यही जान पडती है कि सूर्य-सिद्धात के प्राचीन पाठ मे अयन न रहा होगा । जब हम इस पर विचार करते है कि शकु की छाया वाले अध्याय में अयन बताने के बदले इसे प्रथम अध्याय में बताना

अधिक उचित होता, और इस पर भी विचार करते हैं कि इस अध्याय के श्लोक ८ तक शकु-छाया सबधी बातें हैं और ग्यारहवें श्लोक से फिर छाया-सबधी बातें आरभ हो जाती हैं, तो सदेह की कुछ पुष्टि ही हो जाती है। भास्कराचार्य ने अपने ग्रथ सिद्धात-शिरोमणि में यही लिखा है कि विषुव वरावर एक दिशा में चलता रहता है, परतु उनके भाष्यकारो ने उस सिद्धात को ठीक नही माना, वे यही मानते थे कि विपुव दोलन करता है, और भारत से यह अशुद्ध सिद्धात अरब में और वहाँ से प्रारभिक यूरोपीय ज्योतिष में भी पहुँच गया[1]।

शकु की छाया

वारहवें श्लोक में उस दिन मध्याह्न काल के क्षण शकु-छाया पर विचार किया गया है जिस दिन सूर्य विषुवत पर रहता है। आगामी श्लोक में शकु-छाया से स्थान का अक्षाश जानने की रीति वतायी गयी है। आगे चलकर वताया गया है कि मध्याह्न पर छाया नाप कर किस प्रकार सूर्य की क्राति नापी जा सकती है और उससे सूर्य के भोगाश की गगना की जा सकती है। इसी प्रकार के अन्य कई एक शकु और छाया से सबध रखने वाले प्रश्नो के लिए नियम दिये गये हैं। बयालिसवें श्लोक में शकु की छाया की नोक का मार्ग खीचने की रीति वतायी गयी है। इस मार्ग को वृत्त मान लिया गया है, जो ठीक नही है। भास्कराचार्य ने भी स्वीकार किया है कि यह नियम अशुद्ध है।

इसके वाद वताया गया है कि लका और इष्ट स्थान में मेष आदि राशियो के उदयकाल की गणना किस प्रकार की जा सकती है। भारतीय ज्योतिष ग्रथो मे लका वह विंदु है जहाँ उज्जैन की याम्योत्तर रेखा भूमध्य रेखा को काटती है। यह विंदु श्रीलका (वर्तमान सीलोन) से दूर है। लग्न[2] जानने की रीति भी वतायी गयी है।

चद्रग्रहणाधिकार

चद्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अध्याय के पहले श्लोक में वताया गया है कि सूर्य का व्यास ६५०० योजन है और चद्रमा का ४८० योजन। सूर्य-सिद्धात ने

[1] वरजेस, पृष्ठ ११९।

[2] इष्ट समय पर रविमार्ग का जो विंदु क्षितिज पर रहता है वही उस समय का लग्न (अर्थात लगा हुआ विंदु) कहलाता है।

प्रथम अध्याय में ही बता दिया है कि पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है। इस प्रकार चद्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धात के अनुसार पृथ्वी के व्यास का ० ३३ है, वास्तविक नाप लगभग ० २७ है। इस प्रकार चद्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धात में एक प्रकार से बहुत शुद्ध है। परतु सूर्य का व्यास बहुत अशुद्ध है।

चद्रमा के व्यास की नाप किस प्रकार प्राप्त की गयी थी इसकी चर्चा कही नही है। कोणीय व्यास का अनुमान तो रहा ही होगा। परतु इससे अनुरेख व्यास का पता तभी लग सकता है जब चद्रमा की दूरी ज्ञात हो। दूरी नापने के लिए आवश्यक है कि नापा जाय कि दो स्थानो से देखने पर चद्रमा की दिशाओ में कितना अतर पडता है। प्रत्यक्ष है कि यह अतर जितना ही अधिक होगा चद्रमा की दूरी उतनी ही कम होगी, अतर जितना ही कम होगा, दूरी उतनी ही अधिक होगी। परतु दो स्थानो से चद्रमा की दिशाओ का अतर नापना सुगम नही है। इससे आश्चर्य होता है कि चद्रमा की दूरी कैसे नापी गयी होगी।

सूर्य की दूरी नापी नही गयी है। एक सिद्धात पर उसकी दूरी की गणना कर ली गयी है। सिद्धान्त यह था कि सूर्य, चद्रमा, मगल आदि सब समान वेग से अतरिक्ष मे चलते है। परतु यह सिद्धात ठीक नही है। फलत, इसके आधार पर निकाली गयी सूर्य की दूरी भी अशुद्ध निकली और इसलिए सूर्य का व्यास भी। सूर्य-सिद्धात के अनुसार सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग चौगुना है। आधुनिक वेधो से पता चलता है कि सूर्य इससे कही अधिक बडा है—इसका व्यास पृथ्वी के व्यास के १०० गुने से भी कुछ अधिक है।

पृथ्वी के अर्ध-व्यास के सम्मुख चद्रमा पर जो कोण बनेगा उसे चद्रमा का लबन कहते है। पृथ्वी से चद्रमा की दूरी घटती-बढती रहती है। इसी से लबन भी घटता-बढता रहता है। आधुनिक नापो के अनुसार इसका औसत मान लगभग ५७ कला है, और वास्तविक मान लगभग ६१ कला और ५४ कला के बीच घटता-बढता रहता है। सूर्य-सिद्धात ने चाद्र लबन को स्थिर माना है और उसका मान ५३$\frac{1}{3}$ कला लिया है। हिपार्कस ने चाद्र लबन को अपनी नापो के अनुसार ५७ कला माना था जो प्राय शुद्ध है। परतु हिपार्कस ने भी सूर्य की नाप बताने मे गलती की। उसके पहले अपनी नापो के आधार पर अरिस्टार्कस की धारणा थी कि सूर्य चद्रमा की अपेक्षा कुल १९ गुनी दूरी पर है। परतु यह मान बहुत ही अशुद्ध है। वस्तुत सूर्य चद्रमा की अपेक्षा लगभग ४०० गुनी दूरी पर है। परिणामत, हिपार्कस ने सूर्य का लबन ३ कला माना। सूर्य-सिद्धात ने सूर्य का लबन ४ सेकड माना। दोनो मान शुद्ध मान से बहुत अधिक है। शुद्ध मान लगभग $\frac{1}{7}$ कला है।

इसके वाद चद्रग्रहणाधिकार में सूर्य और चद्रमा के आभासी (कोणीय) व्यासो के जानने की रीति वतायी गयी है। तव यह वताया गया है कि चद्रमा की कक्षा के पास पृथ्वी की छाया कितनी वडी रहती है। सभी जानते है कि इसी छाया में घुसने से चद्रग्रहण लगता है। चद्रमा को राहु और केतु के ग्रसने की बात तो जनता के सतोष के लिए पुराण आदि में कह दी गयी है। सूर्य-सिद्धात के रचयिता को, तथा अन्य ज्योतिपियो को, ग्रहणो का ठीक कारण ज्ञात था और वे उसकी गणना भी कर सकते थे। नवाँ श्लोक यह है

छादको भास्करस्येन्दुरध स्थो घनवद्भवेत् ।
भच्छायां प्राङमुखश्चद्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

अर्थ—सूर्य के नीचे आ जाने पर चद्रमा उसको वादल की तरह ढक लेता है [इस प्रकार सूर्य-ग्रहण लगता है]। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चद्रमा भू छाया में प्रवेश कर जाता है, इस प्रकार चद्रमा का ग्रहण लगता है।

इसके वाद निम्न वातें जानने के लिए नियम वताये गये है ग्रस्त भाग का परिमाण , सर्व-ग्रहण होगा, या खड-ग्रहण, या ग्रहण लगेगा ही नही, ग्रहण और सर्व-ग्रहण कितने समय तक रहेगा, ग्रहण का आरभ और अत कव होगा , सर्व-ग्रहण का आरभ और अत कव होगा, ज्ञात समय पर कितना भाग ग्रस्त रहता है, ज्ञातग्राम किस समय दिखायी पडेगा, ग्रहण का चित्र।

विपय के कठिन होने के कारण अधिक व्योरा यहाँ देना उचित नही जान पडता।

सूर्यग्रहणाधिकार

इस अध्याय में १७ श्लोको में सूर्य-ग्रहण की गणना करने की रीति वतायी गयी है। वडी वुद्धिमत्ता से कई एक नियम वनाये गये है जो लगभग ठीक है, परन्तु कुल मिलाकर इतने सशोवन छूट गये है कि अतिम परिणाम वेकार ही रह जाता है। वरजेस ने २६ मई, सन १८५४ के सूर्य-ग्रहण की गणना अमरीका के एक नगर के लिए अपने सहायक भारतीय पडित से सूर्य-सिद्धात के अनुसार कराकर प्रकाशित की है और गणना मे जहाँ कही अशुद्धता रह गयी थी उसका सशोवन भी कर दिया है। वडे पृष्ठो पर छोटे टाइप में छापने पर भी गणना में लगभग २१ पृष्ठ लगे है। अतिम परिणाम यह निकला है कि आँख से देखे गये ग्रहण के समय और गणना द्वारा प्राप्त समय में पौने दो घटे से अविक का अतर पडता है। विज्ञान भाष्य मे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने उदाहरण स्वरूप काशी के लिए सवत १९८२ के माघ कृष्ण अमावस्या के सूर्य-ग्रहण की गणना सूर्य-सिद्धात के अनुसार की है। इस गणना में लगभग ४० पृष्ठ लगे है। अतिम परिणाम यह निकला है कि ग्रास का

परिमाण लगभग २६ कला है, अर्थात सूर्य के व्यास का तीन-चौथाई से अधिक भाग छिप जाना चाहिए और सूर्य-ग्रहण ६ घडी ४४ पल (दो घटे से अधिक समय तक) लगा रहना चाहिए। परतु वास्तव में यह ग्रहण लगा नही। काशी के जो लोग इस ग्रहण को देखने की चेष्टा मे थे उन्हे भी ग्रहण नही दिखायी पडा और आधुनिक गणना से भी सिद्ध हुआ कि ग्रहण नही दिखायी पडना चाहिए।

परिलेखाधिकार

सूर्य-सिद्धात के छठवे अध्याय का नाम परिलेखाधिकार है। किसी-किसी प्रति में इसे छेद्यकाधिकार भी कहा गया है। दोनो का अर्थ एक है। इस अध्याय मे क्या है यह पहले श्लोक मे बताया गया है

"छेद्यक, परिलेख या चित्र के बिना सूर्य और चद्रमा के ग्रहणो के भेद का ठीक-ठीक ज्ञान नही होता कि बिंब की किस दशा से ग्रहण का आरभ होगा, और किस दिशा से मोक्ष, तथा ग्रास कितना होगा। इसलिए छेद्यक बनाने का उत्तम ज्ञान मै कहता हूँ।"

इस अध्याय मे २४ श्लोक है। तेईसवें श्लोक में कोई गणित नही है। वह यो है .

> अर्धाद्रूने सधूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
>
> विमुचतः कृष्णताम्रं कपिलं सकलग्रहे ॥२३॥

अर्थ—जब चद्र-बिंब का आधे से कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भाग का रग धुएँ की तरह होता है। आधे से अधिक ग्रस्त होने पर ग्रस्त भाग काला देख पडता है। जब चद्र-बिंब का बहुत-सा भाग ग्रस्त हो जाता है और थोडा ही-सा बचा रहता है तब ग्रस्त भाग का रग साँवले ताँबे के रग का होता है। परतु सर्वग्रास ग्रहण का रग करयई (अथवा लोबान के रग का) होता है। [सूर्यग्रहण मे सूर्य के ग्रस्त भाग का रग सदैव काला होता है।]

अतिम श्लोक रोचक है :

> रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्यचित्।
>
> सुपरीक्षितशिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥२४॥

अर्थ—परिलेख खीचने की विद्या देवताओ की गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे-वैसे आदमी को न बतानी चाहिए। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्य को जो एक वर्ष तक साथ रह चुका हो यह विद्या बतानी चाहिए।

इसी से मैं भी पाठक को परिलेख खीचने की विद्या नही बता रहा हूँ!

प्रोच्यते लिप्तिका भानां स्वभोगोऽथ दशाहत. ।
भवन्त्यतीतधिष्ण्याना भोगलिप्तायुता ध्रुवा ॥१॥

अर्थ—(अश्विनी आदि) तारों के जो भोग आगे बताये गये है उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रो की भोग-कलाओ में जोडने से जो आता है वही उन तारो के ध्रुवक[1] है।

यहाँ कला के लिए 'लिप्तिका' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो प्राचीन सस्कृत शब्द नही है, ग्रीक λεπτου (लप्टन) से लिया गया जान पडता है।

ऊपर के आदेश को समझने के लिए ध्यान देना चाहिए कि रविमार्ग को सत्ताइस बराबर भागो में बाँटा जाता था और प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा जाता था। प्रत्येक भाग का नाम भी था और वही नाम उस तारका-पुज (तारो के छोटे समूह) का भी था जो उस भाग में पडता था। प्रत्येक तारका-पुंज में से कोई एक प्रमुख तारा चुन लिया जाता था जो उस नक्षत्र का योग-तारा कहलाता था। अवश्य ही, योग-तारा नक्षत्र (रविमार्ग के सत्ताइसवें भाग) के ठीक आरभ पर नही पडता था। सूर्य-सिद्धात में यह बताया गया है कि योग-तारा नक्षत्र के आदि बिंदु से कितनीदूरी पर है। दूरी को कलाओ में बताने के बदले दस कलाओ की एकाई लेकर बताया गया है जिसमें बडी सख्याओ का प्रयोग न करना पडे। इन सख्याओ से योग-तारों के ध्रुवक ज्ञात होते है, आगे चलकर उनके विक्षेप भी बताये गये है। फिर कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तारो के भी ध्रुवक और विक्षेप बताये गये है।

सूर्य-सिद्धात का काल

एक बात सूर्य-सिद्धात से पता नही चलता कि सूर्य-सिद्धात के समय इन योग तारो के सापेक्ष, वसत विपुव कहाँ था। परतु इन योग-तारो की स्थितियो से अश्विनी नक्षत्र के आदि विंदु का पता लग जाता है। प्रत्येक तारे से अलग-अलग गणना करने पर परिणाम भिन्न-भिन्न मिलते है, परतु उनका औसत लिया जा सकता है और औसत मान को सच्चा समझा जा सकता है। अब यदि हम यह कल्पना करें कि अश्विनी का आदि विंदु सूर्य-सिद्धात के समय ठीक वसत विपुव पर था, तो हम सूर्य-सिद्धात का समय ज्ञात कर सकते है, क्योंकि वसत विपुव की वर्तमान स्थिति ज्ञात है और उसकी वार्षिक गति भी ज्ञात है।

[1] ध्रुवक को ध्रुव भी कहते थे, श्लोक में ध्रुव ही है, परतु भ्रम से बचने के लिए सदा ध्रुवक शब्द का प्रयोग ही अधिक अच्छा है।

डाक्टर मेघनाथ साहा[1] ने अपने आचार्य श्री प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की तरह योग-तारो को, उनके सूर्य-सिद्धात वाले और वर्तमान भोगाशो के अतर के न्यूनाधिक होने के अनुसार तीन समूहों में बाँटा है और उनका विश्वास है कि एक समूह के योग-तारों की नापें उस समय की हैं जब सूर्य-सिद्धात प्रथम बार रचा गया, दूसरे समूह के योग-तारो की नापे उस समय की है जब प्रथम बार उसमें सशोधन किया गया और तीसरे समूह की नापें उस समय की है जब उसमें अतिम बार सशोधन किया गया। परतु सूर्य-सिद्धात वाले और वर्तमान भोगाशो के अतर अपने औसत से निम्न प्रकार विभिन्न है[2]

+२° १६′	+०° ३७′	—०° ३३′
+२ १२	+० २५	—१ १
+१ ४०	+० २१	—१ १०
+१ ३३	+० १६	—१ २०
+१ २०	+० ९	—१ २७
+१ १८	+० ६	—१ ४३
+० ५८	+० ०	—२ ७
+० ५६	—० ५	—२ २०
+० ३८	—० ३१	—२ ३२

इन त्रुटियो के देखने से ऐसा नही जान पडता कि विना कृत्रिमता लाये उनको तीन समूहो मे पृथक किया जा सकता है, त्रुटियो को मान के क्रम में रखने पर वे लगातार (धीरे-धीरे) बढती हैं। सभवत सूर्य-सिद्धात के रचयिता के नापने की रीति इतनी स्थूल थी कि ये त्रुटियाँ अपने-आप हो गयी।

साथ की सारणी मे सूर्य-सिद्धात के अनुसार योग-तारो के निर्देशाक दिये गये है और उनकी तुलना आधुनिक मानो से की गयी है[1]।

इन आँकडो से सूर्य-सिद्धात का औसत काल लगभग ५०० ई० आता है।

[1] देखें: रिपोर्ट ऑव दि कैलेंडर रिफॉर्म कमिटी, भारत सरकार; (प्रकाशक, काउसिल ऑव सायंटिफिक ऐंड इडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली) १९५५, पृष्ठ २६३।

[2] इनमें चार योग-तारो को सम्मिलित नहीं किया गया है, क्योंकि उनकी पहचान ठीक से नहीं हो पायी है, और अतर बहुत है। अन्य तारो के लिए अतर, नक्षत्रों के क्रम में नहीं, मान के क्रम में यहाँ दिखाये गये है।

[1] देखें: पूर्वोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ २६४।

सारणी—सूर्य-सिद्धांत के नक्षत्र

क्रम गन्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० में भोगांश भो	१९५० में शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगांश भो. (सूर्य-सि० से परिगणित)	शर श. (सूर्य०सि० से परिगणित)	भो—भो.	श—श.
१	अश्विनी	β मेष	२ ७२	३३°१६′	+ ८°२९′	८° ०′	+१०° ०′	१२° ०′	+ ९° १०′	+२१°१६′	—०° ४१′
२	भरणी	४१ मेष	३ ६८	४७ ३०	+१० २७	२० ०	+१२ ०	२४ ३७	+११ ५	२२ ५३	—० ३८
	,,	३५ मेष	४ ५८	४६ १४	+११ १९	२० ०	+१२ ०	२४ ३७	+११ ५	२१ ३७	+० १४
३	कृत्तिका	η वृष	२ ९६	५९ १८	+ ४ ३	३७ ३०	+ ५ ०	३९ ८	+ ४ ४३	२० १०	—० ४०
४	रोहिणी	α वृष	१ ०६	६९ ५	— ५ २८	४९ ३०	— ५ ०	४८ ८	— ४ ४९	२० ५७	—० ३९
५	मृगशिरा	λ वृष	३ ७०	८३ १	—१३ २३	६३ ०	—१० ०	६१ २	— ९ ४९	२१ ५९	—३ ३४
६	आर्द्रा	α मृग	० ६†	८८ ३	—१६ २	६७ २०	— ९ ०	६५ ४९	— ८ ५२	२२ १४	—७ १०
७	पुनर्वसु	β मिथुन	१ २१	११२ ३२	+ ६ ४१	९३ ०	+ ६ ०	९२ ५२	+ ६ ०	१९ ४०	+० ४१
८	पुष्य	δ कर्क	४ १७	१२८ १	+ ० ५	१०६ ०	० ०	१०६ ०	० ०	२२ १	+० ५
९	आश्लेषा	α कर्क	४ २७	१३२ ५७	— ५ ५	१०९ ०	— ७ ०	११० ०	— ६ ५६	२२ ५७	+१ ५१
	,,	ε वासुकी	३ ४८	१३१ ३९	—११ ६	१०९ ०	— ७ ०	११० ०	— ६ ५६	२१ ३९	—४ १०
१०	मघा	α सिंह	१ ३४	१४९ ८	+ ० २८	१२९ ०	० ०	१२९ ०	० ०	२० ८	+० २८

क्रम संख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० में भोगांश भो	१९५० में शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगांश भो. (सू०-सि० से परिगणित)	शर श. (सू०-सि० से परिगणित)	भो—भो.	श—श.
११	पूर्वा फाल्गुनी	δ सिंह	२·५८	१६०°३७′	+१४°२०′	१४४° ०′	+१२° ०′	१३९° ५६′	+११° १८′	२०°४१′	+३° २′
१२	उ० फाल्गुनी	β सिंह	२·२३	१७० ५५	+१२ १६	१५५ ०	+१३ ०	१५० ८	+१२ ४		+० १२
१३	हस्त	δ कर्क	३·११	१९२ ४५	—१२ ११	१७० ०	—११ ०	१७४ २४	—१० ६	+१८ २१	—२ ५
१४	चित्रा	α कन्या	१·२१	२०३ ९	— २ ३	१८० ०	— २ ०	१८० ४८	— १ ५०	२२ २१	—० १३
१५	स्वाती	α भूतप	०·२४	२०३ ३२	+३० ४६	१९९ ०	+३७ ०	१८२ ५६	+३३ ४७	२० ३६	—३ १
१६	विशाखा*	α तुला	२·९०	२२४ २३	+ ० २०	२१३ ०	— १ ३०	२१३ ३१	— १ २४	१० ५२	+१ ४४
	विशाखा*	ι तुला	४·६६	२३० १८	— १ ५१	२१३ ०	— १ ३०	२१३ ३१	— १ २४	१६ ४७	—० २७
१७	अनुराधा*	δ वृश्चिक	२·५४	२४१ ५२	— १ ५९	२२४ ०	— ३ ०	२२४ ५४	— २ ५२	१६ ५८	+० ५३
१८	ज्येष्ठा	α वृश्चिक	१·२२	२४९ ४	— ४ ३४	२२९ ०	— ४ ०	२३० ६	— ३ ५१	१८ ५८	—० ४३
१९	मूल	λ वृश्चिक	१·७१	२६३ ५३	—१३ ४७	२४१ ०	— ९ ०	२४२ ५३	— ८ ४८	२१ ०	—४ ५९
२०	पूर्वाषाढा	δ धनु	२·८४	२७३ ५३	— ६ २८	२५४ ०	— ५ ३०	२५४ ३९	— ५ २८	१९ १४	—१ ०
२१	उत्तराषाढा	σ धनु	२·१४	२८१ ४१	— ३ २७	२६० ०	— ५ ०	२६० २३	— ४ ५९	२१ १८	+१ ३२

क्रम संख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० में भोगांश भो	१९५० में शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगांश भो॰ (सू०-सि०से परिगणित)	शर श॰ (सू०-सि० से परिगणित)	भो—भो॰	श—श॰
२२	श्रवण	α गरुड	० ८९	३०१° ४′	+२९°१८′	२८०° ०′	+३०° ०′	२८२°३०′	+२९°५४′	१८°३४′	— ०°३६′
२३	धनिष्ठा	β उलूपी	३ ७२	३१५ ३९	+३१ ५५	२९० ०	+३६ ०	२९६ ८	+३५ ३३	१९ ३१	— ३ ३८
२४	शतभिषज	λ कुंभ	३ ८४	३४० ५३	— ० २३	३२० ०	— ० ३०	३१९ ५१	— ० २८	२१ २	+ ० ५
२५	पूर्वा भाद्रपदा	α उच्चैःश्रवा	२ ५७	३५२ ४७	+१९ २४	३२६ ०	+२४ ०	३३४ ३८	+२२ २९	१८ ९	— ३ ५
२६	उत्तराभाद्रपदा	γ उच्चैःश्रवा	२ ८७	८ २८	+१२ ३६	३३७ ०	+२६ ०	३४७ १९	+२४ ०	२१ ९	—११ २४
	उ०भाद्रपदा*	α देवयानी	२ १५	१३ ३७	+२५ ४१	३३७ ०	+२६ ०	३४७ १९	+२४ ०	२६ १८	+ १ ४१
२७	रेवती	ζ मीन	५ ५७	१९ ११	— ० १३	३५९ ५०	० ०	३५९ ५०	० ०	+१९ २१	— ० १३

* पहचान सविग्ध ।

† प्रकाश घटता-बढ़ता है ।

अन्य अध्याय

सूर्य-सिद्धात के नवे अध्याय का नाम है उदयास्ताधिकार। इसमें बताया गया है कि सूर्य के निकट जाने के कारण ग्रह कब अस्त और कब उदित होते है और इसकी गणना कैसे की जाय। यह भी बताया गया है कि अभिजित, ब्रह्महृदय, स्वाती श्रविष्ठा और उत्तरभाद्रपद कभी अस्त नही होते क्योकि वे बहुत उत्तर मे है। चद्रमा का उदय और अस्त आगामी अध्याय मे बताया गया है जिसका नाम है शृगोन्नत्यधिकार। उसमें बताया गया है कि जब चद्रमा सूर्य से १२ अश से कम दूरी पर रहता है तो अदृश्य रहता है। यह भी बताया गया है कि चद्रमा के शृगो (नोको) की स्थितियो की गणना किस प्रकार की जा सकती है। ग्यारहवे अध्याय का नाम पाताधिकार है। पात शब्द प्राय विपत्ति के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। जब सूर्य और चद्रमा की क्रातियाँ बराबर होती है तब विशेष विपत्ति की आशका समझ कर उसे व्यतीपात (बडी विपत्ति) कहा गया है। यह भी बताया गया है कि ऐसे अवसरो की गणना कैसे करनी चाहिए, और इस अध्याय के विषयो मे से इतना ही गणित ज्योतिष से सबध रखता है।

आगामी अध्याय भूगोलाध्याय है। आरभ के श्लोको मे वे प्रश्न है जिनका उत्तर पुस्तक के शेष अध्यायो में है। इन श्लोको का अर्थ नीचे दिया जाता है। एक बात विचित्र है कि इस अध्याय को अन्य अध्यायो की तरह 'अधिकार' न कह कर 'अध्याय' ही कहा गया है और आगामी दो अध्यायों को भी अध्याय कहा गया है

(१) इसके उपरात मयासुर ने सूर्य के अश से उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड कर प्रणाम करके और बडी भक्ति से पूजा करके यह पूछा (२) हे भगवान, इस पृथ्वी का परिणाम क्या है? इसका आकार कैसा है और यह किसके आधार पर है? इसके कितने विभाग है और इसमें सात पातालों की भूमि कैसे स्थित है? (३) सूर्य अहोरात्र की व्यवस्था कैसे करते है और भुवनो को प्रकाशित करते हुए पृथ्वी के चारो ओर कैसे घूमते है? (४) देवताओ और असुरो के दिन-रात एक दूसरे के विपरीत क्यो होते है और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है? (५) पितरो का दिन-रात एक मास का और मनुष्यो का ६० घडियो का क्यो होता है? सब जगह एक ही प्रकार के दिन-रात क्यो नही होते? (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घटा) के स्वामी समान क्यो नहीं होते? ग्रहो के साथ नक्षत्र-मडल कैसे घूमता है और इनका आधार क्या है? (७) ग्रहो और नक्षत्रो की कक्षाएँ पृथ्वी से ऊपर कितनी-कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर

क्रम संख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० में भोगांश भो	१९५० में शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगांश भो. (सू०-सि०से परिगणित)	शर श. (सू०-सि० से परिगणित)	भो—भो.	श—श.
२२	श्रवण	α गरुड	० ८९	३०१° ४′	+२९°१८′	२८०° ०′	+३०° ०′	२८२°३०′	+२९°५४′	१८°३४′	— ०°३६′
२३	घनिष्ठा	β उलूपी	३ ७२	३१५ ३९	+३१ ५५	२९० ०	+३६ ०	२९६ ८	+३५ ३३	१९ ३१	— ३ ३८
२४	शतभिषज	λ कुंभ	३ ८४	३४० ५३	— ० २३	३२० ०	— ० ३०	३१९ ५१	— ० २८	२१ २	+ ० ५
२५	पूर्वा भाद्रपदा	α उच्चैःश्रवा	२ ५७	३५२ ४७	+१९ २४	३२६ ०	+२४ ०	३३४ ३८	+२२ २९	१८ ९	— ३ ५
२६	उत्तराभाद्रपदा	γ उच्चैःश्रवा	२ ८७	८ २८	+१२ ३६	३३७ ०	+२६ ०	३४७ १९	+२४ ०	२१ ९	—११ २४
	उ०भाद्रपदा*	α देवयानी	२ १५	१३ ३७	+२५ ४१	३३७ ०	+२६ ०	३४७ १९	+२४ ०	२६ १८	+ १ ४१
२७	रेवती	ζ मीन	५ ५७	१९ ११	— ० १३	३५९५०	० ०	३५९ ५०	० ०	+१९ २१	— ० १३

* पहचान सदिग्ध ।

† प्रकाश घटता-बढ़ता है ।

अन्य अध्याय

सूर्य-सिद्धात के नवे अध्याय का नाम है उदयास्ताधिकार। इसमे बताया गया है कि सूर्य के निकट जाने के कारण ग्रह कब अस्त और कब उदित होते है और इसकी गणना कैसे की जाय। यह भी बताया गया है कि अभिजित, ब्रह्महृदय, स्वाती श्रविष्ठा और उत्तरभाद्रपद कभी अस्त नही होते क्योकि वे बहुत उत्तर में है। चद्रमा का उदय और अस्त आगामी अध्याय में बताया गया है जिसका नाम है शृगोन्नत्यधिकार। उसमें बताया गया है कि जब चद्रमा सूर्य से १२ अश से कम दूरी पर रहता है तो अदृश्य रहता है। यह भी बताया गया है कि चद्रमा के शृगो (नोको) की स्थितियो की गणना किस प्रकार की जा सकती है। ग्यारहवे अध्याय का नाम पाताधिकार है। पात शब्द प्राय विपत्ति के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। जब सूर्य और चद्रमा की क्रातियाँ बराबर होती है तब विशेष विपत्ति की आशका समझ कर उसे व्यतीपात (बडी विपत्ति) कहा गया है। यह भी बताया गया है कि ऐसे अवसरो की गणना कैसे करनी चाहिए, और इस अध्याय के विषयो मे से इतना ही गणित ज्योतिष से सबध रखता है।

आगामी अध्याय भूगोलाध्याय है। आरभ के श्लोको में वे प्रश्न है जिनका उत्तर पुस्तक के शेष अध्यायो में है। इन श्लोको का अर्थ नीचे दिया जाता है। एक बात विचित्र है कि इस अध्याय को अन्य अध्यायो की तरह 'अधिकार' न कह कर 'अध्याय' ही कहा गया है और आगामी दो अध्यायो को भी अध्याय कहा गया है

(१) इसके उपरात मयासुर ने सूर्य के अश से उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड कर प्रणाम करके और बडी भक्ति से पूजा करके यह पूछा (२) हे भगवान, इस पृथ्वी का परिणाम क्या है? इसका आकार कैसा है और यह किसके आधार पर है? इसके कितने विभाग है और इसमें सात पातालो की भूमि कैसे स्थित है? (३) सूर्य अहोरात्र की व्यवस्था कैसे करते है और भुवनो को प्रकाशित करते हुए पृथ्वी के चारो ओर कैसे घूमते है? (४) देवताओ और असुरो के दिन-रात एक दूसरे के विपरीत क्यो होते है और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है? (५) पितरो का दिन-रात एक मास का और मनुष्यो का ६० घडियो का क्यो होता है? सब जगह एक ही प्रकार के दिन-रात क्यो नही होते? (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घटा) के स्वामी समान क्यो नही होते? ग्रहो के साथ नक्षत्र-मडल कैसे घूमता है और इसका आधार क्या है? (७) ग्रहो और नक्षत्रो की कक्षाएँ पृथ्वी से ऊपर कितनी-कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर

पर है ? इनके मान क्या है और ये किस क्रम से स्थित है ? (८) ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें बहुत तीव्र क्यो होती है और हेमन्त ऋतु में वैसी क्यो नही होती ? ये किरणे कितनी दूर तक जाती है, सौर, चद्र आदि मान कितने है और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है ? (९) हे भूतभावन भगवन, मेरी इन शकाओ को दूर कीजिए, क्योकि आप सर्वज्ञ है, इसलिए आप के सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शकाओ को नही दूर कर सकता। (१०) भक्ति से कहे हुए मयासुर के इन वचनो को सुनकर सूर्याश पुरुष ने उससे फिर पहले के रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा। (११) एकाग्रचित्त होकर यह अध्यात्म नामक तत्त्व सुनो जिसे मै कहता हूँ, क्योकि भक्तो के लिए मे कोई वस्तु अदेय नही समझता।

इन प्रश्नो का उत्तर तो दिया ही गया है, ऊपर से पहले सृष्टि की कथा भी बतायी गयी है। यह कथा "वेदात, साख्य, श्रीमद्भागवत आदि में बताये गये सृष्टि-क्रम का मिश्रण है"[1]। मयासुर के प्रश्नो का जो उत्तर दिया गया है वह स्पष्ट और शुद्ध है। उनका समझना विशेष कठिन भी नही है, परतु स्थानाभाव से यहाँ नही दिया जा सकता। केवल एक-दो श्लोक यहाँ उदाहरण-स्वरूप दे देना पर्याप्त होगा

> अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम् ।
> भद्राश्वकेतुमालस्था लकासिद्धपुराश्रिता ॥५२॥
> सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम् ।
> मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाप्यध ॥५३॥

अर्थ—वे भी जो एक ही व्यास पर रहते है एक दूसरे के बारे में सोचते हैं कि दूसरा हमारे नीचे है, जैसे भद्राश्व के लोग केतुमाल वालो को, और लका के लोग सिद्धपुर वालो को, और इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने ही स्थान को ऊपर स्थित मानते है, परतु पृथ्वी तो अतरिक्ष में एक गोला है, इसलिए उसका ऊपर कहाँ है और नीचे कहाँ है ?

ज्योतिषोपनिषदध्याय

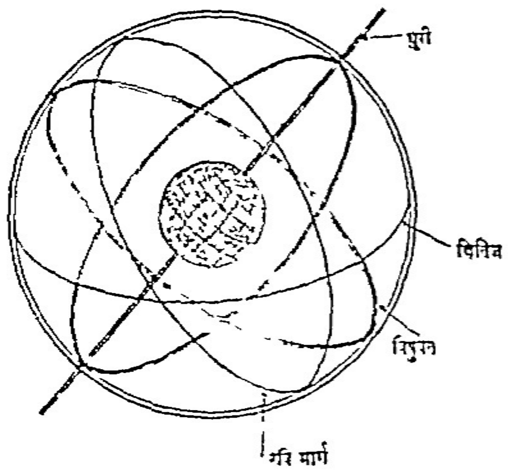
सूर्य-सिद्धात के तेरहवें अध्याय का नाम ज्योतिषोपनिषदध्याय है। इसमें बताया गया है कि ज्यौतिष यत्रों को कैसे बनाना चाहिए। इन यत्रो के बारे में इतना कम ब्योरा है कि ठीक पता नही चलता कि रचयिता के काल में भी ऐसे यत्र बन पाये

[1] विज्ञान-भाष्य, पृष्ठ १०४१।

थे या नही। चूंकि विषय महत्त्वपूर्ण और साथ ही रोचक है, इसलिए कुछ चुने हुए श्लोकों का अर्थ नीचे दिया जाता है :

"लकड़ी का अभीष्ट नाप का एक गोला बनाकर इसमें छेद करके एक डंडा कस देना चाहिए जो उस काठ के गोले के केंद्र से होकर जाय और दोनों ओर निकला रहे और धुरी का काम करे। इसी दंड में दो आधार-वृत्त बाँधो, जिनके बीच में विषुवत-वृत्त हो। इन तीनों वृत्तों में से प्रत्येक को ३६० अंशों में बाँट दो।"

इसके बाद अनेक वृत्त बाँधने का आदेश है। इन वृत्तों से ज्योतिष की बातें समझने में सहायता मिल सकती है, वेध में नही। वस्तुत ऊपर बताये गये यंत्र से वेध किया ही नही जा सकता, क्योंकि बीच में काठ के गोले के कारण (जो पृथ्वी को निरूपित करता है) वहाँ न तो आँख लगायी जा सकती है, और न किसी व्यास के अंत में आँख लगा कर व्यास की सीध में कोई आकाशीय पिंड देखा जा सकता है। फिर इतने वृत्त इस यंत्र में बाँधने के लिए बताये गये हैं कि पूर्णतया सच्चा यंत्र कभी बन ही न पाता रहा होगा। वृत्त किस पदार्थ का बने यह यहाँ नही बताया गया है, परंतु अन्य पुस्तकों में बाँस की तीली के प्रयोग के लिए आदेश है।



गोल बाँधने की रीति।

"काठ के गोले पर अपने स्थान को सबसे ऊँचा करो, फिर खगोल के मध्य में क्षितिज वृत्त बाँधो, नीचे वाले आधे को कपड़े से ढक दो (परंतु यह कपड़ा खगोल को छूने न पाये), फिर जल-प्रवाह द्वारा ऐसा प्रबंध करो कि (यंत्र समान वेग से बराबर घूमता रह कर) नाक्षत्र समय सूचित करे[1], अथवा इस यंत्र को पारे के संयोग से ऐसा बनाओ कि यह अपने-आप घूमे। इसको गुप्त रखना चाहिए, स्पष्ट बता देने से सबको भेद ज्ञात हो जायगा।"[2]

[1] केवल बाहरी ढाँचे को घुमाना चाहिए, भीतरी काठ के गोले को नहीं।

[2] आरंभ की पंक्तियाँ शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद नहीं है; लेखक का अभिप्राय क्या रहा होगा यह यहाँ बताया गया है।

इसे पढने से सदेह होने लगता है कि यत्र का बनाना सिद्धातकार स्वय नही जानता था। यदि यत्र पारे से चल सकता तो पारे से चलने वाली घडियाँ भी बन सकती, परन्तु समय नापने के लिए सरल नाडिका यत्र का ही वर्णन किया गया है, जो आगे दिया गया है।

"शकु, यष्टि, धनु और चक्र नामक अनेक प्रकार के छाया-यत्रो के द्वारा चतुर और परिश्रमी मनुष्य गुरू के उपदेश से काल का ज्ञान प्राप्त करते हैं। कपाल आदि जल यत्रो से, और मयूर, नर तथा वानर यत्रो से, जिनके पेट में बालू रहती है और जिनमें सूत्र (तागा) रहता है, समय का ठीक ज्ञान किया जा सकता है। पारे की चक्की, पानी, तागा, रस्सी, तेल और पानी, तथा पारा और बालू का इनमें प्रयोग होता है, परन्तु यह भी कठिन है।"

"ताँबे का कटोरा, जिसके पेंदे मे छेद हो और जो निर्मल जल के कुड में रखने से दिन-रात मे ६० बार डूबे, शुद्ध कपाल यत्र होता है"।

अतिम श्लोक यह है

ग्रहनक्षत्रचरित ज्ञात्वा गोल च तत्वत ।
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान् नर ॥ २५ ॥

अर्थ—ग्रह और नक्षत्रो की चाल तथा गोल गणित के तत्त्व को जानने वाला मनुष्य ग्रह लोक को प्राप्त होता है और जन्मातर मे आत्म-ज्ञानी होता है।

अतिम अध्याय

सूर्य-सिद्धात के अतिम अध्याय का नाम है मानाध्याय। इसमें समय की विविध एकाइयो और विविध प्रकार के समयो की (उदाहरणत, सौर, सावन, चाद्र और नक्षत्र समयो की) चर्चा है। अयन, सक्राति, उत्तरायण, दक्षिणायन, ऋतु, तिथि, पक्ष, महीनो के नाम, आदि का भी विवेचन है। बताया गया है कि सावन दिन सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को कहते है।

अतिम दो श्लोको मे बताया गया है कि किस प्रकार ऋषियो ने मय से ज्योतिष विद्या सीखी।

रचना-काल

सूर्य-सिद्धात मे ठीक ५०० श्लोक है और पाठ वह है जिसे रगनाथ ने स्थिर किया और जिसपर उन्होंने भाष्य लिखा। कई स्थानो में नवीन पक्तियाँ जोडे जाने के

चिह्न है और सभव है कि कही-कही कुछ पक्तियाँ छोड भी दी गयी हो। किसी को इसमे सदेह नही है कि प्रचलित सूर्य-सिद्धात प्राचीनतम सूर्य-सिद्धात से कुछ भिन्न है। पचसिद्धातिका और वर्तमान सूर्य-सिद्धात के स्थिराको की तुलना ही इसके लिए पर्याप्त है। रगनाथ का समय १६०३ ई० है और उसके बाद सूर्य-सिद्धात मे क्षेपक मिलाना असभव हो गया। प्रोफेसर प्रबोधचद्र सेनगुप्त[1] का मत है कि सूर्य-सिद्धात मे कई विभिन्न समयो की रचनाएँ मिली हुई है। प्राचीनतम लगभग ४०० ई० की है और नूतनतम सभवत ग्यारहवी शताब्दी के अत की। उनका कहना है कि निम्न तीन अवस्थाएँ स्पष्ट रूप से दिखायी पडती है

(१) वराहमिहिर के पहले की पुस्तक,

(२) वराहमिहिर का सस्करण, जिसमें मद-परिधि का सिद्धात भी है,

(३) वराहमिहिर के बाद वाले परिवर्तन और क्षेपक।

उनके अनुसार इन अवस्थाओ के प्रमाण के लिए स्थिराको की तुलना पर्याप्त है। वराहमिहिर के बताये सूर्य-सिद्धात के स्थिराक वे ही है जो ब्रह्मगुप्त के खड-खाद्यक में है, परतु आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे महायुगीय भगणो में निम्नलिखित परिवर्तन कर दिये गये है

मगल, +८ भगण, शनि, +४ भगण, चाद्र उच्च, −१६ भगण, शुक्र, −१२ भगण, बुध, +६० भगण, चाद्र पात +१२ भगण।

इससे स्पष्ट है कि वराहमिहिर के बाद सूर्य-सिद्धात मे परिवर्तन हुए। आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे उच्चो के भोगाश भी ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अधिक निकट है, यद्यपि प्राचीन सूर्य-सिद्धात में ये स्थिराक खडखाद्यक मे ठीक-ठीक मिलते है। इसलिए सेनगुप्त का विचार है कि (१) वराहमिहिर के पहले एक सूर्य-सिद्धात था जिसको वराह ने बदल कर खडखाद्यक के अनुसार कर दिया और (२) वराह के अको को बदल कर पीछे किसी ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अनुसार कर दिया, (३) स्थिराक ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के स्थिराको के निकट अवश्य है, परन्तु ठीक-ठीक वही नही है, इसलिए किसी ने उनमे फिर सूक्ष्म सशोधन कर दिया। बेंटली का कहना है कि सूर्य-सिद्धात के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात वाले स्थिराको मे सोलहवी शताब्दी ई० मे सशोधन (बीज-सस्कार) किया गया, क्योकि आधुनिक सूर्य-सिद्धात और आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार गणना करने पर चद्रमा मगल आदि की स्थितियो की त्रुटियाँ

[1] सूर्य-सिद्धांत के बरजेस कृत अनुवाद में प्रबोधचंद्र सेनगुप्त की भूमिका (कलकत्ता विश्वविद्यालय), १९५३।

लगभग १५४० में न्यूनतन निकलती है। दीक्षित का मत है कि ये सस्कार मकरद-सारणी के रचयिता द्वारा किये गये होगे[1]।

वरजेस का मत

वरजेस और सेनगुप्त दोनो का मत है कि सूर्य-सिद्धात के द्वितीय अध्याय के प्रारभिक श्लोक, जो यह बताते है कि रविमार्ग में शीघ्रोच्च, मदोच्च और पातो पर अदृश्य प्राणियाँ है जो ग्रहो के सम वेग को विचलित कर देते है, पुस्तक के प्राचीनतम सस्करण के अवशेष है। पीछे के सिद्धात में तो यह था कि ग्रह मद-परिधि में चलता है और इस मद-परिधि का केद्र प्रधान वृत्त पर चलता है। यद्यपि यह तर्क बहुत दृढ नही है, क्योकि द्वितीय सिद्धात तो केवल गणना की सुगमता के लिए कल्पना-मात्र है और उसका प्रथम सिद्धात के प्रतिकूल माना जाना आवश्यक नही है, तो भी बात ठीक हो सकती है।

सेनगुप्त ने दिखाया है कि आधुनिक सूर्य-सिद्धात की कई एक रीतियाँ प्रथम आर्यभट या ब्रह्मगुप्त की रीतियो से मिलती है। इसलिए उनकी धारणा है कि, सूर्य-सिद्धात में परिवर्तन ब्रह्मगुप्त के बाद तक होते रहे। चूँकि उन्होने यह सिद्ध करने की चेष्टा ही नही की है कि सूर्य-सिद्धात में इन रीतियो का पहले से रहना और दूसरो का उनकी नकल करना असभव है, उनकी बात विशेष जँचती नही।

फिर, सूर्य-सिद्धात के अध्याय ८ में दिये गये योग-तारो के भोगाशो की तुलना आधुनिक मानो से तथा ब्रह्मगुप्त के मानो से करके सेनगुप्त ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि अयन के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ तारो के भोगाश लगभग ४०० ई० के नये है। सोलह भोगाश ब्रह्मगुप्त के मानो से बहुत मिलते-जुलते है, सेनगुप्त का कहना है कि वे ब्राह्मस्फुट-सिद्धात से लिये गये होगे, जिसका समय ६२८ ई० है, और पाँच तारो के भोगाश बाद के है, ये लगभग ७२० ई० के होगे। इस प्रकार सेनगुप्त इस परिणाम पर पहुँचे है कि सूर्य-सिद्धात का मूल पाठ लगभग सन ४०० ई० में लिखा गया और उसमें ११०० ई० तक परिवर्तन होते रहे।

सेनगुप्त का कहना है कि सूर्य-सिद्धात ४०० ई० के बहुत पहले न लिखा गया होगा, क्योकि कौटिल्य अर्थ-शास्त्र (लगभग ३०० ई० पू०), सूर्य-प्रज्ञप्ति (लगभग २०० ई० पू०) और पितामह-सिद्धात (जिसका साराश पचसिद्धातिका में है और जिसकी गणना का आरभिक वर्ष ८० ई० है), इन सबमें बहुत स्थूल ज्योतिष है।

[1] दीक्षित भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ १८४।

इस प्रकार केवल १०० ई० से ४०० ई० का समय बच रहता है और इसी में बाबुल और यूनान (ग्रीस) से अधिक सूक्ष्म ज्योतिष का ज्ञान जो कुछ भी आया हो आया होगा।

जैसा हम देख चुके हैं (पृष्ठ १४३), सूर्य-सिद्धात में अयन की चर्चा है, परतु आर्य-भटीय में, और ब्राह्मस्फुट-सिद्धात (६२८ ई०) में भी इसकी चर्चा नही है। सूर्य-सिद्धात और आर्यभटीय में इतनी समानता है कि मुनीश्वर (१६४६ ई०) का मत था कि प्रथम आर्यभट ही सूर्य-सिद्धात के भी रचयिता थे। परतु कुछ ऐसी विभिन्नताएँ भी है कि इसे ठीक मानना उचित नही जान पड़ता।

अलबीरूनी का मत

सूर्य-सिद्धात के बनने के कई सौ वर्ष बाद अलबीरूनी ने भारतवर्ष पर अपनी पुस्तक में लिखा था[1] कि सूर्य-सिद्धात के रचयिता लाटदेव थे, परतु यह बात विश्वसनीय नही जान पडती। वराहमिहिर के अनुसार रोमक और पौलिश सिद्धातो के रचयिता लाटदेव थे। वे प्रथम आर्यभट के शिष्य थे। यदि वराहमिहिर के समय मे लोग यह जानते होते कि लाटदेव ने ही सूर्य-सिद्धात भी लिखा है तो निस्सदेह वराहमिहिर इसे पचसिद्धातिका में लिखते। फिर, अधिक सभावना यही थी कि लाटदेव गणना के आरभिक वर्ष के लिए अपने ही समय के आस-पास का कोई वर्ष चुनते। इसके अतिरिक्त, लाटदेव यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना आरभ करते थे और आर्यभट अर्धरात्रि अथवा मध्याह्न से (उन्होने दोनो पद्धतियों के अनुसार गणना बतायी है)। सूर्य-सिद्धात में उज्जयनी की अर्धरात्रि से अहर्गण की गणना का आरभ होता है। यद्यपि इन सब बातो के होते हुए भी यह सभव है कि लाटदेव ही ने सूर्य-सिद्धात को एक गुमनामी पुस्तक के रूप में अतुल पुण्य अर्जन करने के लिए लिखी हो, तो भी इसकी सभावना कम ही दिखायी पडती है।

मुझे तो ऐसा जान पडता है कि आरभ से ही सूर्य-सिद्धात ऐसा उत्तम ग्रथ था कि उसी का उपयोग अधिक होने लगा। जैसे-जैसे वेध से पता चला कि आँख से देखी बातो और गणना में अतर पडता है तैसे-तैसे ज्योतिषियो ने उसके अको को थोडा-बहुत बदल कर उसे अधिक उपयोगी और शुद्ध बना लिया, परतु पुस्तक का परित्याग कभी नही किया। आर्यभटीय, ब्राह्मस्फुट-सिद्धात, आदि ग्रथ व्यक्ति

[1] अलबीरूनी का 'भारतवर्ष', साचौ अनुवादित, १।१५३।

विशेष द्वारा विरचित ग्रथ थे, नामो से ही यह बात टपकती थी। सूर्य-सिद्धात भगवान सूर्य की कही पुस्तक मानी जाती थी, सभव है इसका भी कुछ प्रभाव पड़ा हो।

आगामी अध्याय मे इस पर विचार किया जायगा कि कहाँ तक ज्योतिष का ज्ञान ग्रीस से भारतवर्ष में आया।

अध्याय १२

भारतीय और यवन ज्योतिष

बरजेस का मत

कुछ पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि भारत मे ज्योतिष का सब ज्ञान विदेश से आया, अनेक भारतीयो का विश्वास है कि ज्योतिष का ज्ञान यही से विदेश गया। प्राचीन भारत ज्योतिष मे दूसरो का कहाँ तक ऋणी था इस विवादग्रस्त विषय पर स्वय विचार न करके श्री एबेनेज़र बरजेस के विवेचन को पाठको के सम्मुख रखना मै अधिक उत्तम समझता हूँ। ये विचार १८६० में उन्होने सूर्य-सिद्धात के अपने अँग्रेज़ी अनुवाद के साथ प्रकाशित किये थे। उनके विचार अब भी वैसे ही ठीक जान पडते है जैसे वे उस समय थे। उनका कहना है कि :

"प्रोफेसर व्हिटनी की ऐसी सम्मति जान पडती है कि हिंदुओ ने गणित और फलित ज्योतिष का ज्ञान प्राय कुल का कुल यवनो से प्राप्त किया—और जो कुछ उन्होने यवनो से नही पाया उन्होने दूसरो से पाया, जैसे अरब, खाल्दी और चीनी लोगो से। परतु मै समझता हूँ कि हिंदुओ को वे उतना यश नही दे रहे है जितना उनका अधिकार है और यवनो को वे उचित से अधिक यश दे रहे है। इस विचार के उपस्थित करने के साथ-साथ मै यह अवश्य मानता हूँ कि यवन लोगो ने पीछे, ज्योतिष-विज्ञान की उन्नति अधिक सफलता से की। हिंदू सिद्धातो में कुछ भी ऐसी वस्तु नही है जो टालमी की महान कृति सिनटैक्सिस के टक्कर की हो। तो भी, जितना प्रकाश मुझे अब मिला है उससे मुझे यह मानना आवश्यक है कि ज्योतिष की सरल बातो और सिद्धातो मे, जैसा हिंदुओ की पुस्तको में मिलता है, हिंदू मौलिक थे, और इस विज्ञान की उन्नति मे भी वे अधिकतर मौलिक ही रहे, और यवनो ने उनसे ज्ञान प्राप्त किया, या किसी ऐसे मध्यस्थ द्वारा उन्होने ज्ञान प्राप्त किया जिन्हें यह ज्ञान भारत से मिला था। यदि इस विचार मे परिवर्तन करना पडे तो मै यहाँ तक मान सकता हूँ कि यवन और हिंदुओ ने एक दूसरे से ज्ञान सभवत. न लिया हो और किसी

एक ही स्थान से दोनों ने ज्ञान प्राप्त किया हो। परंतु वर्तमान ज्ञान के आधार पर मैं इससे सहमत नहीं हो सकता कि हिंदू लोग, कुछ भी अधिक मात्रा में, अपने ज्योतिष के लिए यवनों के ऋणी हैं, अथवा यवन लोग ज्योतिष-विज्ञान के उन सरल तथ्यों और सिद्धांतों की मौलिकता के लिए सम्मान पाने के सच्चे अधिकारी हैं जो अन्य प्राचीन पद्धतियों में भी पाये जाते हैं, और जो इस प्रकार के हैं कि जान पड़ते हैं कि एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं और एक स्थान से दूसरे को गये हैं।

समानताएँ

"स्पष्टता के लिए, अच्छा होगा यदि मैं पूर्वोक्त भाँति के महत्त्वपूर्ण तथ्य
और सिद्धांतों में से कुछ को अधिक विशद रूप से बता दूँ। वे इस प्रक
हैं

"१ चंद्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताइस या अट्ठाइस नक्षत्रों
बाँटा जाना। थोड़ा हेर-फेर से ऐसा विभाजन हिंदुओं की, अरब वालों की, ब
चीन वालों की पद्धतियों में है।

"२ रवि की गति के लिए रविमार्ग का बारह राशियों में बाँटा जाना
प्रत्येक का नाम। इन नामों का अर्थ हिंदू और यवन दोनों पद्धतियों में एक
इन में ऐसी अभिन्नता है कि विभाजन-सिद्धांत और नामकरण एक ही मूल से
होने की कल्पना निस्संदेह ठीक है।

"३ हिंदू, यवन और अरब की फलित ज्योतिष पद्धतियों में समानत
कहीं-कहीं पूर्ण अभिन्नता से प्रबल धारणा होती है कि प्रारंभिक और सारभूत ब
ये पद्धतियाँ एक ही मूल से उत्पन्न हुई हैं।

"४ प्राचीन लोगों को जो पाँच ग्रह ज्ञात थे उनके नाम, और उनपर
के दिनों का नाम, एक होना।

"इन बातों के बारे में मुझे यह कहना है

"पहली बात तो यह है कि पूर्वोक्त में से किसी भी विषय के लि
आविष्कार करने का अधिकार हिंदुओं की अपेक्षा अन्य किसी देश के लोगों
दृढ़ नहीं है।

"दूसरी बात यह है कि पूर्वोक्त में से अधिकांश विषयों के लिए
का साक्ष्य, मेरी सम्मति में, स्पष्ट रूप से हिंदुओं के पक्ष में है, ब
लिए, जो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, मुझे तो साक्ष्य प्राय या पूर्णतया अ
प्राप्य है।

हिंदू मूल से उत्पन्न

"यहां व्योरे के लिए स्थान नही है और न किसी विषय पर व्योरा देना मेरा उद्देश्य है। परतु स्पष्टता के लिए, ऊपर के प्रत्येक विषय पर सक्षिप्त टिप्पणी देना आवश्यक जान पडता है।

"१ चद्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताइस या अट्ठाइस भागो मे विभाजन। हिंदुओं में इस विभाजन की असदिग्ध प्राचीनता, अपने पूर्ण विकसित रूप में भी, और साथ ही अन्य देश के लोगो में इस प्रकार के साक्ष्य का अभाव, निश्चित रूप से मुझे इस सम्मति के लिए प्रेरित करते है कि यह विभाजन विशुद्ध हिंदू मूल से उत्पन्न हुआ है। श्री वायो और दूसरे विद्वानो की सम्मति इसके विरुद्ध होते हुए भी मेरी यही सम्मति है।

"२. सूर्य की गति के लिए रविमार्ग का बारह भागो में विभाजन और उन भागो के नाम। यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस विभाजन का प्रयोग और राशियो के वर्तमान नाम भारत में उतने ही प्राचीन काल से प्रचलित है, जितने से वे किसी अन्य देश में, और इसके अतिरिक्त इस का भी साक्ष्य है—यह सच है कि यह साक्ष्य कम स्पष्ट और कम सतोषजनक है, तो भी इस प्रकार का है कि बहुत अधिक सभावना हो जाती है—कि अन्य देशो में इस विभाजन का लेश-मात्र भी जब नही पाया जाता, उसके शताब्दियो पहले यह भारतवर्ष में हिंदुओं को ज्ञात था।

"अपने विचारो के अशत. समर्थन में, और इस विचार के बलपूर्वक समर्थन में कि यदि पूर्वोक्त विभाजन भारत में नही उत्पन्न हुआ तो कम-से-कम कही पूरब में उत्पन्न हुआ, मैं इडेलर और लेप्सियस की सम्मति को उद्वृत करना चाहता हूँ, जैसा वह हबोल्ट की पुस्तक में दिया गया है (कॉसमॉस, हारपर का सस्करण, ३।१२०। टिप्पणी) 'इडेलर का विश्वास है कि पूरबी लोगो ने ही बारह राशियों का नाम रक्खा .'। हबोल्ट की सम्मति है कि यवनो को रविमार्ग के बारह विभाजन और उनके नाम खाल्दियो से मिले। मेरी सम्मति है कि अधिक साक्ष्य इस बात का है कि इनकी उत्पत्ति यदि हिंदुओ में न हुई तो कम-से-कम पूरब में हुई।

"३. मद-परिधियो का सिद्धात। इस सिद्धात के विकास में यवन और हिंदू पद्धतियो में जो अंतर है उससे इस कल्पना के लिए कि इन दो जातियो में से किसी एक को दूसरे से इस विषय मे सकेत मात्र से कुछ अधिक मिला, कोई स्थान नही रह जाता। और जहां तक इस विषय का सबध है यवनो ने हिंदुओ से ये

बातें सीधी इसे सत्य मानने के लिए भी उतना ही कारण है जितना उलटी बात मानने के लिए, परतु कुछ और कारण है, जो इस धारणा के अनुकूल है कि इस सिद्धात के मूल आविष्कारक हिंदू थे।

फलित ज्योतिष

"८ फलित ज्योतिष के बारे में, मेरी समझ में, इसके आविष्कार और अनुशीलन मे अधिक सम्मान नही है। हिंदू और यवन पद्धतियो में जो अभिन्नताएँ पायी जाती है वे इतनी अपूर्व है कि उनकी पृथक-पृथक उत्पत्ति की कल्पना असभव है। परन्तु मौलिक आविष्कार का सम्मान, यदि इसमें कोई सम्मान है भी तो, हिंदुओ और खाल्दियों में से किसी एक को मिलना चाहिए। आविष्कार और अनुशीलन की प्रथमता का साक्ष्य, कुल मिला कर, हिंदुओ के पक्ष में जान पडता है, तीन-चार अरबी या यवन शब्द जो हिंदू पद्धति में आ गये है, उनका निराकरण इस कल्पना से हो जाता है कि वे अपेक्षाकृत बहुत बाद मे लिये गये। परतु होरा शब्द के सबध में, जो यवन शब्द ωρα है, यवन हेरोडोटस का साक्ष्य यहाँ देना अनुचित न होगा (२।१०९) 'सूर्य-घडी और शकु, तथा दिन का बारह भागो में विभाजन यवनो ने बाबुल लोगो से पाया'। इस बात के लिए बहुत-सा साक्ष्य है कि अहोरात्र का चौबीस घंटा मे विभाजन, यदि भारत में नही तो पूरब में, यवन देश में प्रचलित होने के पहले ही से, प्रचलित था। फिर, हिंदू ज्योतिष ग्रथो में पाये जाने वाले उन शब्दो को जिन्हें यवन बताया जाता है, मै यह कहना चाहता हूँ कि पूर्ण औचित्य के साथ हम उन सहगामक शब्दो के वर्ग में रख सकते है[1] जो यवन और सस्कृत भाषाओ में

[1] श्री बरजेस की यह बात मुझे ठीक नही जँचती। वराहमिहिर ने बारह राशियो के जो नाम अपने बृहज्जातक में दिये है वे मेष, वृष, मिथुन आदि के बदले क्रिय., तावुरि, जितुम आदि है, जो यवन शब्दों के भ्रष्ट रूप जान पडते है। उनका प्रचार न हो सका, उनके बदले मेष, वृष, आदि नाम चले, जो यवन शब्दो के अनुवाद है। नीचे यवन और वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त बारहों राशिनाम दिये जा रहे है, जिसमें पाठक स्वय उनकी तुलना कर सकें। यद्यपि वराहमिहिर वाले शब्द सस्कृत-से जान पडते है, तो भी स्मरण रखना चाहिए कि उनका प्रयोग उसके पहले के किसी भी ग्रथ में नहीं हुआ। दूसरी ओर इसका प्रमाण है कि यवन वालों ने बाबुल लोगों के राशिनामों का अनुवाद कर लिया और उनके देश में इन नामों का प्रचलन ५३२ ई० पूर्व से आरम्भ हुआ (भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति की रिपोर्ट, पृष्ठ १९३

उभयनिष्ठ है, और जो या तो एक ही मूल से दोनो भाषाओ मे पहुँचे, या अति प्राचीन काल में सस्कृत से यवन भाषा में पहुँचे, क्योकि, जहाँ तक मै जानता हूँ, कोई यह नही कहता कि यवन भाषा सस्कृत की जन्मदात्री है, यद्यपि वहुत-से शब्दो मे और व्याकरण के प्रयोगो में दोनो भाषाओ में समानता है।

ग्रह

"५ ग्रहो के सवध में मुझे यह कहना है कि हिंदू और यवन पद्धतियो में उनकी अभिन्नता सिद्ध नही हो पायी है। चाहे जो हो, मेरा विचार है कि यवन ज्योतिष के वर्तमान नामो की उत्पत्ति कम-से-कम खाल्दी तक पूरव तो अवश्य हुई। हेरोडोटस ने लिखा है (२।५२) "देवताओ के नाम यवन में मिस्र देश से आये।" ग्रहो के नाम देवताओ के नाम है। इन नामो की उत्पत्ति के वारे में यवनो का विश्वास हेरोडोटस के कथन से स्पष्ट है। अन्य कारणो से उनकी उत्पत्ति, निस्सदेह रूप से, खाल्दी या उससे भी अधिक पूरव देश में हुई दिखायी पडती है।

"सप्ताह के दिनो के साथ ग्रहो के नाम जुटने के सवध में यह निश्चय करना असभव है कि उस प्रथा की उत्पत्ति कहाँ हुई। इस वारे मे प्रोफेसर एच० एच० विल्सन की राय है—और मै उनसे पूर्णतया सहमत हूँ—कि 'इस प्रथा की उत्पत्ति ठीक से निश्चित नही हो पायी है, कारण कि यवनो को यह प्रथा अज्ञात थी, और रोम-निवासी भी इसे वहुत पीछे अपनाये। साधारणत. लोग इसे मिस्र और वाबुल लोगों की देन वताते है, परतु इसके लिए पर्याप्त प्रमाण नही है, और इस आविष्कार के श्रेय के अधिकारी हिंदू भी कम-से-कम उतने ही है, जितने अन्य कही के लोग।' (जरनल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, ९।८४)।

अरव में ज्योतिष

"ज्योतिष विज्ञान मे मौलिक आविष्कार के श्रेय के अधिकारी अरववाले कहाँ तक है इस पर भी दो शब्द कहना आवश्यक है। वे तो स्वयं स्वीकार करते है कि

पर आवश्यक उद्धरण मिलेंगे)। इसलिए इसकी संभावना बहुत कम ही जान पड़ती है कि भारत से ये नाम ग्रीस में गये।

राशियो के यवन नाम और वराहमिहिर में आये नाम यो है: क्रियॉस=क्रिय:; टॉरस=तावुरि; डिडुमाथ=जितुम; कार्किसनॉस=कुलीर; लियोन=लेय; पार्थेनॉस=पाथोन; जुगस=जूक:, स्कॉर्पियस=कौर्प्य:; तोजायटस=तौक्षिक; लिगोक्सेरस=आकोकेर; ग्ड्रॉक्सोस=हृदरोग; इक्युएस=इथुमी।

इति० १२

उन्हें यह विद्या भारत और ग्रीस से मिली। आरंभ में ही दो या तीन भारतीय ज्योतिष ग्रंथ उन्होंने प्राप्त कर लिये।" द्वितीय अब्बासिद खलीफा अलमसूर (७७३ ई०) के राज्यकाल में, जैसा कि बिन-अल-अदमी की ज्योतिष सारणियों की भूमिका में लिखा है, जो ९२० ई० में प्रकाशित हुई थी, एक भारतीय ज्योतिषी, जो अपने विषय का पारगत विद्वान था, खलीफा के दरबार में आया। वह अपने साथ ग्रहों की सारणियाँ भी लाया था और चाद्र तथा सौर ग्रहणों के वेध, और राशियो के निर्देशांक भी, जो, जैसा उसने बताया, एक भारतीय राजकुमार के परिगणित सारणियों से लिये गये थे, जिसका नाम, उस अरबी लेखक के लिखने के अनुसार, फिंचर था" (कोलब्रुक हिंदू अलजेबरा पृष्ठ ६४)। यह बात कि यवन ज्योतिष से परिचित होने के पहले वे हिंदू ज्योतिष के ज्ञान से परिपूरित थे टालमी कृत सिनटैक्सिस के अरबी अनुवाद से प्रत्यक्ष है। यह सभी जानते है कि इस यवन ज्योतिषी की महान कृति की जानकारी यूरोप में अरबी अनुवाद से ही हुई। इस अनुवाद के लैटिन अनुवाद में आरोही पात को शिर वाला पात और अवरोही पात को पुच्छवाला पात कहा गया है और ये शब्द हिंदू राहु और केतु के विशुद्ध अनुवाद हैं। यह बात और अन्य साक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाते है कि अरब वालो पर हिंदू ज्योतिष की गहरी छाप पडी थी। वस्तुत जान पडता है कि अरब वालो ने ज्योतिष में कुल इतना ही किया कि वे अपने पूरबी और पच्छिमी पडोसियो से प्राप्त सामग्री को परिष्कृत कर सके।

"एक दूसरी बात की भी चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ जान पडती है, जिससे स्वय अरब वालों का विश्वास प्रकट होता है कि विज्ञान के विषय में हिंदुओ के वे ऋणी थे। वे अंकों के आविष्कार को हिंदुओं का बताते हैं (जिसको साधारणत सभी यूरोप वाले अरब का आविष्कार समझते है)।

"ऊपर के तथ्यों और तर्कों का, जो दिखाते है कि गणितीय तथा ज्योतिष विज्ञानो में अरब वाले हिंदुओं के कितने ऋणी थे, स्पष्टतया इस प्रश्न से भी महत्त्वपूर्ण संबंध है कि चद्रमा की गति के लिए रविमार्ग को अट्ठाईस नक्षत्रो मे विभाजित करने का आविष्कार किसने पहले किया, कम-से-कम जहा तक अरब वालो का इससे संपर्क है। सब बातों को ध्यान में रखकर यह मानना असंभव है कि अरब के लोगो ने इसका आविष्कार किया।

समाप्ति

"इन लेखों में प्रसिद्ध प्राचीनज्ञ एच० टी० कोलब्रुक से लिये गये एक अवतरण से समाप्त करता हूँ। अपने बहुमूल्य लेख में, जिसका शीर्षक है "हिंदुओं के अयन

और ग्रहो की गतियो पर हिंदू ज्योतिषियो के विचार", पहले हिंदू पद्धतियो के अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओ में से कुछ को ब्योरेवार बता कर, और उसी प्रकार उनकी और यवनो की पद्धतियों में पायी जाने वाली समताओ को भी बता कर, और इन दोनो लोगो में उस समय मे आवागमन के साक्ष्य को भी दिखा कर, वे कहते है कि "यदि इन परिस्थितियो से, और इनके अतिरिक्त ऐसी समानता से, जिसे आकस्मिक मानना कठिन है, और जो मद-परिधि और उत्केंद्र वृत्तो के उपकरण से सुसज्जित हिंदू ज्योतिष और यवन ज्योतिष मे कई बातो में पायी जाती है, कोई समझे कि ऐसा विश्वास करना उचित होगा कि हिंदुओ को यवनो से वह ज्ञान मिला जिससे वे ज्योतिष के अपने त्रुटिमय ज्ञान को शुद्ध और परिष्कृत कर सके तो उनसे मतभेद के लिए मुझे कोई इच्छा न होगी" (एशियाटिक रिसर्चेज़)।

"इतने विद्वान और इतने सतर्क लेखक होते हुए भी श्री कोलब्रुक इस मत के पक्ष में कि हिंदुओ ने अपना ज्योतिष का ज्ञान यवनो से पाया है कुल इतना ही कह सके जितना ऊपर लिखा है। इससे अधिक मैं भी कुछ नही कह सकता। रविमार्ग के बारह भागों में बँट जाने पर और उनके नाम पड़ जाने पर, मैं समझता हूँ कि केवल कुछ सकेत ही एक देश से दूसरे को पहुँच सका होगा, और वह भी बहुत प्रारभिक काल में, क्योकि यदि यह माना जाय कि पीछे के समय मे हिंदुओ ने यवनो से ज्ञान प्राप्त किया तो यह दिखायी पडना ही कठिन हो जाता है कि आखिर उन्होने किस बात का ज्ञान प्राप्त किया; क्योकि किसी बात में न तो स्थिराक ठीक-ठीक मिलते है और न परिणाम। और फिर, इन स्थिराको और परिणामो में से महत्त्वपूर्ण बातो में—उदाहरणत, विषुव के वार्षिक अयन के मान में, पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य और चद्रमा की नापो में, सूर्य के महत्तम केंद्र-समीकार में—यवनों की अपेक्षा हिंदू ही अधिक शुद्ध थे, और ग्रहो के भगण-कालो में वे प्राय उतने ही शुद्ध थे जितने यवन। ग्रहों के नाक्षत्र भगण कालो की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि चार भगण-काल हिंदुओ के अधिक शुद्ध थे और टॉलमी के छ.। प्रत्यक्ष है कि हिंदुओ और यवनो के बीच ज्योतिष ज्ञान का आदान-प्रदान बहुत कम ही हुआ है। और उन विषयो के बारे में जहाँ सिद्ध है कि एक देश के लोगो ने दूसरे से कुछ लिया ही, मुझे इस समय जहाँ तक ज्ञान है, मेरी तो यही सम्मति हो रही है कि ज्ञान-प्राप्ति की धारा कोलब्रुक की धारणा से उलटी ही रही है—पश्चिम से पूर्व के बदले पूर्व से पश्चिम ही, और ज्योतिष मे भी मैं अपना मत उसी भाषा में प्रकट करना चाहूँगा जिसमे इस प्रकाड विद्वान ने विचारशील दर्शन और धार्मिक व्यवस्थाओं की, विशेष कर पुनर्जन्म-सिद्धात की, कुछ अभिन्नताओ के बारे मे, जो यवन और हिंदू पद्धतियों में पाये जाते है, अपनी सम्मति

दी है : "मुझे इसी परिणाम पर पहुँचना उचित जान पड़ता है कि इस बात में भारतीय शिक्षक थे, न कि शिष्य" (ट्रैंजैक्शन्स रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १।५७९)। यह सम्मति प्राच्य दर्शन पर कोलब्रुक की लेखनी से निकले अंतिम निबंध में व्यक्त की गयी है।

अध्याय १३

लाटदेव से भास्कराचार्य तक

लाटदेव, पांडुरंग, निःशंक, श्रीषेण, आदि

वराहमिहिर ने पचसिद्धातिका में जिन ग्रथो का सग्रह किया है उनके नाम ये हे—पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह सिद्धात[1]। इनमें से पहले दो ग्रथो के व्याख्याता[2] लाटदेव बताये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि लाटदेव सूर्य-सिद्धात के बनाने वाले नही थे, जैसा अलबेरूनी ने कई सौ वर्ष पीछे विक्रम की ११वी शताब्दी मे लिखा है। यदि ऐसा होता तो वराहमिहिर अवश्य स्वीकार करते। भास्कर प्रथम के रचे महाभास्करीय से तो प्रकट होता है कि लाटदेव, पाण्डुरंग स्वामी, नि शंकु आदि आर्यभट के शिष्य थे[3]। रोमक सिद्धात निस्सदेह यवन (यूनानी) ज्योतिष के आधार पर बनाया गया था, क्योकि इसमें यवनपुर के सूर्यास्तकाल[4] से अहर्गण बनाने की रीति बतायी गयी है। यह यवनपुर वर्तमान युक्तप्रान्त का जवनपुर नही है, वरन् संभवत एलेक्ज़ेड्रिया है जो यूनानी ज्योतिष का केंद्र था। अस्त होते हुए सूर्य से अहर्गण निकालने की बात भी यही प्रकट करती है, क्योकि मुसलमानी महीने अब भी दूइज के चद्रदर्शन के समय से, अर्थात जब सूर्यास्त होता है तब से, आरभ होते हैं। ब्रह्मगुप्त ने भी रोमक-सिद्धात को स्मृतिबाह्य[5] माना है। इससे यह बात

[1] इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रंथ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी है।

[2] पंचसिद्धातिका, १।३।

[3] प्रबोधचंद्र सेनगुप्त के खण्डखाद्यक की भूमिका, पृष्ठ १९।

[4] पं० सि०, १।८।

[5] ब्रा० सि०, १।१३।

और भी स्पष्ट हो जाती है। पाण्डुरंगस्वामी और निःशंकु के बनाये कोई ग्रंथ नही मिले है। ब्रह्मगुप्त ने श्रीषेण, विष्णुचंद्र और विजयनन्दि की चर्चा कई स्थानो पर विशेषकर तन्त्र परीक्षाध्याय में की है, जिससे प्रकट होता है कि इन्होने कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं लिखा था वरन् पुराने ग्रंथो का संग्रह मात्र अथवा संशोधन मात्र किया था। ऊपर के पिछले चार ज्योतिषियों का समय वराहमिहिर के उपरान्त और ब्रह्मगुप्त के पहले, अर्थात संवत ५६२ से ६६५ के बीच मे, है। ब्रह्मगुप्त कहते है कि श्रीषेण ने लाट, वशिष्ठ, विजयनन्दि और आयभट के मूलांको को लेकर रोमन नामक गुदडी[1] तैयार की है और इन सबके आधार पर विष्णुचन्द्र ने वाशिष्ट नामक ग्रन्थ रचा है।

भास्कर प्रथम

महाभास्करीय और लघुभास्करीय नामक दो ग्रंथो की हस्तलिखित प्रतियाँ भारत के कई पुस्तकालयो में है, जैसे मद्रास सरकार का हस्तलिपियो वाला ग्रंथालय, ट्रिवेंड्रम की पैलेस लायब्रेरी, तथा क्यूरेटर्स ऑफिस लायब्रेरी, ट्रिवेंड्रम। इन दोनो ग्रंथो में आर्यभट के ज्योतिष का समावेश है और इनके रचयिता भास्कर नाम के एक ज्योतिषी थे, जो लीलावती के लेखक प्रसिद्ध भास्कराचार्य से भिन्न थे। इसलिए इनका नाम प्रथम भास्कर लिखना उपयुक्त होगा। लखनऊ विश्वविद्यालय के डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल ने अपनी डाक्टर की डिगरी के लिए भास्कर प्रथम पर विशेष अनुसंधान किया है। उनके अनुसार भास्कर प्रथम ने एक तीसरा ग्रंथ भी लिखा है जो आर्यभटीय की टीका है, और जिसका नाम ग्रंथकार ने आर्यभटतंत्र-भाष्य रक्खा है। इस टीका मे लेखक ने दिनांक भी डाल दिया है, जिसके अनुसार यह टीका सन ६२९ ई० में लिखी गयी थी। इस टीका की एक प्रति ट्रिवेंड्रम मे है और एक इंडिया ऑफिस लायब्रेरी, लंदन, में। टीका बहुत विस्तृत और विशद है। भास्कराचार्य प्रथम आर्यभट प्रथम की शिष्य-परम्परा में थे और इनका जन्म-स्थान अश्मक में था, जो नर्मदा और गोदावरी के बीच में था। इनके दोनो प्रधान ग्रंथो (महाभास्करीय और लघुभास्करीय) का प्रचार लगभग पंद्रहवीं शताब्दी ई० के अंत तक दक्षिण भारत मे होता रहा। इनके दोनो ग्रंथो में गणना कलियुग के आरम्भ से की गयी है।

[1] ब्रा० स्फु० सि०, ११ ४८-५१।

कल्याण वर्मा

प० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार[1] इनका समय शक ५०० के लगभग है। इन्होंने 'सारावली' नामक जातक शास्त्र की रचना वराहमिहिर वृहज्जातक से बडे आकार में की है और स्पष्ट लिखा है कि वराहमिहिर, यवन, और नरेन्द्र रचित होराशास्त्र के सार को लेकर सारावली नामक ग्रन्थ की रचना की गयी है। इसमें ४२ अध्याय हैं। इस पुस्तक की चर्चा भटोत्पल ने की है। शकर बालकृष्ण दीक्षित[2] के मत से इनका समय ८२१ शक के लगभग है।

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त गणित-ज्योतिष के बहुत बडे आचार्य हो गये हैं। प्रसिद्ध भास्कराचार्य ने इनको गणकचक्रचूडामणि कहा है और इनके मूलाको को[3] अपने सिद्धात-शिरोमणि का आधार माना है। इनके ग्रथो का अनुवाद अरबी भाषा में भी कराया गया था, जिन्हे अरबी में अस् सिन्ध हिन्द और अल् अर्कन्द कहते हैं। पहली पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धात का अनुवाद है और दूसरी खण्डखाद्यक का। इनका जन्म शक ५१८ (६५३ वि०) में हुआ था और इन्होंने शक ५५० (६८५ वि०) में ब्राह्मस्फुट सिद्धात की रचना[4] की थी। इन्होंने स्थान-स्थान पर लिखा है कि आर्यभट, श्रीषेण विष्णुचन्द्र आदि की गणना से ग्रहो का स्पष्ट स्थान शुद्ध नही आता, इसलिए वे त्याज्य हैं, और ब्राह्मस्फुट सिद्धात में दृग्गणितैक्य[5] होता है, इसलिए वही मानना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धात की रचना ग्रहो का प्रत्यक्ष वेध करके की थी और वे इस बात की आवश्यकता समझते थे कि जब कभी गणना और वेध में अन्तर पडने लगें तो वेध के द्वारा गणना शुद्ध कर लेनी चाहिए। यह पहले आचार्य थे जिन्होंने गणित ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की, और ज्योतिष और गणित के विषयो को अलग-अलग अध्यायो में बाँटा।

[1] गणक तरंगिणी, पृष्ठ १६।

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० ४८६;।

[3] सिद्धांत-शिरोमणि, भगणाध्याय।

[4] संज्ञाध्याय, ७, ८।

[5] तंत्रभ्रंशे प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः। कार्यस्तस्मिन् यस्मिन दृग्गणितैक्य सदा भवति ॥६०॥ तंत्रपरीक्षाध्याय।

ब्राह्मस्फुट-सिद्धात

ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अध्यायो का ब्योरा नीचे दिया जाता है .

१—मध्यमाधिकार में ग्रहो की मध्यम गति की गणना है। २—स्पष्टाधिकार में स्पष्ट गति जानने की रीति बतायी गयी है। इसी अध्याय में ज्या निकालने की रीति भी बतायी गयी है, जिसमें त्रिज्या का मान ३२७० कला माना गया है, यद्यपि आर्यभट ने ३४३८ कला माना था और उसी को सूर्यसिद्धात ने भी माना था और पीछे सिद्धात-शिरोमणि आदि ग्रथो में भी स्वीकार किया गया।

३—त्रिप्रश्नाधिकार में ज्योतिष के तीन मुख्य विषयो (दिशा, देश और काल) के जानने की रीति है।

४—चद्रग्रहणाधिकार में चद्रग्रहण की गणना करने की रीति है।

५—सूर्यग्रहणाधिकार में सूर्यग्रहण की गणना करने की रीति है।

६—उदयास्ताधिकार में बताया गया है कि चद्रमा, मगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये सूर्य के कितने पास आने पर अस्त हो जाते हैं, अर्थात अदृश्य हो जाते हैं, और कितनी दूर होने से उदय होते हैं, अर्थात दिखायी पडने लगते है।

७—चद्रशृङ्गोन्नत्यधिकार में बताया गया है कि शुक्लपक्ष की दूइज के दिन जब चद्रमा सन्ध्या में पहले-पहल दिखायी पडता है तब उसकी कौन-सी नोक उठी रहती है।

८—चद्रच्छायाधिकार में उदय और अस्त होते हुए चद्रमा के वेध से छाया आदि का ज्ञान करने की रीति है। अन्य ग्रथो में इसके लिए कोई अलग अध्याय नही है।

९—ग्रहयुत्यधिकार में बताया गया है कि ग्रह एक दूसरे के पास कब आ जाते हैं और इनकी युति की गणना कैसे की जाती है।

१०—भग्रहयुत्यधिकार में बताया गया है कि नक्षत्रो या तारो के साथ ग्रहो की युति कब होती है और इसकी गणना कैसे की जाती है। इसी अध्याय में नक्षत्रों के ध्रुवीय भोगाश और शर[1] भी दिये गये हैं और नक्षत्रो की पूरी सूची है। ज्योतिष गणित सबधी ये दस अध्याय मुख्य है।

११—तत्रपरीक्षाध्याय में ब्रह्मगुप्त ने पहले के आर्यभट, श्रीषेण, विष्णुचद्र, आदि, की पुस्तको का खण्डन बडे कडे शब्दो में किया है, जो एक प्रकार से ज्योतिषियों

[1] अर्थात ध्रुवक और विक्षेप, पृष्ठ १५० देखें।

की परिपाटी-सी है, परंतु इससे यह बात सिद्ध होती है कि उस प्राचीन काल में भी ज्योतिषी वेध-सिद्ध शुद्ध गणना के पक्ष मे थे। वे पुरानी लकीर के फकीर नही रहना चाहते थे।

१२—गणिताध्याय शुद्ध गणित के सबध में है। इसमें जोडना, घटाना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्नो का जोडना, घटाना आदि, त्रैराशिक, व्यस्त-त्रैराशिक, भाण्ड प्रति भाण्ड (बदले के प्रश्न), मिश्रक व्यवहार, आदि, अक-गणित या पाटीगणित के विषय है। श्रेढी व्यवहार (समातर श्रेढी), क्षेत्र व्यवहार (त्रिभुज, चतुर्भुज आदि के क्षेत्रफल जानने की रीति), वृत्त-क्षेत्र गणित, खात व्यवहार (खाई आदि का घनफल जानने की रीति), चिति व्यवहार (ढालू खाई का घनफल जानने की रीति), क्राकचिक व्यवहार (आरा चलाने वाले के काम का गणित), राशि व्यवहार (अन्न के ढेर का परिमाण जानने की रीति), छाया व्यवहार (दीप स्तभ और उसकी छाया के सबध के अनेक प्रश्न करने की रीति) आदि, २८ प्रकार के कर्म इसी अध्याय के अतर्गत है। इसके आगे प्रश्नोत्तर के रूप में पीछे के अध्यायो में बतायी हुई बातो का अभ्यास करने के लिए कई अध्याय है।

१३—मध्यगति उत्तराध्याय में ग्रहो की मध्यगति सबधी प्रश्न और उत्तर है।

१४—स्फुटगति उत्तराध्याय में ग्रहो की स्पष्टगति सबधी प्रश्न और उत्तर है।

१५—त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में त्रिप्रश्नाध्याय सबधी प्रश्नोत्तर है।

१६—ग्रहणोत्तराध्याय में सूर्य-चद्रमा के ग्रहण सबधी प्रश्नोत्तर है।

१७—शृङ्गोन्नत्युत्तराध्याय में चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति सबधी प्रश्नोत्तर है।

१८—कुट्टकाध्याय में कुट्टक की विधि से प्रश्नो का उत्तर जानने की रीति है। इस अध्याय में ब्रह्मगुप्त ने प्रत्येक प्रकार के कुट्टक की रीति बतायी है और दिखाया है कि इससे ग्रहो के भगण आदि के काल कैसे जाने जा सकते है। इस अध्याय का अँग्रेज़ी अनुवाद कोलब्रुक ने किया है। इस अध्याय के अतर्गत कई खंड है। एक खड में धन, ऋण और शून्य का जोड, बाकी, गुणा, भाग, करणी[1] का जोड, बाकी, गुणा, भाग, आदि करने की रीति है। दूसरे खड में एकवर्ण समीकरण, वर्ग समीकरण, अनेक वर्ण समीकरण, आदि, बीजगणित के प्रश्न है। तीसरा खंड बीजगणित सबधी भावित बीज नामक है। चौथा खड वर्गप्रकृति नामक है। पाँचवें खड में अनेक उदाहरण दिये गये है। इस प्रकार यह अध्याय १०३ श्लोको में पूर्ण होता है।

[1] $\sqrt{२}$, $\sqrt{१५}$, . . , अर्थात ऐसी राशियाँ जिनमें वर्गमूल, घनमूल, आदि निकालना पड़े, करणी अथवा करणीगत संख्याएँ कहलाती है।

ग्रह स्पष्ट करने के लिए इन्होने कहा है। परन्तु इसी श्लोक मे बताये गये नियम के अनुसार प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त अपनी खण्डखाद्यक की टीका की भूमिका[1] में बताते है कि लल्ल का समय इससे २५० वर्ष पश्चात शक ६७० है, क्योकि २५० से भाग देने की बात से प्रकट होता है कि यह बीज-सस्कार लल्ल ने ८२० शक से २५० वर्ष पीछे निश्चित किए थे। यह बात सेनगुप्त जी ने दूसरी तरह से भी सिद्ध की है। ये कहते है कि लल्ल ने नक्षत्रो के योगतारो के जो ध्रुवक दिये है वे ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के ६ तारो के ध्रुवक से लगभग २ अश अधिक है और दो तारो के ध्रुवक से लगभग १° १०' अधिक है, इसलिए इनका समय ब्रह्मगुप्त के समय से कम से कम ८५ वर्ष और अधिक से अधिक १८० वर्ष पश्चात होता है। ब्रह्मगुप्त के पश्चात लल्ल के होने की बात श्री बबुआ मिश्र की सपादित खण्डखाद्यक की टीका से भी सिद्ध होती है। सुधाकर द्विवेदी का मत तो इस बात से भी ठीक नही समझ पडता कि यदि लल्ल इतने पुराने होते तो ब्रह्मगुप्त, जिन्होने आर्यभट, श्रीषेण, आदि अपने पहले के ग्रथकारो की चर्चा कई जगह की है, इनकी चर्चा भी अवश्य करते। शकर बालकृष्ण दीक्षित इनका समय ५६० शक के लगभग बताते है जिससे यह ब्रह्मगुप्त के समकालीन सिद्ध होते है। परतु यह बात भी ठीक नही समझ पडती, क्योकि तब बीज-सस्कार के लिए २५० से भाग देने की बात समझ में नही आती। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त का ही अनुमान ठीक समझ पडता है।

शिष्यधीवृद्धिद तत्र

शिष्यधीवृद्धिद तत्र लल्ल का बहुत प्रसिद्ध ग्रथ है, जिसे आर्यभटीय के आधार पर लिखा गया है और बीज-सस्कार देकर उसे शुद्ध करने की बात भी लिखी गयी है। इस ग्रन्थ के रचने का कारण[2] यह बताया जाता है कि आर्यभट या इनके शिष्यो के लिखे ग्रथो से विद्यार्थियो के समझने में सुविधा नही होती थी, इसलिए विस्तार के साथ उदाहरण देकर (कर्मक्रम से) यह ग्रथ लिखा गया है। इसमें अकगणित या

[1] पृष्ठ २७।

[2] विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीत।
तत्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यै॰ ॥
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तै।
कर्म ब्रवीम्यहमत क्रमशस्तदुक्त ॥२॥

मध्यमाधिकार

बीजगणित सबधी अध्याय नही है, केवल ज्योतिष सबधी अध्याय विस्तार के साथ दिये गये हैं और कुल श्लोको की सख्या १००० है। इस ग्रथ के गणिताध्याय में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चद्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, ग्रहोदयास्ताधिकार, चद्रछायाधिकार, चद्रशृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार नामक १३ अध्याय हैं। गोलाध्याय में छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्यगतिवासना, भूगोलाध्याय, ग्रहभ्रम-सस्थाध्याय, भुवनकोश, मिथ्याज्ञानाध्याय, यत्राध्याय और प्रश्नाध्याय हैं। इन अध्यायो के नाम से भी प्रकट होता है कि यह पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धात के पश्चात लिखी गयी है और ज्योतिष सबधी जिन बातो की कमी ब्राह्मस्फुट सिद्धात में थी, वह यहाँ पूरी की गयी है। शुद्ध गणित, अकगणित या बीजगणित सबधी कोई अध्याय इसमे नही है, जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के बाद, जब ज्योतिष और गणित सबधी विकास बहुत बढ गया तब, इन दोनो शाखाओ को अलग-अलग विस्तार के साथ लिखने की परिपाटी चली, किसी ने शुद्ध गणित पर विस्तार के साथ लिखना आरभ किया, जैसे श्रीधर और महावीर ने, और किसी ने केवल ज्योतिष पर, जैसे लल्ल, पृथूदक स्वामी, भटोत्पल, आदि। यह आश्चर्य-जनक है कि आर्यभट के सिवा किसी अन्य प्राचीन आचार्य का नाम शिष्यधीवृद्धिद में नही आया है।

रत्नकोष

शकर बालकृष्ण दीक्षित[1] लिखते हैं कि रत्नकोष नाम का एक मुहूर्त ग्रथ लल्ल का रचा हुआ है। इसका अनुमान प० सुधाकर द्विवेदी अपनी गणक-तरगिणी में भी करते है, क्योकि मुहूर्त चितामणि की पीयूषधारा टीका में लल्ल के मत की चर्चा है, परतु यह पुस्तक सुधाकर द्विवेदी के देखने में नही आयी थी, न आधुनिक समय मे और कही किसी के देखने मे आयी है।

पाटीगणित (अकगणित) और बीजगणित की कोई पुस्तक भी लल्ल की बनायी हुई थी, ऐसा सुधाकर द्विवेदी अनुमान करते है, परतु यह पुस्तक भी अब उपलब्ध नही है। सब बातो का विचार करने से प्रकट होता है कि लल्ल एक विद्वान ज्योतिषी थे और आकाश के निरीक्षण के द्वारा ग्रहो को स्पष्ट करने की आवश्यकता समझते थे।

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २१७।

पद्मनाभ

पद्मनाभ बीजगणित के आचार्य थे जिनके ग्रंथ का उल्लेख भास्कराचार्य ने अपने बीजगणित में किया है, परंतु इनके समय का पता किसी ने नहीं दिया है। डा० दत्त और सिंह[1] लिखते हैं कि इनका बीजगणित कहीं नहीं मिलता। डाक्टर बालकृष्ण दीक्षित[2] लिखते हैं कि कोलब्रुक के मतानुसार इनका काल श्रीधर से पहले का है, इसलिए ७०० शक के लगभग ठहरता है।

सुधाकर द्विवेदी गणक-तरंगिणी में व्यवहारप्रदीप नामक ज्योतिष ग्रंथ के कर्ता पद्मनाभ मिश्र का वर्णन करते हैं, परंतु वे इनसे भिन्न हैं। सुधाकर द्विवेदी ने निश्चयपूर्वक नहीं कहा है कि दोनों एक ही हैं या भिन्न।

श्रीधर

श्रीधर भी बीजगणित के आचार्य थे, जिनका उल्लेख भास्कराचार्य ने बीजगणित में कई जगह किया है। डाक्टर दत्त और सिंह के मत से इनका समय ७५० ई० के लगभग है, जो ६७२ शक के लगभग ठहरता है। इनकी पुस्तक का नाम त्रिशतिका है जिसकी एक प्रति गणक-तरंगिणी[3] के अनुसार काशी के राजकीय पुस्तकालय में और एक प्रति प० सुधाकर द्विवेदी के मित्र राजाजी ज्योतिर्विद के पास थी। इसमें ३०० श्लोक हैं, जिसके एक श्लोक से विदित होता है कि यह श्रीधर के किसी बड़े ग्रंथ का सार है। यह प्रधानतः पाटीगणित की पुस्तक है जिसमें श्रेढी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, खात व्यवहार, चिति व्यवहार, राशि व्यवहार, छाया, व्यवहार आदि पर विचार किया गया है। सुधाकर द्विवेदी का मत है कि न्याय-कन्दली नामक ग्रंथ के रचयिता भी यही श्रीधर हैं। उस ग्रंथ की रचना ९१३ शक में की गयी थी, इसलिए श्रीधर का समय भी यही है। परंतु यह ठीक नहीं है, क्योंकि इस मत का समर्थन न तो दीक्षित करते हैं और न डा० दत्त और सिंह। दीक्षित[4] कहते हैं कि महावीर के गणितसारसंग्रह नामक ग्रंथ में श्रीधर के मिश्रकव्यवहार के कुछ वाक्य आये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि श्रीधर महावीर के पहले हुए हैं और महावीर का समय दीक्षित

[1] हिस्ट्री आव हिन्दू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृ० १२ की पाद टिप्पणी।

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २२९।

[3] गणक-तरंगिणी, पृष्ठ २२।

[4] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३०।

के मत[1] से ७७५ शक तथा डा० दत्त और सिंह के मत[2] से ८५० ई० या ७७२ शक होता है।

महावीर

महावीर वीजगणित और पाटीगणित के प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं, जिनके ग्रथ गणितसारसग्रह के अनेक अवतरण डा० दत्त और सिंह ने अपने हिंदूगणित के इतिहास में दिये हैं। इनका समय ८५० ई० अथवा ७७२ शक कहा जाता है। यह जैनधर्मी थे और जैनधर्मी राजा अमोघवर्ष के आश्रय मे रहते थे। राष्ट्रकूट वश के राजा अमोघवर्ष ७७५ शक के लगभग थे, इसलिए यही इनका समय समझना चाहिए। दीक्षित के अनुसार गणितसारसग्रह भास्कराचार्य की लीलावती के सदृश है, परतु विस्तार मे उससे वडा है। गणक-तरगिणी मे इनकी कहीं चर्चा नही है।

आर्यभट द्वितीय

आर्यभट द्वितीय गणित और ज्योतिष दोनो विपयो के अच्छे आचार्य थे। उनका वनाया हुआ महासिद्धात ग्रथ ज्योतिष सिद्धात का अच्छा ग्रथ है। इन्होने भी अपना समय कही नही लिखा है। डा० दत्त और सिंह का मत[3] है कि ये ९५० ई० के लगभग थे, जो शककाल ८७२ होता है। दीक्षित भी इनका समय लगभग ८७५ शक वताते हैं, इसलिए यही समय ठीक समझना चाहिए। गणक-तरगिणी में इनकी चर्चा तक नही है, यद्यपि सुधाकर द्विवेदी ने इनके महासिद्धात का स्वयं सम्पादन किया है। सुधाकर द्विवेदी इसकी भूमिका में केवल इतना लिखते हैं कि भास्कराचार्य ने दृक्काणोदय के लिए जिस आर्यभट की चर्चा की है वह आर्यभट प्रथम नही हो सकते, क्योकि उनके ग्रथ आर्यभटीय मे दृक्काणोदय की गणना नही है, परतु महासिद्धात मे है, इसलिए महासिद्धात के रचयिता आर्यभट दूसरे हैं जो भास्कराचार्य से पहले के हैं। यही वात दीक्षित भी लिखते हैं। परतु यह ब्रह्मगुप्त के पीछे हुए हैं, क्योकि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन वातो का खण्डन किया है वे आर्यभटीय से मिलती हैं, महासिद्धात मे नही। महासिद्धात से तो प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन-जिन वातो का खण्डन किया है वे इसमें सुधार दी गयी

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३०।
[2] हिस्ट्री आव हिंदू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृष्ठ २०।
[3] हिस्ट्री आव हिंदू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृष्ठ ८९।

है। पुस्तक की विधि में भी आर्यभट प्रथम, भास्कर प्रथम तथा ब्रह्मगुप्त की विधियों से कुछ उन्नति दिखायी पड़ती है, इसलिए ऐसा समझा जाता है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के बाद हुए हैं।

ब्रह्मगुप्त और लल्ल ने अयन-चलन के संबंध में कोई चर्चा नहीं की है, परन्तु आर्यभट द्वितीय ने इस पर बहुत विचार किया है। मध्यमाध्याय के श्लोक ११-१२ में इन्होंने अयनबिन्दु को ग्रह मानकर इसके कल्पभगण की संख्या ५७८१५९ लिखी है, जिससे अयनबिन्दु की वार्षिक गति १७३ विकला होती है, जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकार में स्पष्ट अयनांश जानने के लिए जो रीति बतायी गयी है उससे प्रकट होता है कि इसके अनुसार अयनांश २४ अंश से अधिक नहीं हो सकता और अयन की वार्षिक गति भी सदा एक-सी नहीं रहती, कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढ़ते-बढ़ते १७३ विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट द्वितीय का समय वह था जब अयनगति के संबंध में हमारे सिद्धान्तों में कोई निश्चय नहीं हुआ था। मुंजाल के लघुमानस में अयन-चलन के संबंध में स्पष्ट उल्लेख है, जिसके अनुसार एक कल्प में अयनभगण १९९६६९ होता है, जो वर्ष में ५९.९ विकला होता है। मुंजाल का समय ८५४ शक है, इसलिए आर्यभट द्वितीय का समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिए। महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के मत से इनका समय ८०० शक के लगभग होना चाहिए।

इन्होंने लिखा है[1] कि इनका सिद्धांत और पराशर का सिद्धांत दोनों एक साथ कलियुग के आरम्भ से कुछ वर्षों के बाद लिखे गये थे और इनकी ग्रह-गणना ऐसी है कि वेध से भी शुद्ध उतरती है। परंतु यह कोरी कल्पना है, क्योंकि वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि किसी आचार्य ने इनकी पुस्तक की कोई चर्चा नहीं की है। इन्होंने सप्तर्षि की चाल के संबंध में भी वैसा ही लिखा है जैसा वराहमिहिर लिखते हैं, जिससे जान पड़ता है कि सप्तर्षि १०० वर्ष में एक नक्षत्र चलते हैं। परंतु यह भी कोरी कल्पना है। सप्तर्षि में ऐसी कोई गति नहीं है।

संख्या लिखने की नवीन पद्धति

इनकी पुस्तक में संख्या लिखने के लिए एक नवीन पद्धति बतायी गयी है, जो आर्यभट प्रथम की पद्धति से भिन्न है। इसे 'कटपयादि' पद्धति कहते हैं, क्योंकि

[1] एतत्सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौयुगे जातम्।
स्वस्थानेदृक्तुल्या अनेन खेटा स्फुटा कार्या ॥२॥
पराशरमताध्याय

१ के लिए क, ट, प, य अक्षर प्रयुक्त होते हैं, २ के लिए ख, ठ, फ, र, आदि। शून्य के लिए केवल ञ और न प्रयुक्त होते हैं।[1] संख्या लिखने के लिए अक्षरो को बायें से क्रमानुसार लिखते है, ठीक वैसे ही जैसे अंकों से सख्याएँ लिखी जाती है। स्वर या उसकी मात्राओ का इस पद्धति मे कोई मूल्य नही है। मात्राओ के जोडने से भी अक्षरो का वही अर्थ होता है जो बिना मात्रा के। वे केवल उच्चारण की सुविधा के लिए जोड दी जाती है। इस प्रकार क, का, कि, कू आदि से १ अक का ही बोध होता है। यह रीति आर्यभट प्रथम की रीति से सुगम है, क्योकि याद रखने का काम बहुत कम है। सक्षेप में यह रीति नीचे दी जाती है

क, ट, प, य	=	१
ख, ठ, फ, र	=	२
ग, ड, ब, ल	=	३
घ, ढ, भ, व	=	४
ङ, ण, म, श	=	५
च, त, ष	=	६
छ, थ, स	=	७
ज, द, ह	=	८
झ, ध	=	९
ञ, न	=	०

इस पद्धति के अनुसार आर्यभट प्रथम के उदाहरण में दिये गये एक कल्प में सूर्य और चद्रमा के भगण इस प्रकार लिखे जायेंगे.

१ कल्प में सूर्य के भगण = घङफेनेननुनीना
= ४३२००००००००,

और १ कल्प में चद्रमा के भगण = मयथमगग्लभननूना
= ५७७५३३३४०००।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि यह पद्धति लिखने और याद रखने के लिए सुगम है।

[1] रूपात् कटपयपूर्वा वर्णा वर्णक्रमाद्भवन्त्यङ्काः।
ञनौ शून्य प्रथमार्थ आ छेदे ऐ तृतीयार्थे ॥२॥

मध्यमाध्याय

इति० १३

इस ग्रन्थ में १८ अधिकार हैं और लगभग ६२५ आर्या छन्द हैं। पहले १३ अध्यायों के नाम वे ही हैं जो सूर्य सिद्धांत या ब्राह्मस्फुट सिद्धांत के ज्योतिष संबंधी अध्यायों के हैं, केवल दूसरे अध्याय का नाम है परमग्रहगताध्याय। १४वें अध्याय का नाम गोलाध्याय है, जिसमें ११ श्लोकों तक पाटीगणित या अंकगणित के प्रश्न हैं। इसके आगे के तीन श्लोकों में भूगोल के प्रश्न हैं और शेष ८३ श्लोकों में अहर्गण और ग्रहों की मध्यम गति के संबंध में प्रश्न हैं। १५वें अध्याय में १२० आर्या छंद हैं जिनमें पाटीगणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि विषय हैं। १६वें अध्याय का नाम भुवनकोश-प्रश्नोत्तर है जिसमें खगोल, स्वर्गादि लोक, भूगोल आदि का वर्णन है। १७वाँ प्रश्नोत्तराध्याय है जिसमें ग्रहों की मध्यगति संबंधी प्रश्न हैं। १८वें अध्याय का नाम कुट्टकाध्याय है जिसमें कुट्टक संबंधी प्रश्नों पर ब्राह्मस्फुट सिद्धांत की अपेक्षा कहीं अधिक विचार किया गया है। इससे भी प्रकट होता है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के पश्चात हुए हैं।

मुजाल या मजुल

मुजाल का समय पं० सुधाकर द्विवेदी ने गणक-तरंगिणी, पृष्ठ १९,२०, में कोलब्रुक के मतानुसार भ्रमवश ५८४ शक लिख दिया है जो होना चाहिए ८५८, क्योंकि इन्होंने अपने लघुमानस नामक ग्रंथ में ग्रहों का ध्रुवकाल ८५८ शक बताया है, जिसको द्विवेदी जी भी उद्धृत करते हैं, 'कृतेष्विभमिते, शाके ८५८ मध्याह्ने रविवासरे चैत्रादौ ध्रुवकान् वक्ष्ये रविचन्द्रेन्दुतुङ्गगान्।' इस समय की सच्चाई इनके अयन-चलन संबंधी बातों से भी सिद्ध होती है। भास्कराचार्य द्वितीय ने[1] मुजाल की बतायी अयन गति लिखी है। मुनीश्वर ने अपनी मरीचि नामक टीका में मुजाल के वचन[2] उद्धृत किये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि मुजाल के अनुसार एक कल्प में अयन के १९९६६९ भगण होते हैं, इससे अयन की वार्षिक गति १ कला के लगभग आती है, जो प्रायः ठीक है। अलबीरूनी के अनुसार इस पुस्तक में यह भी लिखा था कि उस समय अयनांश ६°५०' था। इसलिए यह निश्चित है कि मुजाल का समय ८५४ शक या ९३२ ई० है।

[1] गोलबन्धाधिकार, १८।

[2] तद्भगणा कल्पे स्युर्गोरसरसगोंकचन्द्र १९९६६९ मित ॥ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० ३१३।

मुंजाल एक अच्छे ज्योतिषी थे इसमें कोई सन्देह नहीं। तारों का निरीक्षण कर के नयी बातें निकालने का श्रेय इनको मिलना चाहिए। इनके पहले अयन-गति के संबंध में किसी पौरुष सिद्धान्त-ग्रंथ में कोई चर्चा नहीं है। दूसरी महत्त्व की बात इनकी चंद्र सम्बन्धी है। इनके पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने नहीं लिखा था कि चंद्रमा में मन्दफल संस्कार के सिवा और कोई संस्कार भी करना चाहिए। परंतु इन्होंने यह स्पष्ट लिखा है, इसकी चर्चा सुधाकर द्विवेदी[1] ने भी की है।

लघुमानस मुंजाल का लिखा ग्रंथ है, जिसमें ज्योतिष संबंधी आठ अधिकार हैं। यह बृहन्मानस नामक ग्रंथ का संक्षिप्त रूप है, जैसा अलबीरूनी लिखते हैं। बृहन्मानस के कर्त्ता कोई मनु हैं, इस ग्रंथ की टीका उत्पल ने लिखी है; इसलिए इसका समय ८०० शक के लगभग है।

उत्पल

उत्पल या भट्टोत्पल ज्योतिष ग्रंथों के बड़े भारी टीकाकार थे। बृहज्जातक की टीका में इन्होंने लिखा है कि ८८८ शक (९६६ ई०) के चैत्र शुक्ल ५ गुरुवार को इसकी टीका लिखी गयी, और बृहत्संहिता की टीका में लिखा गया है कि ८८८ शक की फाल्गुन कृष्ण द्वितीया गुरुवार को यह विवृति लिखी गयी। दीक्षित ने[2] इस पर शंका प्रकट की है कि ये संवत गत नहीं हैं वर्तमान हैं, परंतु उनकी यह शंका निर्मूल जान पड़ती है। ये दोनों गत शक संवत हैं। दूसरी तिथि अमान्त फाल्गुन मास की है जिसे उत्तर प्रांत की परिपाटी के अनुसार चैत्र कृष्ण कहा जा सकता है। खण्डखाद्यक की टीका इससे भी पहले लिखी गयी थी[3] क्योंकि बृहत्संहिता की टीका में इसकी चर्चा है। लघुजातक पर भी इनकी टीका है।

बृहत्संहिता की टीका से पता चलता है कि इन्होंने प्राचीन ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया था। वराहमिहिर ने जिन-जिन प्राचीन ग्रंथों के आधार पर बृहत्संहिता की रचना की थी उन सब ग्रंथों के अवतरण देकर इन्होंने अपनी टीका की रचना

[1] चन्द्रोच्चरव्यन्तरेण रविचन्द्रान्तरेण च स्पष्टचन्द्रे तदीयगतौ चान्यः संस्कारश्च पूर्वाचार्यप्रणीतसंस्कारतो विलक्षणः प्रतिपादित. । ....अयं संस्कारश्च इवेक्शन् वेरिएशन् नामकसंस्कारवत् प्रतिभाति। [गणकतरंगिणी, पृ० २]

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २३४।

[3] वही, पृष्ठ २३४।

की है[1]। इससे यह भी पता चलता है कि वराहमिहिर के पहले महिता पर ८, १० आचार्यों ने ग्रंथ लिखे थे। इस टीका में सूर्य-सिद्धांत के जो वचन उद्धृत किये गये हैं वे इस समय के सूर्य-सिद्धांत में नहीं मिलते। वराहमिहिर के पुत्र की लिखी षट्पंचाशिका की भी इन्होंने टीका लिखी है, जिसमें शुभाशुभ प्रश्न पर विचार किया गया है।

पृथूदक स्वामी

पृथूदक स्वामी ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत पर एक टीका लिखी है। भास्कराचार्य द्वितीय ने अपने ग्रंथों में इनकी चर्चा कई स्थानों पर की है। दीक्षित के मत से यह भटोत्पल के समकालीन हैं। परन्तु बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यक की आमराज की टीका में लिखा है[2] कि शक ८०० में इन्होंने अयनांश ६½ अंश देखा था। इस प्रकार इनका समय मुंजाल से भी पहले का सिद्ध होता है। परन्तु भास्कराचार्य आदि ने इसका उल्लेख कहीं नहीं किया है। इन्होंने खण्डखाद्यक की टीका भी की है, जिसकी चर्चा प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त अपनी टीका में करते हैं।[3]

श्रीपति

श्रीपति ज्योतिष की तीनों शाखाओं के अद्वितीय पंडित थे। उनके लिखे ग्रंथ हैं सिद्धांतशेखर, धीकोटिकरण, रत्नमाला (मुहूर्त ग्रंथ), और जातक-पद्धति (जातक ग्रन्थ)। धीकोटिकरण में गणित का जो उदाहरण दिया गया है उसमें ९६१ शक[4] की चर्चा है, इसलिए श्रीपति का समय इसी के लगभग सन १०३९ ई० हो सकता है। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त[5] के अनुसार श्रीपति के पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने काल-समीकरण के उस भाग का पता नहीं लगा पाया था जो रविमार्ग की तिर्यक्ता के कारण उत्पन्न होता है।

[1] वही, पृष्ठ २३५।

[2] चतुर्वेदपृथूदकस्वामिना त्वेतदसद्दूषणमित्यभिहितम्। यतस्तेन खखाष्टसंख्यशाके सार्द्धा षड्दृष्टा इति। कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित और बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यक की टीका, पृ० १०८।

[3] भूमिका, २३, ३४।

[4] चन्द्राङ्गनन्दोनशकोऽर्कनिघ्नश्चैत्रादिमासैर्युगघो द्विनिघ्न, गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ३०।

[5] खण्डखाद्यक की अँग्रेजी टीका, पृष्ठ ९३।

भोजराज

राजमृगाङ्क नामक करणग्रंथ के बनाने वाले राजा भोज कहे गये हैं। यह ग्रंथ ब्रह्मसिद्धांत के ग्रहों में बीज-संस्कार देकर बनाया गया है। इसका आरम्भ-काल शक ९६४ है[1] और इसी समय के ग्रहों का क्षेपक[2] दिया गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसके रचने वाले स्वयं राजा भोज हैं अथवा उनका आश्रित कोई ज्योतिषी। इस पुस्तक का आदर चार-पाँच सौ वर्ष रहा। इसमें मध्यमाधिकार और स्पष्टाधिकार के केवल ६९ श्लोक हैं[3]। अयनांश जानने का नियम भी दिया गया है।

ब्रह्मदेव

ब्रह्मदेव का लिखा करणप्रकाश नामक एक करणग्रंथ है। इसका आरंभ १०१४ शक (१०९२ ई०) में किया गया था और इसका आधार आर्यभटीय है। ग्रहों की गणना के लिए आर्यभट के ध्रुवाङ्कों में लल्ल के बीज-संस्कार देकर काम लिया गया है। क्षेपक[2] चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार शाके १०१४ का है। इसमें ९ अधिकार हैं, जिनमें ज्योतिष संबंधी सभी बातें आ गयी हैं। इस ग्रंथ में ४४५ शक को शून्य अयनांश का समय माना गया है और अयनांश की वार्षिक गति एक विकला मानी गयी है। यह ग्रन्थ आर्य पक्ष का है, इसलिए दक्षिण के माध्व संप्रदाय के वैष्णव इसी के अनुसार एकादशी व्रत का निश्चय करते आ रहे हैं[4]।

शतानन्द

भास्वतीकरण नामक करणग्रंथ वराहमिहिर के सूर्य-सिद्धांत के आधार पर बनाया गया है। इसके लेखक शतानन्द हैं जिन्होंने ग्रंथ का आरंभ १०२१ शक (१०९९ ई०) में किया था। यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध था। मलिक मोहम्मद जायसी

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २३८।

[2] किसी पुस्तक की ग्रहगणना के आरंभ काल में सूर्य, चंद्र, आदि ग्रहों की जो स्थिति होती है उसे क्षेपक कहते हैं। इसको आगे होने वाली ग्रह की गति में जोड़ देने से उस समय की ग्रह-स्थिति ज्ञात हो जाती है।

[3] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २३९।

[4] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २२४।

ने अपनी पद्मावत में इसकी चर्चा की है। इसकी कई टीकाएँ संस्कृत में हैं। इस ग्रंथ की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं

ग्रहो का क्षेपक शक १०२१ की स्पष्ट मेष संक्रान्ति काल (गुरुवार) का है। दूसरी विशेषता यह है कि इसमे अहर्गण की गणना से ग्रहो को स्पष्ट करने की रीति नही है, वरन् ग्रहो की वार्षिक गति के अनुसार है, जिससे गणना करने में बड़ी सुविधा होती है, गुणा भाग नही करना पड़ता, केवल जोड़ने से काम चल जाता है। तीसरी विशेषता यह है कि इन्होंने शतांश पद्धति से काम लिया है, अर्थात राशि, अंश, कला, विकला, आदि लिखने की जगह राशि के सौवे भागो में अथवा नक्षत्र के सौवें भागो में ग्रह-स्थिति बतायी है। उदाहरणत चन्द्रमा की एक वर्ष की गति ९९५$\frac{५}{६}$ नक्षत्र (शताशो में) बतायी गयी है, जिसका अर्थ है[1]

$$\frac{९९५\frac{५}{६}}{१००} \text{ नक्षत्र} = \frac{९९५\frac{५}{६}}{१००} \times ८०० \text{ कला}$$

$$= ७९६६\frac{२}{३} \text{ कला}$$

$$= ४ \text{ राशि } १२ \text{ अंश } ८६ \text{ कला } ८० \text{ विकला।}$$

शनि का क्षेपक ५९४ शतांश राशि है, जिसका अर्थ दशमलव भिन्न में हुआ ५ ९४ राशि। इस प्रकार प्रकट है कि शतानन्द ने दशमलव भिन्न का व्यावहारिक प्रयोग किया था। शायद शतांश पद्धति के पक्षपाती होने के कारण उन्होंने अपना नाम भी शतानन्द रक्खा था।

भास्वती मे तिथिध्रुवाधिकार, ग्रहध्रुवाधिकार, स्फुट तिथ्यधिकार, ग्रहस्फुटाधिकार, त्रिप्रश्न, चद्रग्रहण, सूर्य-ग्रहण, परिलेख नामक आठ अधिकार है। इसमें शक ४५० शून्य अयनाश का वर्ष माना गया है और अयनाश की वार्षिक गति १ कला मानी गयी है।

भास्वती की कई टीकाएँ हुई हैं। एक टीका हिंदी भाषा में सवत १४८५ वि० (शक १३५०, १४२८ ई०) में वनमाली पडित ने की थी, जिसकी एक खडित-प्रति काशी के सरस्वती भवन में है[2]।

इस समय के आस-पास और कई ज्योतिषी हो गये है जिन्होने करणग्रथो की रचना की है, परन्तु इनका नाम न गिनाकर अब हम प्रसिद्ध भास्कराचार्य का वर्णन करेंगे, जिनकी कीर्ति सात सौ वर्ष तक फैली रही और जिनकी वनायी पुस्तकें,

[1] भारतीय ज्योतिष शास्त्र, पृ० २४४

[2] गणक-तरगिणी, पृ० ३३

सिद्धातशिरोमणि और लीलावती, अब तक भारतीय ज्योतिप के विद्यार्थियो को पढ़नी पडती है। इसी नाम के एक ज्योतिषी आर्यभट प्रथम की शिष्य-परपरा में भी थे, इसलिए इनका नाम भास्कराचार्य द्वितीय रक्खा जायगा।

भास्कराचार्य द्वितीय

भास्कराचार्य द्वितीय ने अपना जन्म-स्थान सह्याद्रि पर्वत के निकट विज्जडविड ग्राम लिखा है, परतु पता नही इसका वर्तमान नाम क्या है। इन्होने अपना जन्मकाल तथा ग्रन्थनिर्माण-काल स्पष्ट भाषा में लिखा है[1]। इनका जन्म शक १०३६ (१११४ ई०) में हुआ था और ३६ वर्ष की आयु में इन्होने सिद्धात-शिरोमणि की रचना की। करण-कुतूहल ग्रन्थ का आरम्भ ११०५ शक में हुआ था, इसलिए यही इसका रचनाकाल है, जो ११८३ ई० होता है। इससे प्रकट होता है कि करण-कुतूहल की रचना ६९ वर्ष की अवस्था में की गयी थी। इनके बनाये चार ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है: १—सिद्धात-शिरोमणि, दो भागो में, जिनके नाम गणिताध्याय और गोलाध्याय है, २—लीलावती, ३—बीजगणित और ४—करण-कुतूहल। सिद्धातशिरोमणि पर इन्होने स्वय वासना भाष्य टीका लिखी है, जो सिद्धात-शिरोमणि का अग समझी जाती है और साथ ही साथ छपती है।

लीलावती और बीजगणित भी यथार्थ में सिद्धात-शिरोमणि के ही अग माने गये है (और इनके अत में यह लिख भी दिया गया है), क्योकि सिद्धात-ज्योतिप का पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब विद्यार्थियो को पाटीगणित का, जिसमें क्षेत्रफल, घनफल आदि विषयो का भी समावेश है, तथा बीजगणित का आवश्यक ज्ञान हो।

लीलावती

लीलावती नामक ग्रथ मे लीलावती नामक लडकी को सबोधन करके प्रश्नोत्तर के रूप में पाटीगणित, क्षेत्रमिति, आदि के प्रश्न बहुत रोचक ढग से बताये गये है। इसमें वे सब विषय आ गये है जिनकी चर्चा ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के शुद्ध गणित भाग

[1] रसगुणपूर्णमहीसमशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्ति.।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचित॥५८॥
गोलाध्याय का प्रश्नाध्याय

में की गयी हैं। अंत में गणितपाश (क्रमचय[1]) नामक एक अध्याय और है। इसकी भाषा बड़ी ललित है। इसकी संस्कृत और हिंदी टीकाएँ कई हैं, जो बम्बई और लखनऊ से प्रकाशित होकर ज्योतिष के विद्यार्थियों के काम में आती हैं। इसकी कई प्राचीन टीकाएँ भी हैं, जैसे गंगाधर की गणितामृत सागरी (१३४२ शक), ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की बुद्धिविलासिनी (१४६७ शक), धनेश्वर दैवज्ञ की लीलावतीभूषण, मुनीश्वर की लीलावतीविवृति (१५४७ शक), महीधर की लीलावती-विवरण, रामकृष्ण की गणितामृतलहरी, नारायण की पाटीगणित-कौमुदी, रामकृष्ण देव की मनोरंजना, रामचंद्र कृत लीलावती-भूषण, विश्वरूप की निसृष्टदूती, सूर्यदास की गणितामृतकूपिका, इत्यादि। वर्तमान काल में पं० बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी और पं० सुधाकर द्विवेदी की उपपत्ति सहित टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

अन्य ग्रंथ

भास्कराचार्य के बीजगणित पर कृष्ण दैवज्ञ की बीजनवांकुर (शक १५२८) और सूर्यदास की टीका प्रसिद्ध है। उपपत्ति के साथ इसकी टीका पं० सुधाकर द्विवेदी ने भी की है। इनके अतिरिक्त और भी कई टीकाएँ हैं।

सिद्धांत-शिरोमणि (गणिताध्याय और गोलाध्याय) ज्योतिष सिद्धांत का एक उत्तम और प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें ज्योतिष सिद्धांत की सभी बातें विस्तार और उपपत्ति के साथ बतायी गयी हैं जिनका वर्णन ब्राह्मस्फुट सिद्धांत अथवा महासिद्धांत में है। इसकी अनेक टीकाएँ हैं। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की एक टीका है। नृसिंह ने वासनाकल्पलता अथवा वासनावार्तिका नामक टीका १५४३ शक में लिखी थी, मुनीश्वर या विश्वरूप की मरीचि नामक टीका बहुत उत्तम और विस्तार के साथ १५५७ शक में लिखी गयी थी। आर्यभटीय के टीकाकार परमादीश्वर ने सिद्धांत-दीपिका नामक टीका की थी। रंगनाथ की मितभाषिणी नामक टीका शक १५८० के लगभग लिखी गयी थी। इस ग्रंथ का ब्योरेवार विवरण आगामी अध्याय में दिया जायगा।

[1] क्रमचय वह संख्या है जो बताती है कि दिये हुए समूह में से गिनती में दी हुई संख्या के बराबर वस्तुएँ निकाल कर कुल कितने विभिन्न क्रमों में रक्खी जा सकती हैं।

अध्याय १४

सिद्धांतशिरोमणि और करण-कुतूहल

गोलप्रशसा

सिद्धातशिरोमणि के गोलाध्याय में पद्रह अध्याय है, जिनमें से पहले का नाम गोलप्रशसा है। मगलाचरण के बाद इस अध्याय में बताया गया है कि ज्योतिपी को क्या-क्या जानना चाहिए। इस पर बल दिया गया है कि शुभाशुभ बताने के लिए भी गणित और गणित-ज्योतिप जानना आवश्यक है। अतिम श्लोक मे भास्कराचार्य ने अपनी पुस्तक की प्रशसा इन शब्दो में की है

गोल श्रोतु यदि मतिर्भास्करीयं शृणु त्व
नो सक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तर. शास्त्रतत्त्वम्।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्य. स यस्माद्
विद्वन! विद्वत्सदसि पठतां पंडितोक्तिं व्यनक्ति ॥९॥

अर्थ—हे पडित! यदि तुम्हारी इच्छा गणित-ज्योतिप सुनने की है तो भास्कराचार्य कृत पुस्तक को सुनो। वह न तो सक्षिप्त है और न व्यर्थ विस्तृत ही है। उसमे शास्त्र का तत्त्व है। उसमे सुन्दर पद है और मनोरम प्रश्न है। वह सुगमता से समझी जा सकती है और उसे पडितो की सभा मे सुनाने से पडिताई प्रकट होती है[1]।

गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय

दूसरा अध्याय गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय है। इसमें दस श्लोक है और सभी में पाठक ग्रथ के रचयिता से प्रश्न पूछता है। उदाहरणत, प्रथम श्लोक का यह अर्थ है

[1] पडित गिरजाप्रसाद द्विवेदी का सटीक संस्करण (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ); यहां अर्थ अधिकतर इसी पुस्तक से लिये गये है।

यह पृथ्वी ग्रह-नक्षत्रों से वेष्टित, भ्रमण करते हुए राशिचक्र के भीतर, आकाश में कैसे ठहरी है जिससे नीचे नहीं गिर जाती? इसका स्वरूप और मान क्या है?

टेढ़े प्रश्न भी है, जैसे यह कि "हे गोलज्ञ! रविमार्ग के बराबर-बराबर बारह भाग, जो बारह राशियाँ है, बराबर समयों में क्यों नहीं उदित होते? और वे सब देशों में एक समय में क्यों नहीं उदित होते?'

भुवनकोश

भुवनकोश नामक तीसरे अध्याय में विश्व का रूप बताया गया है। कहा गया है कि पृथ्वी क्रमानुसार चंद्र, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, बृहस्पति और नक्षत्रों की कक्षाओं से घिरी हुई है। इसका कोई आधार नहीं है, केवल अपनी शक्ति से स्थिर है। इसके पृष्ठ पर सदा असुर, मनुष्य, देव और दैत्य आदि के सहित दुनिया स्थित है। कदंब के फूल की गाँठ जैसे चारों ओर केसरों से घिरी रहती है वैसे ही पृथ्वी भी चारों ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, यज्ञशाला आदि से घिरी है।

उनके मत का जोरदार शब्दों में खंडन किया गया है जो कहते थे कि पृथ्वी किसी आधार पर टिकी है। लिखा है कि "यदि भूमि किसी साकार वस्तु के आधार पर स्थित है तो उस आधार का भी कोई आधार होना चाहिए। यों प्रत्येक वस्तु के लिए किसी दूसरे आधार की कल्पना करते चले तो अनवस्था[1] हो जायगी। यदि अंत में निजी शक्ति की कल्पना की जाय तो वह पहले ही से क्यों न की जाय? पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है, उससे वह आकाश में फेंकी गयी भारी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है और वह भारी वस्तु गिरती हुई दिखायी पड़ती है, परंतु पृथ्वी कहीं नहीं गिर सकती, क्योंकि आकाश सब ओर समान है।

बौद्धों के कथन का कि पृथ्वी गिरती है और जैनों के कथन का कि दो सूर्य है, दो चंद्र है, जिनका एकांतर से उदय होता है बहुत बलपूर्वक खंडन किया गया है। उनके मत का भी खंडन किया गया है जो कहते है कि पृथ्वी समतल (सपाट) है और मेरु पर्वत के पीछे सूर्य के छिप जाने से रात्रि होती है। बताया है कि जैसे वृत्त की परिधि का छोटा-सा भाग सीधा जान पड़ता है वैसे ही "इस बड़ी भारी भूमि की

[1] न्याय में एक प्रकार का दोष, यह उस समय होता है जब तर्क करते-करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो, जैसे कारण का कारण, और भी उसका कारण, फिर उसका भी कारण—हिंदी-शब्द सागर।

तुलना में, मनुष्य के अत्यत क्षुद्र होने के कारण , भूमि के ऊपर उसकी दृष्टि जहाँ तक जाती है, वह सब सपाट ही जान पडती है।"

फिर बताया गया है कि पृथ्वी कैसे नापी जा सकती है। कहा है कि भूमध्य रेखा से उज्जयनी की दूरी नाप कर उसे १६ से गुणा करने पर पृथ्वी की परिधि ज्ञात होगी, क्योकि उज्जयनी का अक्षाश २२$\frac{१}{२}$ अश, अर्थात $\frac{१}{१६}$ × ३६० अश, है। इसके बाद लका, यमकोटि, रोमकपत्तन, सिद्धपुर, सुमेरु और बडवानल की परिभाषाएँ या स्थितियाँ बतायी गयी है। फिर कुछ भौगोलिक बातें बतायी गयी है, जो बहुत ठीक नही है। वे केवल पौराणिक परपरा से सकलित जान पडती है।

श्लोक ४८ मे बताया गया है कि भूमध्य रेखा पर खगोल (आकाशीय गोल) कैसा दिखायी पडेगा "भूमध्य रेखा पर मनुष्य दक्षिण और उत्तर दोनो ध्रुवो को क्षितिज पर देखेगा और आकाश को अपने सिर के ऊपर जलयत्र (रहट) की तरह घूमता हुआ देखेगा", जो पूर्णतया सत्य है। इसके बाद ध्रुव के उन्नताश और स्थान के अक्षाश में सबध बताया गया है। फिर पृथ्वी की परिधि, उसका व्याम और उसके पृष्ठ का क्षेत्रफल बताया गया है। इसमें परिधि और व्यास का अनुपात बहुत शुद्ध (३ १४१६) लिया गया है। भास्कराचार्य ने पृष्ठ के क्षेत्रफल के सबध मे लल्लाचार्य की गणना को अशुद्ध बताया है, जो उचित ही है। लल्ल ने अशुद्ध सूत्र से गणना की थी, क्योकि उन्होने परिधि से वृत्त के क्षेत्रफल को गुणा किया था। भास्कराचर्य ने परिधि को व्यास से गुणा किया है, जो पूर्णतया शुद्ध है।

मध्यगतिवासना

मध्यगतिवासना नामक चौथे अध्याय में सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की मध्य गतियाँ दी गयी है। प्रथम तीन श्लोको में बताया गया है कि पृथ्वी के ऊपर सात स्तर वायुओ के है। पहले में मेघ आदि है। उसके ऊपर वे वायु है? जिनसे चद्रमा, सूर्य, मगल, आदि, चलते रहते है। विचार करने की बात है कि बहुत पहले ही आर्यभट ने आर्यभटीय में लिखा था कि "जैसे नाव पर चढे हुए मनुष्य को, जिधर वह जाती है उससे विपरीत दिशा मे, किनारे के अचल वृक्ष आदि चलते हुए प्रतीत होते है, इसी प्रकार भूमध्य रेखा पर अचल नक्षत्र पूर्व से पश्चिम दिशा में जाते हुए प्रतीत होते है", परतु आर्यभट के इस सिद्धात को कि पृथ्वी घूमती है और तारे अचल है, न तो लल्ल, श्रीपति आदि ने माना, और न भास्कराचार्य ने।

इसके बाद समझाया गया है कि क्यो सूर्य, चद्रमा आदि की गतियाँ विभिन्न होती है, यद्यपि ये सब पिड एक ही वायु से सचालित होते है। कारण यह बताया गया

है कि उनमे स्वगति भी होती है । "जैसे कुम्हार के चाक पर नीचे विलोम दिशा में चलने पर भी चाक के घूमने के कारण कुछ पिछड़कर आगे ही बढ़ती है", इसी प्रकार सूर्य आदि भी ।

फिर, श्लोक ८ से अध्याय के अंत तक (श्लोक २५ तक) सौर वर्ष, चांद्र मास और अधिमास की परिभाषाएँ तथा उनके मान, कितने-कितने दिनों पर अधिमास लगते हैं, अधिमास संबंधी कुछ अन्य प्रश्न और उनके उत्तर, तथा कुछ अन्य बातें बतायी गयी हैं । सौर वर्ष आदि बताने की वह रीति नहीं अपनायी गयी है जो सूर्य-सिद्धांत में है । यहाँ बताया गया है कि सौर वर्ष ३६५ दिन १५ घड़ी ३० पल और २२/३० विपल का होता है, सूर्य-सिद्धांत में युग में वर्षों की संख्या बतायी गयी थी ।

ज्योत्पत्ति और छेद्यकाधिकार

पाँचवाँ अध्याय ज्योत्पत्ति है । इसमे त्रिकोणमिति के कुछ सूत्र दिये गये हैं और कुल ६ श्लोक है । आगामी अध्याय छेद्यकाधिकार है । इसमें वे नियम दिये गये हैं जिनसे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्फुट स्थितियाँ, अर्थात वे स्थितियाँ जिनमें ये पिंड वस्तुत दिखायी पडते हैं, जानी जा सकती है । इस अध्याय में दोनो सिद्धात दिये गये है, एक तो वह जो सूर्य-सिद्धात के सबध मे बताया गया है, अर्थात सूर्य या चद्रमा एक छोटे वृत्त मे चलता है, जिसका केंद्र एक बडे वृत्त में चलता है, और दूसरा यह कि सूर्य आदि पिंड वृत्त मे चलते हैं परतु पृथ्वी केंद्र पर नही, उससे हट कर है । भास्कराचार्य के मत से भूमि ब्रह्माड के केंद्र में अवश्य है, परतु सूर्य, चद्र, ग्रहादि जिन वृत्तो मे चलते है उनके केंद्र पृथ्वी से भिन्न है ।

भास्कराचार्य ने छेद्यक उस चित्र को कहा है जिसमें सूर्य आदि किसी पिंड की कक्षा दिखायी जाय । छेद्यक बनाने की रीति विस्तार से बतायी गयी है । यह भी बताया है कि सूर्य और चद्रमा का आभासी व्यास घटा-बढा क्यो करता है "अपने उच्च मे स्थित रहने पर पिंड पृथ्वी से बहुत दूर रहता है और नीच में समीप रहता है । इसलिए पिंड का बिंब क्रमानुसार छोटा और बडा दिखायी पडता है । इसके बाद कुछ प्राचीन आचार्यों के मत का खडन किया गया है ।

गोलबधाधिकार और त्रिप्रश्नवासना

सातवाँ अध्याय गोलबधाधिकार है । इसमे बताया गया है कि कैसे बीच में काठ के गोले से पृथ्वी, और उसके केंद्र से जाने वाली छडी पर वृत्त बाँधकर चद्र, बुध आदि की कक्षाएँ प्रदर्शित की जा सकती है, और ज्योतिष-अध्ययन मे आने वाले याम्यो-

सरं, क्षितिज आदि अनेक वृत्त कैसे दिखाये जा सकते है। स्पष्ट है कि इस प्रकार का गोल केवल शिष्य को ज्योतिष समझाने के लिए है, ग्रहो और नक्षत्रो की स्थितियाँ नापने के लिए नही। यहाँ के वर्णन के अनुसार भी गोल वैसा ही बनेगा जैसा सूर्य-सिद्धात के सबध मे पहले बताया जा चुका है।

इसी अध्याय में अयनाश, क्राति, शर, आदि, कई उपयोगी ज्यौतिप परिमाण ज्ञात करने के भी नियम दिये गये है।

आगामी अध्याय त्रिप्रश्नवासना है। उसमें सूर्योदय का समय जानने की रीति बतायी गयी है। वर्णन किया गया है कि कहाँ कब कितना दिन रात होता है। बताया गया है कि भूमध्यरेखा पर दिन-रात क्यो बराबर होते है। यह भी बताया गया है कि उत्तर ध्रुव वृत्त के भीतर (अर्थात वृत्त के भीतर जिसका अक्षाश लगभग ६६° उत्तर होता है) दिन-रात की व्यवस्था कैसी होती है, किस प्रकार वहाँ बहुत समय तक दिन ही बना रहता है, पृथ्वी के ठीक उत्तर ध्रुव या दक्षिण ध्रुव पर क्या दिखायी पडता है, और चद्रमा पर दिन और रात किस प्रकार होते है। कहा गया है कि "पितर लोग चद्रमा के पृष्ठ पर निवास करते है और इसलिए चद्रमा को अपने पैर के नीचे मानते है। वे हमारी अमावस्या पर सूर्य को अपने सिर पर देखते है। इसलिए उस दिन उनका मध्याह्न होता है। चद्रमा जब ६ राशि चल लेता है और हमारी पूर्णिमा होती है तब सूर्य चद्रमा के नीचे चला जाता है और पितरो की अर्ध-रात्रि होती है।"

कोई राशि क्यो शीघ्र उदित होती है, कोई क्यो देर में, इसका यह उत्तर दिया गया है "रविमार्ग का जो भाग तिरछा है वह थोड़े काल में और जो सीधा है वह अधिक काल मे उदित होता है", फिर बताया है कि कौन-सी राशियाँ अधिक तिरछी है, कौन-सी प्राय सीधी। यह भी बताया गया है कि कौन-से देश में कर्क और मिथुन राशियाँ सदोदित रहेंगी, अर्थात क्षितिज के नीचे कभी जायँगी ही नही, और इसी प्रकार के कई अन्य प्रश्नो का भी उत्तर दिया गया है। इस सबध में लल्लाचार्य का एक कथन असगत बताया गया है।

अक्षाश जानने की रीति यो बतायी गयी है "ध्रुव का वेध द्वारा जो उन्नताश और नताश प्राप्त हो वे ही अक्षाश और लबाश[1] है, फिर. विषुव के दिन के मध्याह्न में जो सूर्य का नताश और उन्नताश हो वे क्रमानुसार अक्षाश और लबाश होते है।

[1] ९० अश से अक्षाश को घटाने पर प्राप्त शेष को लंबाश कहा गया है।

इस अध्याय में कई एक परिमाणो की गणना की रीति बतायी गयी है और कहा गया है कि "इसी प्रकार विद्वान लोग अन्य हजारो क्षेत्रो की कल्पना करके शिष्यो को बताये।"

ग्रहणवासना, दृक्कर्मवासना और शृङ्गोन्नतिवासना

आगामी दो अध्यायो में ग्रहण की गणना बतायी गयी है। उसके बाद वाले अध्याय में बताया गया है कि चद्रमा के शृग (नोक) किस दिशा में है यह कैसे जाना जाय। इन विषयो के कठिन होने के कारण अधिकाश बातो को यहा छोड दिया जा रहा है, केवल एक-दो अत्यत सरल बातें चुन कर यहाँ रखी जाती है। प्रथम श्लोक में बताया गया है कि सूर्य-ग्रहण क्यो कही से दिखायी पडता है, कही से नही "जिस प्रकार मेघ सूर्य को ढँक लेता है वैसे ही चद्रमा सूर्य से शीघ्र चल कर सूर्य-बिंब को अपने काले बिंब से ढक लेता है। इसलिए सूर्य-ग्रहण में पश्चिम दिशा में स्पर्श और पूर्व दिशा में मोक्ष होता है। चद्रमा और सूर्य की दूरियो में भेद रहने से सूर्य किसी देश में ढँका हुआ दिखायी पडता है और किसी में नही। चद्रग्रहण में छादक (ढँकने वाला) बडा होता है। इसलिए ग्रहण के समय दिखायी पडने वाले चद्रमा के दोनो शृग मद (मोटे) होते है और ग्रहण की अवधि बडी होती है। परतु सूर्य-ग्रहण में छादक के छोटा होने से सूर्य के शृग तीखे होते है और ग्रहण की अवधि छोटी होती है।"

ग्रहण के ब्योरो को जानने के लिए चित्र खीचने की रीति विस्तार से बतायी गयी है।

शृगोन्नतिवासना में यह भी बताया गया है कि चद्रमा में क्यो कलाएँ दिखायी पडती है।

यत्राध्याय

इस अध्याय का उद्देश्य प्रथम श्लोक में बताया गया है "काल के सूक्ष्म अवयवो का ज्ञान बिना यत्र के असभव है। इसलिए सक्षेप में कुछ यत्रो का वर्णन करता हूँ। उन यत्रो के नाम ये है गोल, नाडी-वलय, यष्टि, शकु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य, फलक और धी। परतु इन सब यत्रो में एक धी-यत्र सब से उत्तम है।

इनमें से गोल-यत्र तो वही है, जो गोलबधाधिकार में बताया गया है।

नाडीवलय-यत्र के लिए लिखा है कि काठ का चक्र बन कर उसकी परिधि को घटी आदि में अकित करे। बीच में कील, चक्र के समतल से लब दिशा में, जड दे, तो यत्र तैयार हो जायगा। कील की छाया देख कर इससे समय ज्ञात किया जाता

है। चक्र के धरातल को इच्छानुसार चाहे क्षैतिज समतल में अथवा विषुवत के समतल मे स्थिर किया जा सकता है।

यष्टि का अर्थ है छडी, वल्ली या स्तभ। नाम से ही यत्र का ज्ञान हो जाता है। वनाने के लिए कोई व्योरा नही दिया गया है। शकु के लिए सिद्धात-शिरोमणि मे वहुत कम व्योरा है, परतु शकु क्या होता था यह अन्य ग्रयो से ज्ञात है (पृष्ठ १४२ देखें)। शकु को हाथीदांत का वनाना चाहिए केवल यही विशेष वात वतायी गयी है।

आधे घडे के आकार का तावे का घटी-यत्र वनता था। पेंदी मे एक छेद रहता था। पानी में इसके डूवने के समय से समय का ज्ञान होता था।

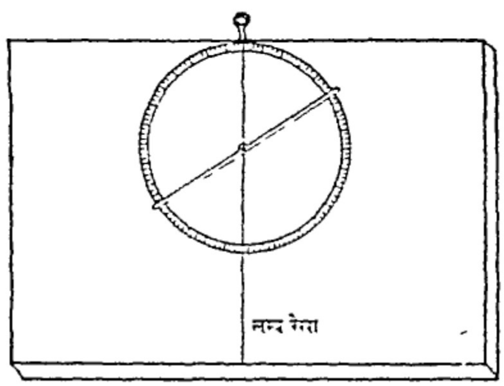
"किसी काष्ठ या धातु का वृत्ताकार चक्र-यत्र वना कर उसकी परिधि को ३६० अशो में अंकित करे और ढीली जजीर से लटका दे। . केंद्र में एक कील रहनी चाहिए"। इस प्रकार चक्र-यत्र ऊर्ध्वाधर धूप-घड़ी का काम देता था। इससे सूर्य का उन्नताश नापा जाता था।

"वृत्त का आधा चाप-यत्र और चाप का आधा तुर्य-यंत्र कहा जाता है।"

फलक-यत्र और धी-यंत्र

फलक-यत्र के वर्णन में भास्कराचार्य ने वहुत भूमिका वाँधी है। एक श्लोक में यत्र की प्रशसा की गयी है। दूसरे में सूर्य-वदना और यत्र की पुन प्रशसा। फिर इसे वनाने के लिए निम्न आदेश है.

"फलक-यत्र को आयताकार, ९० अगुल चौडा और १८० अगुल लवा वनाना चाहिए। लंवाई के वीच मे ढीली जजीर लगाकर इसे लटका दे, जिससे यह घूम सके (और सदा ऊर्ध्वाधर रहे)।" फिर इस पर विविध रेखाओ आदि के अकित करने के लिए आदेश है। वीच मे कील रहेगी और इसी कील के सहारे ६० अगुल लवी, अगुल भर



फलक-यंत्र।
यह चित्र भास्कराचार्य के वर्णन के अनुसार वनाया गया है।

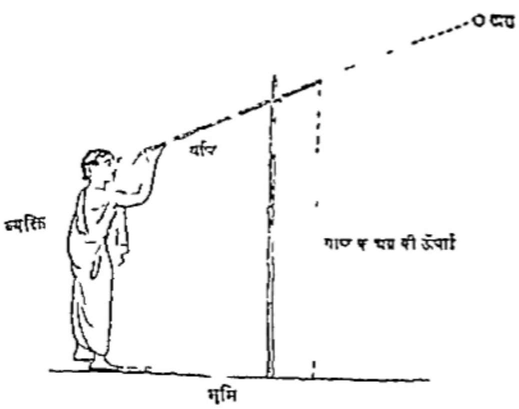
चौड़ी, आधा अंगुल मोटी पट्टी घूमा करेगी। उसमें छेद करके इसे कील पर इस प्रकार पिरोना चाहिए कि पट्टी घूम सके और घुमाने पर उसका एक किनारा केन्द्रीय खड़ी रेखा पर पड़ सके।

यंत्र की उपयोग-विधि यों बतायी गयी है "इस फलक-यंत्र को इस प्रकार रखना चाहिए जिससे इस यंत्र के दोनों ओर सूर्य की रश्मियाँ पड़ें', अर्थात् यंत्र का समतल ऐसी दिशा में हो जाय कि सूर्य उसी समतल में रहे। फिर तो सूर्य का उन्नतांश कील की छाया से जाना जा सकता है। मध्य की पट्टी के किनारे को किसी तारे या ग्रह की दिशा में करके उसका भी उन्नतांश नापा जा सकता है। वस्तुतः यह यंत्र अरब लोगों के अस्तरलाबर (यंत्रराज) का पूर्वज जान पड़ता है (चित्र देखो)।

कुछ पाश्चात्यों की राय है कि भास्कराचार्य यंत्रों के प्रयोग को बहुत आवश्यक नहीं समझते थे, और इसलिए उन्होंने ज्योतिष की उन्नति क्रियात्मक रूप से नहीं की, केवल अच्छी गणना बतायी। यह विश्वास भास्कराचार्य के निम्न श्लोक पर आश्रित है

अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियन्त्रैः
स्वकरकलितयष्टेर्दत्तमूलाग्रदृष्टेः।
न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं
दिवि भुवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम् ॥४०॥

अर्थ—बुद्धिमानों को बड़े ग्रंथ और बहुत-से यंत्रों से क्या प्रयोजन है? हाथ में लकड़ी लेकर, उसके मूल में आँख लगाकर, वेध करने से आकाश, भूमि और जल में दिखायी पड़ने वाली सब वस्तुओं का मान ज्ञात हो सकता है।



धी-यंत्र।

यष्टि के अग्र तथा आँख की ऊँचाइयाँ और दोनों के बीच की क्षैतिज दूरी जान कर आकाशीय पिंडों का उन्नतांश इस यंत्र से नापा जाता था।

यही धी-यंत्र है (धी=बुद्धि)। इसके उपयोग की विधियाँ बतायी गयी हैं "जो हाथ में यष्टि लेकर बाँस

का मूल और अग्र वेध कर अपना और बाँस का अतर और ऊँचाई जान लेता है, कहो वह धीयत्र-विशारद क्या नही जानता ?"

यद्यपि इस अध्याय के प्रथम श्लोक में धी-यत्र की बडी प्रशसा की गयी है, तो भी इसमें सदेह नही कि यह यत्र बहुत ही स्थूल है। भास्कराचार्य ने धी-यत्र पर कई एक उदाहरण दिये है जिनमे गणित के दाँव-पेच बहुत सुन्दर है, परतु स्वय यत्र कितनी सूक्ष्मता से नाप सकेगा इसकी उपेक्षा की गयी है। कुछ प्रश्न तो विशुद्ध त्रिकोणमिति के है। उदाहरणत, एक प्रश्न यह है "हे मित्र! एक सम-भूमि में ऊँचे सीधे बाँस का मूल किसी घर आदि से छिपा हुआ है, केवल उसका अग्र दिखायी देता है। यदि तुम यहीं बैठकर उसकी ऊँचाई और यहाँ से दूरी बताओ, तो हम धीयत्र-विशारदो में तुम को श्रेष्ठ माने।" इसका उत्तर भास्कराचार्य ने स्वय दिया है जिसमे दो स्थानो से बाँस के अग्र के उन्नताशो को नाप कर त्रिकोणमिति से बाँस की दूरी और ऊँचाई की गणना की रीति बतायी गयी है।

स्वयचल यंत्र

इसके बाद ऐसे यत्र का वर्णन है जो स्वय चले। आधुनिक विज्ञान का कहना है कि जब तक कोयला, पेट्रोल आदि से उत्पन्न हुई या अन्य प्रकार से आयी ऊर्जा (एनर्जी) खर्च न होगी तब तक कोई यत्र स्वय चलता न रहेगा। इसलिए स्पष्ट है कि भास्कराचार्य का बताया हुआ यत्र कभी बन न पाया होगा। निर्माण-विधि यो बतायी गयी है अच्छे काठ का खरादा हुआ एक चक्र बनाओ। उसकी परिधि मे बराबर-बराबर दूरियो पर आरे[1] लगाओ। ये आरे (त्रिज्या की सीध मे न रहें, उनके सापेक्ष) एक ओर कुछ झुके रहें। आरे सब एक समान छिद्रवाले (पोले) हो। इन आरो के छिद्रो में इतना पारा छोडो कि वे आधे भर जायें। इसके बाद छिद्रो के मुख को अच्छी तरह बद कर दो। फिर इस चक्र को खराद की भाँति दो आधारो मे पिरोये हुए लोह-दड के बीच मे कस दो। तब (चला देने पर) यह चक्र स्वय घूमता रहेगा।"

इसके बाद एक पनचक्की का वर्णन है जो स्वय बराबर चलती रहेगी। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह भी बेकार है—अपने आप नही चलती रह सकती है।

[1] केंद्र से परिधि तक जाने वाले डंडो को आरा कहते है।

इति० १४

भास्कराचार्य ने स्वय कहा है कि इन यत्रो का गोल मे कोई महत्व नही है, केवल "पूर्व आचार्यों के कथनानुसार यहा पर वर्णन किया गया है"।

अतिम तीन अध्याय

तेरहवा अध्याय "ऋतुवर्णन" है। इसमे वसत इत्यादि ऋतुओ का वर्णन रसिकतापूर्वक किया गया है। ज्योतिष मे इस अध्याय का कोई महत्व नही है। भास्कराचार्य ने स्वय लिखा है कि "यहा ऋतुवर्णन के बहाने गणित की भाति ही किन रसिको का मन हरनेवाली यह छोटी कविता दी गयी है"।

आगामी अध्याय प्रश्नाध्याय है। इसमे ज्योतिष सबधी प्रश्न और उनके उत्तर है। दो उदाहरण देना यहा पर्याप्त होगा। एक प्रश्न यह है "अहर्गण के साधन मे जितने गत अधिमास और अवम हो उनका और उनके शेषो का योग जान कर जो गणक कल्पादि से सौर, चाद्र, सावन अहर्गणो को गणित से बतावे वह बीज-गणितज्ञ पडित, सश्लिष्ट-स्फुट-कुट्टक मे उद्भट, वालरूपी क्षुद्र मृग को भगाने मे सिह के समान विजयी होता है ॥१०॥"

"उज्जयनी से पूर्व मे नब्बे अश पर कोई नगर है और वहीं से पश्चिम नब्बे अश पर कोई (दूसरा) नगर है, और पूर्व मे जो नगर है उससे ईशानकोण मे नब्बे अश पर (तीसरा) और पश्चिम मे जो नगर है उससे वायुकोण मे नब्बे अश पर (चौथा) नगर है। हे गोलक्षेत्रचतुर! कुछ देर अपने चित्त मे इन प्रश्नो पर भली भाति विचार कर, उक्त नगरो के अक्षाश बताओ।" भास्कराचार्य के उत्तर मे इन नगरो का अक्षाश ०°, ०°, ४५° और ३०° निकला है।

अतिम अध्याय का नाम ज्योत्पत्ति है। इसमे कोणो की ज्याओ की गणना करने की रीति बतायी गयी है और कुछ अन्य त्रिकोणमितीय प्रश्नो पर भी विचार किया गया है।

अन्य ग्रथ

करण-कुतूहल नामक ग्रथ मे ग्रहो की गणना के लिए सुगम रीति बतायी गयी है जिस पर कई टीकाएँ लिखी गयी है। इसके अनुसार पचाग बनाने का काम सरलता से किया जा सकता है।

अन्य भाषाओ मे भी भास्कर के ग्रथो का अनुवाद किया गया है। अकबर बादशाह के नवरत्न फैजी ने फारसी मे लीलावती का अनुवाद सन १५८७ ई० मे किया था। शाहजहा बादशाह के समय मे अताउल्लाह रसीदी ने १६३४ ई० मे बीजगणित का अनुवाद किया। कोलब्रुक ने १८१७ ई० मे लीलावती और बीजगणित का

अनुवाद अँग्रेजी में किया। टेलर ने १८१६ ई० मे लीलावती का अनुवाद तथा ई० स्ट्रेची ने बीजगणित का अनुवाद १८१३ ई० में अँग्रेजी में किया। महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री ने गोलाध्याय का अँग्रेजी अनुवाद १८६६ ई० में किया। पडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ने गोलाध्याय और गणिताध्याय दोनो पर सस्कृत और हिंदी में एक अच्छी टीका लिखी है जो नवलकिशोर प्रेस से १९११ और १९२६ ई० में प्रकाशित हुई है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य ने गणित ज्योतिष का विस्तार किया और उपपत्ति सबधी बातो पर पूरा ध्यान दिया, परतु आकाश के प्रत्यक्ष वेध से बहुत कम काम लिया। वेधों के लिए इन्होंने ब्राह्मस्फुटसिद्धात को आधार माना।

किसी-किसी ग्रथ मे भास्कराचार्य रचित मुहूर्त ग्रथ तथा विवाह पटल नामक ग्रथ का भी वर्णन है परतु ये उतने प्रसिद्ध नही हुए।

अध्याय १५

भास्कराचार्य के बाद

उन्नति बंद हुई

भास्कराचार्य के बाद कई ज्योतिषी हुए, परन्तु उनमे भास्कर के समान कोई विख्यात न हो सका, ज्योतिष मे विशेष उन्नति भी भास्कर के बाद न हो पायी, जैसा नीचे के विवरण मे पता चलेगा। नवीन ज्योतिषी साधारणत भाष्य लिख कर या किसी प्राचीन सिद्धात को सत्य मान उसमे करण-ग्रथ बनाकर या फलित ज्योतिष पर ग्रथ लिख कर ही सतोष करने लगे। फिर एक समय ऐसा भी आ गया कि उन्नति करना ही पाप समझा जाने लगा।

बाविलाल कोचन्ना

तैलग प्रान्त के बाविलाल कोचन्ना ज्योतिषी ने एक करण ग्रथ शक १२२० में लिखा था[1] जिसमे फाल्गुन कृष्ण ३० गुरुवार शक १२१९ का क्षेपक[2] दिया है। यह पुस्तक वर्तमान सूर्य-सिद्धात के आधार पर लिखी गयी थी। इस पुस्तक मे कोई बीज-सस्कार नही दिया है जैसा मकरद मे है। मद्रास मे वारन नामक अँग्रेज़ विद्वान ने कालसकलित नामक एक ज्योतिष की पुस्तक १८२५ ई० में लिखी है, जिसमें इस पुस्तक से बहुत कुछ सामग्री ली गयी है। इससे जान पडता है कि मद्रास प्रान्त में इस पुस्तक से उस समय तक पचाग बनाये जाते थे।

[1] इस अध्याय के पृष्ठ २१६ तक की सारी बातें मेरे द्वारा सपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रन्थ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी है।

[2] क्षेपक की परिभाषा के लिए पृष्ठ १८९ पर पाद-टिप्पणी देखो।

वल्लालसेन

मिथिलाधिपति श्री लक्ष्मणसेन के पुत्र महाराजाधिराज वल्लालसेन ने शक १०९० (११६८ ई०) मे अद्भुतसागर नामक सहिता का एक वृहत ग्रथ रचा जो वराहमिहिर की वृहत्सहिता के ढग का ग्रथ है। उसमें गर्ग, वृद्धगर्ग, पराशर, कश्यप, वराहसहिता, विष्णु धर्मोत्तर, देवल, वसन्तराज, वटकणिक, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, यवनेश्वर, मत्स्यपुराण, भागवत, मयूरचित्र, ऋषिपुत्र, राजपुत्र, पचसिद्धातिका, ब्रह्मगुप्त, भट्ट वलभद्र, पुलिशाचार्य, सूर्यसिद्धात, विष्णुचन्द्र और प्रभाकर के अनेक वचन उद्धृत हैं। वराहसहिता मे अध्यायो के नाम 'चार' से प्रकट किये गये है, जैसे ग्रहचार, राहुचार आदि, परतु अद्भुतसागर में अध्यायो के नाम 'आवर्त' रक्खे गये है, जैसे अगस्त्यावर्त मे अगस्त तारे के उदय-अस्त के विषय में है, इत्यादि। वल्लालसेन ने कई आकाशीय घटनाओ का उल्लेख किया है, जिससे जान पडता है कि यह केवल ग्रथकार ही नही थे, वरन् तारो और नक्षत्रो का भी वेध करते थे। बुध-सूर्य-युति और शुक्र-सूर्य-युति का भी परिचय इनको हो गया था। अयन-विन्दुओ के सबध मे भी इन्होने स्वय[1] परीक्षा करके लिखा है।

सब बातो का विचार करने से प्रकट होता है कि अद्भुतसागर वास्तव मे एक बडा और अद्भुत ग्रथ है।

केशवार्क

केशवार्क का बनाया हुआ विवाह-वृदावन नामक एक मुहूर्त ग्रथ है, जिसमें विवाह सबधी मुहूर्तों का अच्छा परिचय है। इसकी टीका भी पीछे की गयी थी। यह गणेश दैवज्ञ के पिता केशवाचार्य से भिन्न थे और उनसे वहुत पहले हुए थे। गणक-तरगिणी के अनुसार इनका समय शक ११६४ (१२४२ ई०) के लगभग ठहरता है, क्योकि गणेश दैवज्ञ की टीका से प्रकट होता है कि ग्रथनिर्माण-काल मे अयन १२ अश था।

[1] सकलवसुधाधिनायश्रीमद्वल्लालसेनदेवेन।
अयनद्वयं ययावत् परीक्ष्य संलिख्यते सवितु ॥
इदानीं दृष्टिसवादादयन दक्षिणं रवे।
भवेत्पुनर्वसोरादौ विश्वादावुत्तरायणम् ॥
गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ४४।

महेंद्रसूरि

महेन्द्रसूरि फीरोजशाह बादशाह की सभा के प्रधान पडित थे। इन्होने यत्र-राज नामक यत्र भी १२९२ शक मे बनाया था। इनकी बनायी यन्त्रराज नामक पुस्तक की टीका इनके शिष्य मलयेन्दुसूरि ने लिखी थी जिसको उपपत्ति के साथ महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने शक १८०४ (१८८२ ई०) मे चन्द्रप्रभा प्रेस मे प्रकाशित की थी। इन्होने सूर्य की परम क्रान्ति २३° ३५′ पायी थी और अयनाश की वार्षिक गति ५४ विकला लिखी है। इस ग्रथ मे पाँच अध्याय है जिनके नाम है—गणिताध्याय, यत्रघटनाध्याय, यत्ररचनाध्याय, यत्रशोधनाध्याय और यत्र-विचारणाध्याय। सुधाकर द्विवेदी समझते है कि यह ग्रथ शायद किसी फारसी ग्रथ का अनुवाद है[1]।

महादेव

महादेव ने पचाग बनाने की सुविधा के लिए कामधेनु नामक करण-ग्रथ शक १२७९ (१३५७ ई०) में बनाया था।

पद्मनाभ

ध्रुवभ्रम यत्र नाम का ग्रथ पद्मनाभ ने १३२० शक के लगभग रचा था जिसमे केवल ३११ श्लोक है। इसमें ध्रुवभ्रमयत्र का वर्णन है जिसमे रात को ध्रुवमत्स्य नामक नक्षत्र पुज को वेध कर के समय का ज्ञान करने की रीति बतायी गयी है। इस ग्रथ की टीका स्वय ग्रथकार ने की है। दिन मे सूर्य के वेध से समय का ज्ञान करने की रीति है जिससे लग्न का ज्ञान भी हो सकता है। २८ नक्षत्रो के योगतारो के मध्योन्नताश भी दिये गये है, जिससे प्रकट होता है कि यह २४ अक्षाश के स्थानो के लिये बनाया गया था।

दामोदर

दामोदर का भटतुल्य नामक आर्यभटानुसारी एक करण-ग्रथ है जिसका आरभ वर्ष शक १३३९ (१४२७ ई०) है, यह पद्मनाभ के शिष्य थे और इन्होने ध्रुवभ्रम यत्र पर टीका लिखी थी। इसमें अयनगति ५४ विकला वार्षिक बतायी गयी है। इन्होने नक्षत्रो के योगतारो के भोगाश और शर दिये है जो अन्य ग्रथकारो के

[1] गणक-तरगिणि पृष्ठ ४९।

विवाद [illegible] के [illegible] [illegible]
[illegible] में [illegible] [illegible]
के प्रसिद्ध [illegible] और [illegible]
[illegible] उनका जन्म [illegible] और [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] किया है। [illegible] प्रसिद्ध [illegible]
भी उन्होंने [illegible] लिखी थी। उनमें प्रारम्भिक [illegible]
ब्राह्म, आर्यभटीय और सूर्यसिद्धान्त, आदि के अनुसार [illegible]

अन्तर देख कर इन्होने लिखा है कि किस ग्रह के लिए कितना वीज-सस्कार देना चाहिए और वताया है कि सदैव वर्तमान घटनाओ को देखकर ग्रहगणित करना चाहिए :—

एव वह्वतर भविष्ये सुगणकं नक्षत्रयोगग्रहयोगोदयास्तदिभि वर्तमानघटनामवलोक्य न्यूनाधिकभगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि । यद्वा तत्कालक्षेपकवर्ष-भोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि[1] ।

ग्रहकौतुक का आरम्भ शक १४१८ (१४९६ ई०) मे हुआ था। इसके अतिरिक्त इन्होने वर्ष ग्रहसिद्धि जातकपद्धति, जातकपद्धति निवृत्ति, ताजकपद्धति, सिद्धातवासना-पाठ, मुहूर्त-तत्त्व, कायस्थादि-धर्मपद्धति, कुण्डाष्टक-लक्षण, गणितदीपिका नामक पुस्तको की रचना की थी। इससे प्रकट है कि ये ज्योतिप की सभी शाखाओ के अच्छे विद्वान थे और ग्रहो की वेध सम्वन्धी वातो को आजकल के वैज्ञानिको की तरह लिखते थे।

गणेश दैवज्ञ

गणेश दैवज्ञ भी अपने पिता के समान ज्योतिप की प्राय सभी शाखाओ के अच्छे विद्वान थे और ग्रहो का वेध करके उनकी ठीक-ठीक गणना करने के पक्ष में थे[2] । इनका मुख्य ग्रथ ग्रहलाघव है जिसमे ग्रहो की गणना करने के लिए ज्या, कोटिज्या आदि से काम नही लिया गया है। यह वडे पाडित्य की वात है। ग्रहलाघव का आरम्भ शक १४४२ (१५२० ई०) है। यह इतना अच्छा ग्रथ समझा गया था कि इसकी कई टीकाएँ हुई। शक १५०८ में गगाधर ने, शक १५२४ मे मल्लारि ने और लगभग शक १५३४ मे विश्वनाथ ने, इसकी टीकाएँ लिखी थी। सुधाकर द्विवेदी ने इस पर उपपत्ति के साथ एक सुन्दर टीका लिखी है जिसमें मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाओ का भी समावेश है। इस ग्रथ का प्रचार महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक ग्वालियर आदि प्रान्तो में अव भी है।

इस ग्रथ में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, पचताराधिकार, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, स्थूल ग्रहण साधन, उदयास्त, छाया, नक्षत्रछाया, शृगोन्नति,

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २५९।

[2] कथमपि यदिद चेद्भूरिकाले श्लथ स्यान्मुहुरपि परिलक्ष्येन्दुग्रहाद्यृक्ष-योगम्। सदमलगुरुतुल्यप्राप्तवुद्धिप्रकाशै. कथितसदुपपत्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये। वृहत्तिथि-चिंतामणि (गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ६३ के अनुसार)।

ग्रहयुति और महापात नामक १४ अधिकार हैं । विश्वनाथ और मल्लारि ने अपनी टीकाओ मे पचाग-ग्रहणाधिकार का नाम भी लिखा है ।

वृहत्तिथिचितामणि और लघुतिथिचितामणि नामक सारणियाँ भी गणेश दैवज्ञ की बनायी हुयी है, जिनसे पचाग के लिए तिथि, नक्षत्र, तथा योगो का साधन बहुत सरलता से और कम समय में किया जा सकता है । इनके अतिरिक्त निम्न-लिखित ग्रथ भी गणेश दैवज्ञ के लिखे हुए हैं —

सिद्धात-शिरोमणि टीका, लीलावती टीका (शक १४६७), विवाह-वृन्दावन टीका (शक १४७६), मुहूर्त तत्त्व टीका, श्राद्धादि निर्णय छन्दोऽर्णव टीका, सुधीरञ्जनी, तर्जनी यन्त्र, कृष्ण जन्माष्टमी निर्णय और होलिका निर्णय ।

लक्ष्मीदास

लक्ष्मीदास शक १४२२ (१५०० ई०) मे भास्कराचार्य के सिद्धात-शिरोमणि की टीका उपपत्ति और उदाहरण के साथ की थी, जिसका नाम है गणिततत्त्व चिंतामणि ।

ज्ञानराज

सिद्धात-सुन्दर नामक करण-ग्रन्थ के कर्ता ज्ञानराज थे । यह वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार बनाया गया है । इसका क्षेपक १४२५ शक का है, इसलिए यही इसका रचना काल समझना चाहिए । पहले गोलाध्याय है जिसमें सृष्टिक्रम, लोकसस्था, आदि, १२ अध्याय है और गणिताध्याय में मध्यमाधिकार आदि ८ अध्याय है । मध्यमाधिकार में बीज-सस्कार की बात भी कही गयी है । यह नही बताया है कि इनके समय में अयनाश क्या था, परतु अयनाश की वार्षिक गति एक कला बतायी है और लिखा है कि मध्याह्न छाया से जाने हुए स्पष्ट सूर्य और गणना से आये हुए स्पष्ट सूर्य का अतर निकाल कर अयनाश ठीक-ठीक ज्ञात कर लेना चाहिए, जैसा सूर्यसिद्धात में बताया गया है ।

सूर्य

सूर्य ज्ञानराज के पुत्र थे । भास्कराचार्य के बीजगणित के भाष्य में इन्होने अपना नाम सूर्यदास लिखा है और एक अन्य ग्रन्थ मे अपना नाम सूर्यप्रकाश लिखा है । लीलावती की टीका गणितामृत-कूपिका इन्ही की लिखी हुई है, जो १४६३ शक में लिखी गयी थी । उस समय इनकी अवस्था ३४ वर्ष की थी । इसलिए इनका जन्म शक १४२९ में हुआ था । इनके लिखे ग्रन्थो के नाम ये है लीलावती टीका, बीज टीका,

श्रीपति पद्धति गणित, बीजगणित, ताजिक ग्रन्थ, काव्यद्वय और बोध-सुधाकर वेदात ग्रंथ। कोलब्रुक लिखते है कि इन्होने सम्पूर्ण सिद्धात-शिरोमणि टीका भी लिखी है, परतु लीलावती की टीका में इन्होने स्वय जिन अपने आठ ग्रथो के नाम लिखे है उनमे यह नाम नही आया है।

अनंत प्रथम

अनत प्रथम ने शक १४४७ में पचाग बनाने के लिए अनत सुधारस नामक ग्रथ लिखा था, जो सुधाकर द्विवेदी के मत से एक सारणी है।

ढुढिराज

ढुढिराज का बनाया जातकाभरण ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है, जिससे जन्मपत्री बनायी जाती है। इन्होने अनन्तकृत सुधारस की टीका भी की है, जिसका नाम सुधारसकरण-चषक है और ग्रहलाघवोदाहरण, ग्रहफलोपपत्ति, पचागफल, कुडकल्पलता ग्रथो को भी लिखा है। इन्होने अपना जन्मकाल कही नही लिखा है, परतु ज्ञानराज के ये शिष्य थे, इसलिए उनके पुत्र सूर्य के समकालीन अवश्य रहे होगे।

नीलकठ

नीलकठ ने ताजिक नीलकठी नामक बहुत प्रसिद्ध ग्रथ लिखा है, जिसे ज्योतिषी लोग वर्षफल बनाने के लिए अब भी काम में लाते है। इसमे फारसी और अरबी के बहुत से शब्द आये है। ये अकबर बादशाह के दरबार के सभा-पडित थे और मीमासा तथा साख्यशास्त्र के अच्छे विद्वान थे। नीलकठी का निर्माण-काल शक १५०९ (१५८७ ई०) है। इस पर विश्वनाथ ने उदाहरण के साथ एक टीका शक १५५१ में की थी। सुधाकर द्विवेदी लिखते है कि इन्होने एक जातकपद्धति भी लिखी है, जो मिथिला प्रात में बहुत प्रसिद्ध है।

रामदैवज्ञ

रामदैवज्ञ नीलकठ के छोटे भाई थे। इनका शक १५२२ का रचा मुहूर्त-चिंतामणि ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है और ज्योतिष के विद्यार्थियो को पढ़ाया जाता है। इस प्रान्त में यात्रा, विवाह, उत्सव आदि सभी बातो के लिए इसी ग्रन्थ के आधार पर साइत निकाली जाती है। इस ग्रथ पर पीयूषधारा नामक टीका इनके भतीजे नीलकठ के पुत्र गोविन्द ने लिखी है, जो बहुत प्रसिद्ध है।

इनका रचा रामविनोद नामक एक करण-ग्रथ भी है जिसे अकबर बादशाह के कृपापात्र जयपुर के महाराजा रामदास की प्रसन्नता के लिए शक १५१२ मे

पचाग बनाने के लिए लिखा गया था। इसमें वर्षमान, क्षेपक और ग्रहगति वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार दिये गये है। बीज-सस्कार भी दिया है। इसमें ११ अधिकार और २८० श्लोक है।

कृष्ण दैवज्ञ बादशाह जहाँगीर के प्रधान पडित थे। भास्कराचार्य के बीजगणित की नवाकुर नामक सुन्दर टीका इनकी लिखी हुई है जिसमे कई नवीन कल्पनाएँ है। सूर्य-सिद्धान्त की गूढार्थप्रकाशिका टीका के लेखक रगनाथ लिखते है कि कृष्ण-दैवज्ञ ने श्रीपतिपद्धति की टीका और छादक-निर्णय भी लिखा है। इन्होंने अपना समय नही लिखा है। सुधाकर द्विवेदी का अनुमान है कि इनका जन्मकाल शक १४८७ के लगभग होगा।

गोविंद दैवज्ञ

गोविंद दैवज्ञ नीलकठ दैवज्ञ के पुत्र और राम दैवज्ञ के भतीजे थे। इन्होने मुहूर्त चिन्तामणि की पीयूषधारा टीका काशी में शक १५२५ (१६०३ ई०) मे लिखी थी। ये ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, साहित्य, आदि, में निपुण थे और १४७१ शक के आश्विन शुक्ल ७ रविवार पुनर्वसु नक्षत्र मे उत्पन्न हुए थे।

विष्णु

विदर्भ देश में पाथरी नाम का एक प्रसिद्ध गाँव है जिससे पच्छिम १० कोस पर गोदा नदी के उत्तर किनारे पर गोलग्राम एक गाँव है। इसमे एक कुल ऐसा था जिसमें बहुत-से विद्वान और ग्रथकार हो गये है। विष्णु इसी कुल के थे। इनका लिखा सौरपक्षीय एक करण-ग्रथ है जिसका आरम्भवर्ष शक १५३० है। इसकी टीका उदाहरण के साथ इनके भाई विश्वनाथ ने शक १५४५ में की थी। सिद्धात-तत्त्व-विवेक के कर्त्ता प्रसिद्ध कमलाकर इसी वश के थे।

मल्लारि

मल्लारि उपर्युक्त विष्णु के वश में थे। इन्होने ग्रहलाघव पर उपपत्ति सहित एक सुन्दर टीका लिखी है जिससे जान पडता है कि वेध के कामो में ये बडे निपुण थे और समझते थे कि प्राचीन ज्योतिष ग्रथो में गणना का जो भेद पड जाता है उसका कारण क्या है और बीज-सस्कार की आवश्यकता क्यो पडती है। इन्होंने अपना समय नही लिखा है परतु सुधाकर द्विवेदी का मत है कि ये शक १४९३ में उत्पन्न हुए होगे।

विश्वनाथ

विश्वनाथ भटोत्पल के समान टीकाकार थे और पूर्ववर्णित गोलग्राम मे उत्पन्न हुए थे। ताजिक नीलकठी की टीका में वे लिखते है कि शक १५५१ (१६२९ ई०) मे यह टीका पूरी हुई थी। विष्णुकृत करण-ग्रन्थ की टीका १५४५ मे की गयी थी। इन्होने जो उदाहरण दिये है वे शक १५३४ के है। इनके उदाहरण मुख्यत १५०८, १५३०, १५३२, १५४२ और १५५५ शक के है।

इन्होने सूर्य-सिद्धात पर गहनार्थप्रकाशिका तथा सिद्धातशिरोमणि, करण-कुतूहल , मकरद, ग्रहलाघव, गणेश दैवज्ञ कृत पातसारणी, अनत सुधारस और रामविनोद करण पर टीकाएँ तथा नीलकठी पर समातत्रप्रकाशिका टीका (शक १५५१ मे) लिखी है। इन सब ग्रथो को इन्होने काशी मे लिखा था।

नृसिह

नृसिह भी गोलग्राम के प्रसिद्ध वश मे उत्पन्न हुए थे और अपने चाचा विष्णु तथा मल्लारि से शिक्षा पायी थी। शक १५३३ में सूर्यसिद्धात पर सौरभाष्य नामक टीका उपपत्ति के साथ तथा सिद्धात-शिरोमणि पर वासना वार्तिक टीका १५४३ शक मे लिखी थी, जिनमे पर्याप्त विशेषता है। इससे प्रकट होता है कि ये गणित ज्योतिष में बडे निपुण थे।

रंगनाथ

रगनाथ विदर्भ प्रान्त के पयोष्णी नदी के तीर पर दधिग्राम के प्रसिद्ध कुल मे उत्पन्न हुए थे। इन्होने सूर्यसिद्धात पर गूढार्थप्रकाशिका टीका लिखी है, जो शक १५२५ (१६०३ ई०) में, जिस दिन इनके पुत्र मुनीश्वर का जन्म हुआ था, प्रकाशित हुई थी। ये ज्योतिष सिद्धान्त के अच्छे आचार्य थे, क्योकि अपनी टीका उपपत्ति सहित लिखी है।

मुनीश्वर

मुनीश्वर रगनाथ के पुत्र थे और शक १५२५ में उत्पन्न हुए थे। इन्होने लीलावती पर निसृष्टार्थदूती लीलावती-विवृति नामक टीका, सिद्धान्त-शिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय पर मरीचि नामक टीका और सिद्धात सार्वभौम नामक स्वतत्र सिद्धात ग्रन्थ शक १५६८ मे रचा था। गणक-तरगिणी के अनुसार इन्होने पाटीसार नामक स्वतत्र गणित पर भी पुस्तक लिखी थी। ये प्रसिद्ध भास्कराचार्य के बडे

प्रशसक थे। सिद्धात सार्वभौम के वर्षमान, ग्रहमगण, आदि सूर्य-सिद्धात से लिये गये है।

इनका दूसरा नाम विश्वरूप था। ये शाहजहाँ बादशाह के आश्रय में थे और उनके राज्याभिषेक का समय अपनी पुस्तक में लिखा है।

दिवाकर

दिवाकर गोलग्राम के प्रसिद्ध ज्योतिषियो के कुल में शक १५२८ मे उत्पन्न हुए थे। शक १५४७ में जातक मार्गपद्म नामक जातक ग्रथ लिखा था। केशवी जातक पद्धति पर प्रौढमनोरमा टीका भी इन्ही की लिखी हुई है। इन्होने शक १५४१ मे मकरदसारिणी पर मकरद विवरण नामक उदाहरण सहित टीका भी लिखी थी।

कमलाकर

कमलाकर ज्योतिष के एक प्रसिद्ध आचार्य है। इनका जन्म शक १५३० (१६०८ ई०) के लगभग हुआ था।

सिद्धाततत्त्वविवेक कमलाकर का प्रसिद्ध सिद्धात-ग्रथ है, जिसे इन्होने काशी में शक १५८० में प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार लिखा था। इसमें बहुत-सी नवीन बातो का समावेश है, परतु इन्होने लिखा है कि सूर्य-सिद्धात की गणना से यदि वेधसिद्ध गणना में अतर दिखाई पडे तो भी उसमें बीज-सस्कार करके गणना न करनी चाहिए। एक प्रकार से इन्होने अमावस्या, पूर्णिमा आदि की परिभाषा ही बदल दी, अमावस्या वह क्षण नही रह गयी जब सूर्य और चद्रमा के भोगाशों का अतर वस्तुत शून्य हो, अमावस्या वह क्षण हो गयी जब सूर्य-सिद्धात के अनुसार सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का अतर शून्य निकले। इस प्रकार यह भी सभव हो गया कि सूर्य-ग्रहण का मध्य अमावस्या से कई घटे बाद या पहले हो। इस विषय पर इनके वचन[1] सूर्य-सिद्धात के अधभक्त बडे जोरो से अपने समर्थन में उपस्थित करते है। इन्होने भास्कराचार्य और मुनीश्वर की कई ठीक बातो का खडन केवल इसलिए किया है कि ये सूर्य-सिद्धान्त के अनुकूल नही है। स्पष्ट है कि कमलाकर के समय में ज्योतिष का पतन इतना हो चुका था कि उन्नति करना भी पाप समझा जाने लगा।

[1] अदृष्टफलसिद्धयर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि।
गणित यद्वि दृष्टार्थं तदृष्टयुद्भवत सदा॥
मध्यमाधिकार, ३२६।

सिद्धाततत्त्वविवेक में कुछ नयी बातें भी लिखी गयी है, जिनमे पता चलता है कि ये विदेशी ज्ञान को एक हद तक अपनाना अनुचित नही समझते थे। किसी भारतीय ज्योतिष ग्रथ मे ध्रुवतारा के चलने की बात नही लिखी है, परतु इन्होने लिखी है। स्थानो के पूरब-पच्छिम अतर को पुराने ज्योतिषी रेखाश या देशान्तर कहते थे, परतु इन्होने इसका नाम 'तूलाश' रक्खा है, जो फारसी के 'तूल' (लबाई) शब्द से निकला है। विषुववृत्त पर खालदात्त नगर को मुख्य याम्योत्तर वृत्त पर समझ कर २० नगरो के अक्षाश और तूलाश दिये गये है जिसके अनुसार कुछ नगरो के अक्षाश और तूलाश नीचे दिये जाते है —

	अक्षाश		तूलाश	
	अश	कला	अश	कला
उज्जयिनी	२२	१	११२	०
इद्रप्रस्थ	२८	१३	११४	१८
सोमनाथ	२२	३५	१०६	०
काशी	२६	५५	११७	२०
लखनऊ	२६	३०	११४	१३
कन्नौज	२६	३५	११५	०
लाहौर	३१	५०	१०९	२०
काबुल	३४	४०	१०४	०
समरकद	३९	४०	९९	०

इसमें स्वय काशी का अक्षाश डेढ़ अश के लगभग अशुद्ध है। तूलाशो मे भी २ अश तक न्यूनता और अधिकता है। खालदात्त का औसत देशातर यहाँ के आंकडो से ३४° ५२′ ग्रिनिच से पश्चिम निकलता है। वहाँ भूमध्य रेखा पर कोई नगर नही है। निकटतम नगर जिसका नाम सभवत खालदात्त हो सकता है कावेंडेल्लो है जिसका देशातर ३४° ५०′ पश्चिम और अक्षाश ७°०′ दक्षिण है।

इन्होने तुरीययत्र से वेध करने की रीति विस्तार के साथ लिखी है। यह भी लिखा है कि सूर्यग्रहण काल में चद्रमा पर रहनेवालों को पृथ्वी पर ग्रहण लगा हुआ दिखायी पडता है जो बिलकुल ठीक है। मेघ, भूकप, उल्कापात का कारण भी लिखा है जो कुछ-कुछ ठीक है। अकगणित, रेखागणित, क्षेत्रविचार और ज्यासाधन की रीतियाँ कई बातो मे बिलकुल नयी है। अधिकाश सिद्धात-ग्रथो में ३४३८ की त्रिज्या के अनुसार ज्याओ की सारणी दी गयी है, परतु कमलाकर के ग्रथ में त्रिज्या

६० मान कर प्रत्येक अश की ज्या दी गयी है जो गणना के लिए वडी मुगम है। ग्रह के भोगाश से विषुवाश निकालने की सारणी भी है। यह वात किसी और सिद्धात ग्रथ में नही है। इन सब नवीन वातो को लिखते हुए भी ये ज्योतिष की शोध के विलकुल विरुद्ध थे यह दु खजनक वात है।

पूर्वलिखित मुनीश्वर इनके समकालीन थे और दोनो एक दूसरे के प्रवल विरोधी थे। मुनीश्वर भास्कराचार्य के पक्ष में थे और ये सूर्य-सिद्धात के पक्ष में।

सिद्धाततत्त्वविवेक ज्योतिष की आचार्य परीक्षा मे नियत है और इस पर प्रतापगढ (अवध) के मेहता सस्कृत विद्यालय के ज्योतिष के अध्यापक प० गगाधर मिश्र ज्योतिषाचार्य की अच्छी टीका है। इसका एक सस्करण सुधाकर द्विवेदी और मुरलीधर झा की टिप्पणी सहित व्रजभूषणदास कपनी ने सन १९२४ मे प्रकाशित किया था।

नित्यानद

नित्यानद कुरुक्षेत्र के समीप इद्रपुरी के रहने वाले थे और सवत १६९६ (१६३९ ई०) में सिद्धातराज नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमे गोलाध्याय और गणिताध्याय के प्राय सव अधिकार है। विशेषता यह है कि इसमें वर्षमान सायन है और इसी के अनुसार ग्रहो के भगणो के मान दिये गये है, और मीमासाध्याय में कहा गया है कि सायन मान ही देवर्षि के मत के अनुसार ठीक है, निरयण नही। इनके अनुसार एक कल्प में सावन दिनो की सख्या १५७७८४७७४८१०१ है। इसलिए १ वर्ष में ३६५ २४२५ दिन अथवा ३६५ दिन १४ घडी ३३ पल ७ ४ विपल होते है। इस समय सूक्ष्म यत्रो से निकाला हुआ सायन वर्ष का मान ३६५ दिन १४ घडी ३१ पल ५३ ४ विपल है।

ग्रहो को स्पष्ट करने के लिए वीज-सस्कार करने को भी कहा गया है।

भग्रहयुत्यधिकार में ८४ तारो के भोगाश और शर दिये गये है।

अध्याय १६

जयसिंह और उनकी वेधशालाएँ

जीवनचरित्र

महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय जयपुर के थे और उनका जन्म १६८६ ई०[१] में हुआ था[२]। तेरह वर्ष की आयु में वे अंबर राज की गद्दी पर बैठे। उसके थोड़े ही वर्ष बाद औरंगज़ेब का देहांत हुआ। अपना राज स्थापित करने में उन्हें पहले तो कठिनाई हुई, परंतु १७०८ में उन्होंने पूरे प्रांत पर अपना अधिकार कर लिया। १७१९ में मुहम्मदशाह ने उन्हें आगरा प्रांत का शासक नियुक्त किया और कुछ ही काल बाद मालवा का। उनकी मृत्यु १७४३ में हुई।

जयसिंह का काल अत्यंत अशांतमय था, परंतु उन्होंने अधिकतर चाणक्य-नीति से काम लिया और सफलता पायी। उन्होंने नयी राजधानी स्थापित की, जिसका नाम जयनगर अथवा जयपुर पड़ा। उनके समय में वह विद्या का केंद्र बन गया। उन्होंने बहुत-सी धर्मशालाएँ और सराय बनवाये, और पाँच प्रमुख नगरों में ज्यौतिष वेधशालाएँ बनवायी। उन्होंने वैज्ञानिक अन्वेषण का नवीन मार्ग खोज निकाला और उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। इस बारे में उनकी लगन आज भी अनुकरणीय है। उनकी वेधशालाएँ भारतीय इतिहास के अंधकार-मय काल में परम उज्ज्वल प्रकाश-स्तंभ की तरह उत्पन्न हुईं।

बाल्यकाल से ही जयसिंह को ज्योतिष से प्रेम था और, जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है, सदा अनुशीलन करते रहकर इसके सिद्धांतों और नियमों का प्रगाढ़ ज्ञान

[१] यह वही वर्ष है जिसमें प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन की प्रिंसिपिया नामक पुस्तक समाप्त हुई। इस पुस्तक में गति-विज्ञान के आधुनिक सिद्धांत हैं।

[२] इस अध्याय की अधिकांश बातें के महोदय द्वारा लिखित 'ए गाइड टु दि ऑब्ज़र्वेटरीज़ ऐट दिल्ली, जयपुर, उज्जैन ऐंड बनारस' में ली गयी हैं।

उन्होंने प्राप्त किया। परतु उन्होंने देखा कि उस समय की सारणियों से गणना करने पर परिणाम दृक्तुल्य नही निकलता, अर्थात उन्होंने देखा कि आकाशीय पिंडो की वेधप्राप्त और गणनाप्राप्त स्थितियो में अतर रहता है। इसलिए उन्होंने स्वय नवीन सारणियाँ बनाने का सकल्प किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने प्रत्येक रीति से सफलता पाने की चेष्टा की। उन्होंने हिंदू, मुसलिम और यूरोपियन ग्रथो का अध्ययन किया। कई विदेशी ग्रथो को एकत्रित किया और उनका अनुवाद करा लिया। उन्होंने इन सब कामो के लिए कई विद्वान लगा रक्खे थे और उनमे से कुछ को तो उन्होंने विदेश भेजा कि वे वहाँ से काम सीख कर आयें। उन्होंने कुछ यूरोपियन तथा अन्य देश के ज्योतिषियो को अपने यहाँ आमत्रित कर लिया। पहले उन्होंने दिल्ली में एक बडी-सी वेधशाला बनवायी और सात वर्षो तक सावधानी से वेध आदि करते रहे, जिसका मुख्य उद्देश्य था एक नवीन तारा-सूची बनाना। पीछे उन्होंने जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा में भी वेधशालाएँ बनवायी।

ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया

जयसिंह के लेखो से, तथा अन्य सामग्री से इस बात का पता चलता है कि वे निम्न ग्रथो से परिचित थे टालमी की ऐलमैजेस्ट, उलूगबेग की ज्यौतिप सारणियाँ, यत्रराज (ऐस्ट्रोलेब) पर कुछ ग्रथ, ला हायर की ज्यौतिप सारणियाँ, फ्लैमस्टीड की हिस्टोरिया सेलेस्टिस ब्रिटैनिका, यूक्लिड की ज्यामिति, समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति पर कुछ पुस्तके और लघुगणक (लॉगरिथ्म) बनाने की रीति। अवश्य ही उन्होंने अन्य पुस्तकें भी पढी होगी, परतु उनका पता लगना असभव है, क्योकि उनका पुस्तकालय अब नष्ट हो गया है।

टालमी के सिनटैक्सिस नामक ग्रथ ने यूरोप में एक हजार वर्षो तक राज किया और अरब वालो में भी अनुवाद के बाद इस ग्रथ का राज लगभग उतने ही काल तक बना रहा। जयसिंह इस पुस्तक से अत्यत प्रभावित थे और उन्होंने इसका अनुवाद अरबी पाठ से कराया। अनुवादकर्ता जगन्नाथ नाम के एक पडित थे जो जयसिंह के ज्योतिषियो के प्रधान थे। जगन्नाथ ने इस पुस्तक का नाम सम्राट-सिद्धात रक्खा। जगन्नाथ ने लिखा है कि जयसिंह को नवीन यत्र बनाने का और नवीन रीतियाँ निकालने का बडा शौक था और इसमें वे बहुत चतुर थे। वेधशाला के लिए नाडी-यत्र, गोल-यत्र, दिगश-यत्र, दक्षिणोदिग्भित्ति, वृत्त-षष्ठाशक, सम्राट-यत्र और जयप्रकाश ये यत्र आवश्यक बताये गये है।

जयसिंह की सारणियाँ

ज़िज मुहम्मदशाही नाम का सारणी-समूह जयसिंह के आदेशानुसार बना। इसका नाम उस समय के सम्राट मुहम्मद शाह के नाम पर रक्खा गया था। इस ग्रंथ की एक अपूर्ण प्रति जयपुर में है, एक संपूर्ण फारसी अनुवाद ब्रिटिश म्यूज़ियम में है। यह सारणी उलूग बेग की सारणी को परिशोधित करके बनायी गयी थी। भूमिका के अनुसार "उलूग बेग की सारणी ८४१ हिजरी के लिए थी। ज़िज मुहम्मद-शाही ११३८ के लिए है, अर्थात उलूग बेग की सारणी को बने २९७ वर्ष हो गये है। इतने समय मे अयन ४ अंश ८ विकला हुआ। ज़िज मुहम्मदशाही में क्रांति आदि का मान गोल से लिया गया है।" आगे चल कर यह लिखा है "जयसिंह ने देखा कि तारो की स्थितियाँ प्रचलित सारणियों से, उदाहरणत सईद गुरगानी और खाकानी की नवीन सारणियों से या तसहीलात मुल्ला चाँद अकबरशाही से, या हिंदू या यूरोपीय ग्रथो से, अशुद्ध निकलती है और वेधप्राप्त स्थितियो से बहुत अतर पड़ता है। विशेष कर अमावस्या के बाद चाँद दिखायी पडने में गणना और आँख से देखी बात में मेल नही है। परतु इन बातो पर धर्म-कर्म और राज्य की बातें आश्रित है। फिर, ग्रहो के उदय-अस्त मे भी वेध और गणना में अतर रहता है, सौर तथा चाद्र ग्रहणो मे, और अन्य कई बातो में भी, बहुत अतर पडता है। तो उन्होने परम शक्तिमान सम्राट (मुहम्मद शाह) से इस बात की चर्चा की। उन्होने प्रसन्न होकर उत्तर दिया कि आप ज्योतिष के सब भेद को जानते है, आपने इसलाम के ज्योतिषियो और गणितज्ञो को, ब्राह्मणो और पडितो को, तथा यूरोप के ज्योतिषियो को एकत्रित किया है और वेधशाला बनवायी है, तो आप ही इस प्रश्न को हल करने का कष्ट उठायें, जिससे गणना से मिले समय और घटना के वस्तुत होने के समय का अतर मिट जाय।

"यद्यपि यह अत्यन्त कठिन कार्य था, तो भी उन्होने इस आज्ञा का पालन करने के लिए कमर कसा और दिल्ली में वेधशाला के योग्य कई यंत्र बनवाये जैसे समरकद में बने थे और जो मुसलमानी ग्रथो के अनुसार थे, जैसे पीतल का ज़ातुल-हल्का, जिसका व्यास वर्तमान गज से तीन गज़ था, और ज़ातुल शब्तैन, और ज़ातुल-ज़कतैन, और सद्स-फखरी और शामला।

"परतु यह देखकर कि पीतल के यंत्र उतने सूक्ष्म वेध नही कर सकते थे जितना उन्होंने समझा था, क्योंकि ये यंत्र छोटे होते है, उनमें कला के अक नही बन पाते, और उनकी धुरी घिस जाती है और उनमें हचक उत्पन्न हो जाता है, वृत्त के केंद्र हट

उन्होने प्राप्त किया। परतु उन्होने देखा कि उस समय की सारणियों से गणना करने पर परिणाम दृक्तुल्य नही निकलता, अर्थात उन्होने देखा कि आकाशीय पिंडो की वेधप्राप्त और गणनाप्राप्त स्थितियो में अतर रहता है। इसलिए उन्होने स्वय नवीन सारणियाँ बनाने का सकल्प किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होने प्रत्येक रीति से सफलता पाने की चेष्टा की। उन्होने हिंदू, मुसलिम और यूरोपियन ग्रथो का अध्ययन किया। कई विदेशी ग्रथो को एकत्रित किया और उनका अनुवाद करा लिया। उन्होने इन सब कामो के लिए कई विद्वान लगा रक्खे थे और उनमें से कुछ को तो उन्होने विदेश भेजा कि वे वहाँ से काम सीख कर आये। उन्होने कुछ यूरोपियन तथा अन्य देश के ज्योतिषियो को अपने यहाँ आमत्रित कर लिया। पहले उन्होने दिल्ली मे एक बडी-सी वेधशाला बनवायी और सात वर्षों तक सावधानी से वेध आदि करते रहे, जिसका मुख्य उद्देश्य था एक नवीन तारा-सूची बनाना। पीछे उन्होने जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा मे भी वेधशालाएँ बनवायी।

ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया

जयसिंह के लेखो से, तथा अन्य सामग्री से इस बात का पता चलता है कि वे निम्न ग्रथो से परिचित थे टालमी की ऐलमैजेस्ट, उलूगबेग की ज्यौतिष सारणियाँ, यत्रराज (ऐस्ट्रोलेब) पर कुछ ग्रथ, ला हायर की ज्यौतिष सारणियाँ, फ्लैमस्टीड की हिस्टोरिया सेलेस्टिस ब्रिटैनिका, यूक्लिड की ज्यामिति, समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति पर कुछ पुस्तकें और लघुगणक (लॉगरिथ्म) बनाने की रीति। अवश्य ही उन्होने अन्य पुस्तकें भी पढी होगी, परतु उनका पता लगना असभव है, क्योकि उनका पुस्तकालय अब नष्ट हो गया है।

टालमी के सिनटैक्सिस नामक ग्रथ ने यूरोप में एक हजार वर्षो तक राज किया और अरब वालो में भी अनुवाद के बाद इस ग्रथ का राज लगभग उतने ही काल तक बना रहा। जयसिंह इस पुस्तक से अत्यत प्रभावित थे और उन्होने इसका अनुवाद अरबी पाठ से कराया। अनुवादकर्ता जगन्नाथ नाम के एक पडित थे जो जयसिह के ज्योतिषियों के प्रधान थे। जगन्नाथ ने इस पुस्तक का नाम सम्राट-सिद्धात रक्खा। जगन्नाथ ने लिखा है कि जयसिंह को नवीन यत्र बनाने का और नवीन रीतियाँ निकालने का बडा शौक था और इसमे वे बहुत चतुर थे। वेधशाला के लिए नाडी-यत्र, गोल-यत्र, दिगश-यत्र, दक्षिणोदिग्भित्ति, वृत्त-षष्ठाशक, सम्राट-यत्र और जयप्रकाश ये यत्र आवश्यक बताये गये है।

राज है जिनकी रचना सब एक प्रकार की नहीं है। साधारण यंत्र में धातु का एक वृत्त होता है जो अंकित रहता है और एक कड़ी से लटकता रहता है। उस पर एक पट्टी घूम सकती है जिसको आकाशीय पिंड की दिशा में साधा जाता है। इस प्रकार उस पिंड का उन्नतांश ज्ञात हो जाता है।

अरब वाले बहुत पहले से ही अच्छे यंत्रराज बनाने लग गये थे। सत्रहवीं शताब्दी तक यह प्रधान यंत्र था। साधारणतः यह पीतल का बनता था और इसका व्यास २ इंच से लेकर कई फुट तक होता था। अच्छे यंत्रराजों में गणना की सुविधा के लिए कई पत्र रहते थे जिन पर विशेष रेखाएँ खिंची रहती थीं। इनसे लेखाचित्रीय रीतियों से वही फल प्राप्त किया जा सकता था जो लंबी गणना से प्राप्त होती थी। संक्षेप में यंत्रराज की रचना निम्न प्रकार की होती है

यंत्रराज का उदर यह धातु का गोल पत्र होता है जिसकी बारी उठी हुई होती है, अर्थात यह छिछली थाली के समान होता है। यंत्र के अन्य भाग इसी में डाले जाते हैं। इसको अरबी में उम्म (= माँ) कहते हैं।

उम्म के भीतर जाने योग्य एक वृत्ताकार पत्र में झँझरी की तरह कटा रहता है। देखने में ऐसा जान पड़ता है कि बहुत-सी पत्तियाँ बनी हैं, परंतु ये पत्तियाँ अनियमित स्थितियों में नहीं रहतीं। प्रत्येक पत्ती की नोक सावधानी से ठीक स्थान पर बनायी जाती है और किसी तारे की स्थिति सूचित करती है। उम्म के भीतर रेखाएँ खिंची रहती हैं, या उम्म के भीतर डाले जाने वाले पत्र पर रेखाएँ खिंची रहती हैं जो झँझरी के खुले भागों से दिखायी पड़ती हैं। इस प्रकार तारों के निर्देशांक पढ़े जा सकते हैं। इस झँझरी वाले पत्र को अरबी में अंकबूत (= मकड़ी) कहते हैं।

यंत्रराज की पीठ पर धातु की एक पट्टी घूमती है। इस पट्टी के प्रत्येक सिरे पर समकोण बनाती हुई एक छोटी पट्टी होती है। इन दो छोटी पट्टियों में एक-एक छेद होता है। तारे को इन्हीं छेदों में से देखा जाता है। इस प्रकार लंबी पट्टी, जिसे अरबी में अलहिदाद कहते हैं, किसी भी तारे की दिशा में कर दी जा सकती है। इसे हम दर्शनी कहा करेंगे।

ऊपर बताये गये वृत्ताकार धातुपत्र और दर्शक एक कील के बल घूमते हैं जिसे अरबी में कुत्ब कहते हैं। इस उद्देश्य से कि कील निकल न पड़े उसमें चौकोर छेद करके एक कीलक पहना कर कस दिया जाता है। इस कीलक का मुंड बहुधा घोड़े के मुंड की आकृति का बना दिया जाता था। इसी से अरब वाले इसे फरस (= घोड़ा) कहते थे।

जाते है, और यत्र के समतल विचलित हो जाते है, वे इस परिणाम पर पहुँचे कि हिपार्कस और टालमी के वेधो मे अशुद्धियाँ इन्ही कारणो से उत्पन्न हुई होगी।

"इसलिए उन्होने दारुल-खिलाफत शाह जहानाबाद (दिल्ली) में अपने आविष्कार किये यत्र बनवाये, जैसे जयप्रकाश और रामयत्र और सम्राट-यत्र, जिसका अर्धव्यास १८ हाथ है और जिसमें एक कला डेढ जौ के बराबर है। इन्हें पत्थर और चूने से बनवाया, जो पूर्णतया स्थिर रहते है, और उनके बनाने में ज्यामिति के नियमो पर ध्यान रक्खा गया और उन्हे याम्योत्तर तथा स्थान के अनुसार साधा गया, और नापने तथा स्थायी करने मे सावधानी रक्खी गयी। इस प्रकार वृत्तो के हिलने, केद्रो के हिलने तथा हटने, और कलाओ की नापो में सब असमानता दूर हो गयी। इस प्रकार वेधशाला बनाने की शुद्ध रीति स्थापित हुई और वह अतर जो तारो और ग्रहो की गणना-प्राप्त तथा वेधप्राप्त स्थितियों में था दूर कर दिया गया।

"और इन वेधो की सचाई की परीक्षा लेने के लिए उन्होने उसी प्रकार के यत्र सवाई जयपुर, मथुरा, बनारस और उज्जैन में बनवाये। जब ये वेधशालाएँ बन गयी तो देशातरो का सस्कार करने पर सब जगह के वेधो में एकता पायी गयी।"

" जब वेधशालाएँ बन गयी तो तारो की स्थितियाँ प्रति दिन देखी जाने लगी। जब इस काम में कई वर्ष बीत चुके तो समाचार मिला कि यूरोप में हाल मे कई वेधशालाएँ बनी है और वहाँ के विद्वान भी इसी प्रकार के काम में लगे है और वे बराबर परिश्रम कर रहे है कि ज्योतिष की सूक्ष्मताओ को शुद्धता से नापा जाय।

"इस कारण पादरी मैन्युअल के साथ कई चतुर व्यक्तियो को उस देश में भेजा गया और नवीन सारणियाँ मँगा कर, जो तीस ही साल पहले रची गयी थी, और उसके पहले की भी सारणियाँ मँगा कर और उनकी जाँच करके वेधो से तुलना की गयी, तो पता चला कि चद्रमा की स्थिति में आधे अश का अतर पडता है। इसलिए वे इस परिणाम पर पहुँचे कि यूरोप के यत्र उतनी नाप के और उतने बडे व्यास के नही बने थे, इसीसे उनसे जो गतियाँ नापी गयी थी वे पूर्णतया सच्ची नही थी[1]। "

यत्रराज

जयपुर में यत्रराजों (ऐस्ट्रोलेबो) का अच्छा सग्रह है। जयसिंह ने पहले बडे यत्रराजों से काम लेना चाहा, परतु ये सतोषप्रद न निकले। जयपुर में सात यत्र-

[1] फ्लैमस्टीड का अधिकाश काम भित्ति-यत्र से हुआ था, जिसका अर्धव्यास ७ फुट था। फ्लैमस्टीड के पास दो दूरदर्शक भी थे।

पृष्ठ है जिसका अक्ष क ख है। जब सूर्य याम्योत्तर[1] में रहता है तो कोर क ख की परछाई (प्रतिच्छाया) ठीक जड छ ज पर पडती है, परतु इसके कुछ समय पहले च झ और छ ज के बीच कही पडेगी। मान लो तब क ख की परछाई ट ठ पर पडती है। तो वारी (किनारा) च छ अथवा झ ज पर खुदे अशाकनो से ठीक पता चल जाता है कि कितने घंटों में सूर्य मध्याह्न पर आयेगा। यही होराकोण है[2]।

कोर क ख पर अँगुली या छडी रख कर और उसे आवश्यकतानुसार क या ख की दिशा मे हटा कर पता लगाया जा सकता है कि कोर के किस विंदु की परछाई विंदु ठ पर पड रही है। मान लो कि पता चला कि वह विंदु थ है। फिर मान लो कि विंदु ज से रेखा क ख पर गिराया गया लव रेखा ज त है। तो क ख पर खुदे हुए अशाकनो को पढने से कोण त ज थ का मान ज्ञात हो जाता है। यही क्राति है।

यदि सूर्य के बदले किसी तारे का वेध करना हो तो ज झ के ऐसे विंदु पर आँख लगा कर देखना होगा कि वह तारा रेखा क ख पर दिखायी पडे, अर्थात वह समतल ठ क ख में रहे, फिर पता लगाना होगा कि क ख का कौन-सा विंदु तारे के सीध में है। तब ज ठ और त थ के मानों से तारे का होराकोण और क्राति इन दोनो का पता चल जायगा।

होराकोण से विषुवाश की गणना की जा सकती है, और विषुवाश और क्राति ये ही आकाशीय पिंड के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्देशाक है। इनके ज्ञात हो जाने पर आकाश में पिंड की स्थिति पूर्णतया ज्ञात हो जाती है।

जब पिंड दक्षिण की ओर रहता है तब बेलनाकार पृष्ठ च छ ज झ की वारी च छ से काम लिया जाता है, परंतु जब किसी उत्तर की ओर के पिंड का वेध करना रहता है तो वारी च छ पर आँख लगाना असुविधाजनक होता है। तब वारी ज झ पर आँख लगायी जाती है। वारी च छ के लिए भी कोर क ख पर अशाकन खुदे रहते है। क ख के बीच मे कुछ दूर तक दोहरा अशाकन रहता है, एक वारी च छ के लिए, दूसरा वारी ज झ के लिए।

[1] उत्तर, दक्षिण और शिरोविंदु से होकर जाने वाले समतल को याम्योत्तर कहते है।

[2] होराकोण वह है जो बताता है कि इष्ट क्षण से कितने घंटे बाद सूर्य (अथवा अन्य आकाशीय पिंड) याम्योत्तर में आयेगा।

कुल यत्र एक छल्ले से लटका रहता है। यह छल्ला उस घुडी मे पिरोया रहता है जो उम्म की वारी में जडा रहता है।

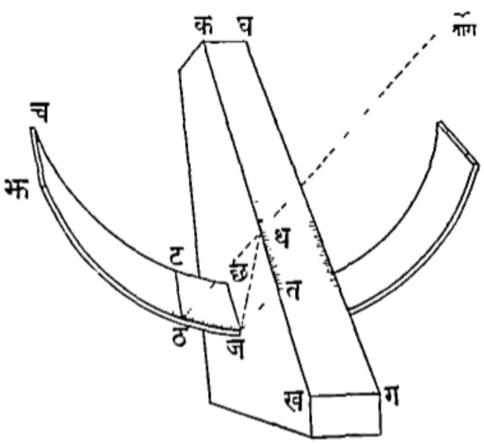
यत्र की पीठ पर, जिधर दर्शनी रहती है, अश आदि अकित रहते है। इसके अतिरिक्त अन्य रेखाएँ या सारणियाँ रहती है जिनका चुनाव यत्र बनाने वाले या बनवाने वाले की इच्छा पर निर्भर है।

यत्र में नापने वाले भाग तो केवल पीठ पर लगी दर्शनी और पीठ पर अकित अश आदि ही है। अन्य सब भाग केवल गणना की सुविधा के लिए रहते है।

सम्राट-यत्र

जयसिह ने जिन यत्रों को अपने ढग का बनवाया वे ये सम्राट-यत्र, जयप्रकाश और राम-यत्र। प्रत्यक्ष है कि जयप्रकाश का नाम जयसिह के नाम पर पडा। राम-यत्र का नाम जयसिह के एक पूर्वज रामसिह के नाम पर था। इन तीनो यत्रो में से अधिकतम महत्त्व का सम्राट-यत्र था। नाम से भी इतना स्पष्ट हो जाता है।

इस यत्र से प्रत्येक क्षण आकाशीय पिड सबधी दो कोण पढे जा सकते है, एक तो होराकोण और दूसरा वह जिसे क्राति कहते है। होराकोण पढने के लिए सम्राट यत्र में बेलनाकार वक्रतल पर अशाकन खुदे रहते है, और क्राति पढने के लिए सीधे समतल पर। यत्र का स्वरूप बगल के चित्र मे दिखाया गया है। यत्र मध्य समतल के हिसाब से सममित है, अर्थात यत्र जैसा बायी ओर है, ठीक वैसा ही दाहिनी ओर भी है। अब यदि हम एक ओर के भाग पर, मान लें बायी ओर वाले भाग पर, विचार करें तो हम देखते है कि खडी भीत (दीवार) की एक कोर क ख पृथ्वी के अक्ष के ठीक समानातर है। च छ ज झ एक बेलनाकार



सम्राट-यत्र।

इस यत्र से तारो के विषुवाश और क्रातियाँ नापी जाती है।

पृष्ठ है जिसका अक्ष क ख है। जब सूर्य याम्योत्तर[1] मे रहता है तो कोर क ख की परछाई (प्रतिच्छाया) ठीक जड छ ज पर पडती है, परतु इसके कुछ समय पहले च झ और छ ज के बीच कही पडेगी। मान लो तब क ख की परछाई ट ठ पर पडती है। तो वारी (किनारा) च छ अथवा झ ज पर खुदे अशाकनो से ठीक पता चल जाता है कि कितने घटो में सूर्य मध्याह्न पर आयेगा। यही होराकोण है[2]।

कोर क ख पर अँगुली या छडी रख कर और उसे आवश्यकतानुसार क या ख की दिशा में हटा कर पता लगाया जा सकता है कि कोर के किस विंदु की परछाई विंदु ठ पर पड रही है। मान लो कि पता चला कि वह विंदु थ है। फिर मान लो कि विंदु ज से रेखा क ख पर गिराया गया लव रेखा ज त है। तो क ख पर खुदे हुए अशाकनो को पढने से कोण त ज थ का मान ज्ञात हो जाता है। यही क्राति है।

यदि सूर्य के वदले किसी तारे का वेध करना हो तो ज झ के ऐसे विंदु पर आँख लगा कर देखना होगा कि वह तारा रेखा क ख पर दिखायी पडे, अर्थात वह समतल ठ क ख में रहे, फिर पता लगाना होगा कि क ख का कौन-सा विंदु तारे के सीध मे है। तब ज ठ और त थ के मानों से तारे का होराकोण और क्राति इन दोनो का पता चल जायगा।

होराकोण से विषुवाश की गणना की जा सकती है, और विषुवाश और क्रान्ति ये ही आकाशीय पिंड के सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्देशाक है। इनके ज्ञात हो जाने पर आकाश मे पिंड की स्थिति पूर्णतया ज्ञात हो जाती है।

जब पिंड दक्षिण की ओर रहता है तब वेलनाकार पृष्ठ च छ ज झ की वारी च छ से काम लिया जाता है; परतु जब किसी उत्तर की ओर के पिंड का वेध करना रहता है तो वारी च छ पर आँख लगाना असुविधाजनक होता है। तब वारी ज झ पर आँख लगायी जाती है। वारी च छ के लिए भी कोर क ख पर अशाकन खुदे रहते है। क ख के वीच मे कुछ दूर तक दोहरा अशाकन रहता है, एक वारी च छ के लिए, दूसरा वारी ज झ के लिए।

[1] उत्तर, दक्षिण और शिरोविंदु से होकर जाने वाले समतल को याम्योत्तर कहते है।

[2] होराकोण वह है जो वताता है कि इष्ट क्षण से कितने घटे वाद सूर्य (अथवा अन्य आकाशीय पिंड) याम्योत्तर में आयेगा।

जब आकाशीय पिंड याम्योत्तर के पश्चिम रहता है तब दाहिनी ओर के बेलनाकार खंड का प्रयोग किया जाता है और कोर ग घ के अंशांकनों को पढ़ा जाता है।

कोर क ख और ग घ के अंशांकनों को पढ़ सकने के लिए क ख और ग घ के बीच सीढ़ी लगी रहती है। इसी प्रकार च छ, ज झ, इत्यादि की बगल में भी कोई प्रबंध रहता है कि वहाँ तक द्रष्टा सुगमता से पहुँच सके। दिल्ली के सम्राटयंत्र का उत्तर-दक्षिण विस्तार १२० फुट है, पूरब-पच्छिम विस्तार १२५ फुट और ऊँचाई ६८ फुट।

इस यंत्र से धूप-घड़ी का काम भी निकल सकता है, परंतु यदि पाठक कभी अपनी घड़ी को ऐसे यंत्र से मिलाना चाहे तो उसे स्मरण रखना चाहिए कि धूप-घड़ी और साधारण घड़ी के समयों में अंतर रहता है। यह अंतर घटा-बढ़ा करता है और घड़ी के समय से धूप-घड़ी का समय कभी आगे रहता है, कभी पीछे। महत्तम अंतर १६½ मिनट तक पड़ सकता है।

जयप्रकाश

जयप्रकाश यंत्र वस्तुतः एक गोले का आधा भाग होता है जिसके भीतरी पृष्ठ पर रेखाएँ खुदी रहती हैं और अंशांकन भी रहते हैं। गोले के केंद्र को निर्धारित करने के लिए दो तार तने रहते हैं, जिनका मिलन-बिंदु गोले के ठीक केंद्र पर रहता है। इस बिंदु की परछाईं देखकर बताया जा सकता है कि सूर्य के निर्देशांक (जैसे होराकोण और क्रांति) क्या हैं। यदि परछाईं कटे हुए भागों में कहीं पड़ रही हो तो ठीक उसी प्रकार के सहयोगी यंत्र को देखा जाता है जिसमें ठीक वे भाग बने रहते हैं जो पहले यंत्र में कटे रहते हैं।

ग्रहों और तारों का वेध कर सकने के लिए गोले के पृष्ठ से कुछ भाग काट कर निकाले रहते हैं। इस प्रकार वेधकर्ता उचित स्थान पर आँख लगा कर देख सकता है कि जब आँख, केंद्र और तारा तीनों एक ही सीध में रहते हैं तब आँख किन अंशांकनों पर रहती है।

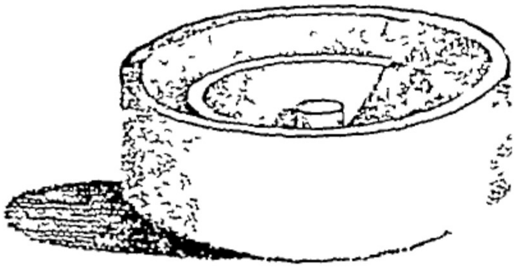
राम-यंत्र

राम-यंत्र में एक बेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीत होती है और उस पर अंशांकन रहते हैं। बीच में एक ऊर्ध्वाधर स्तंभ रहता है जिसकी परछाईं देखी जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि सूर्य का उन्नतांश इतना बढ़ जाय कि परछाईं भीत पर न

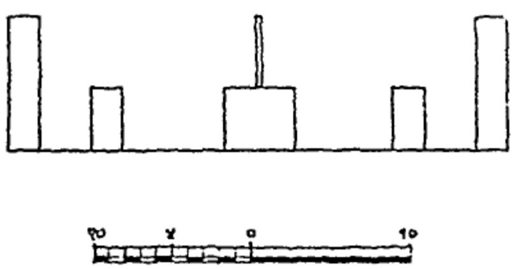
पडकर यत्र के फर्श पर पडे। इसलिए फर्श पर भी अशाकन रहते है। तारो का भी वेध सभव हो सके इस उद्देश्य से भीत और फर्श दोनो थोडी-थोडी दूर पर कटे रहते है। फर्श भूमि से लगभग कमर की ऊँचाई पर बना रहता है। इस प्रकार उचित स्थान पर आँख लगायी जा सकती है। इस यत्र से आकाशीय पिंडो के उन्नताश (ऊँचाई) और दिगश (दिशा) ये दोनो निर्देशाक सुगमता से जाने जा सकते है। जयप्रकाश यत्र की तरह इस यत्र में भी एक जोडी यत्रो की आवश्यकता पड़ती है, जिनमें से एक में ठीक वे ही भाग कटे रहते है जो दूसरे मे नही कटे रहते।

दिगंश-यंत्र

दिगश-यत्र में दो वेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीतें एक के भीतर एक रहती है और उनके केंद्र मे खडा स्तभ रहता है। स्तभ लगभग ४ फुट ऊँचा होता है, भीतरी भीत ठीक उतनी ही ऊँची होती है और बाहरी उसकी दुगुनी ऊँचाई की। दोनो भीतो



दिगंश-यंत्र, काशी।
इससे दिगंश नापा जाता है।



दिगंश-यंत्र, काशी।
इसमें पूर्वोक्त यत्र की काट दिखायी गयी है।

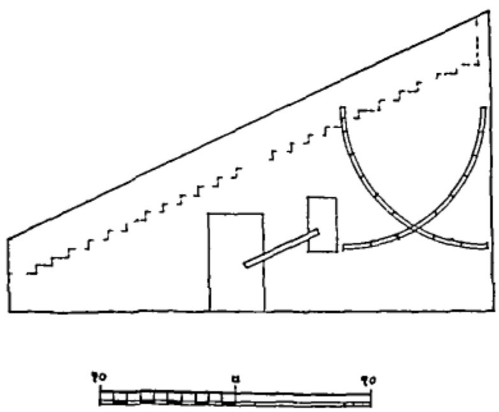
के सिरे अशांकित रहते हैं। भीतरी दीवार के सिरे पर आँख लगा कर देखा जाता है। केंद्रीय स्तंभ में लोहे की सीधी खड़ी छड़ रहती है जिसका ऊपरी सिरा ठीक उतनी ही ऊँचाई पर रहता है जितनी बाहरी भीत की ऊँचाई होती है। इस यंत्र से दिगंश (दिशा) नापी जाती थी।

नाडीवलय-यंत्र

नाडीवलय-यंत्र वृत्ताकार पत्थर होता है, जिसके दोनों पृष्ठ समानांतर और ठीक आकाशीय विषुवत के समतल में रहते हैं। इससे तुरत पता चल जाता है कि सूर्य (या अन्य पिंड) विषुवत के उत्तर है या दक्षिण। दिन में बीच की कील की छाया देखकर समय भी जाना जा सकता है।

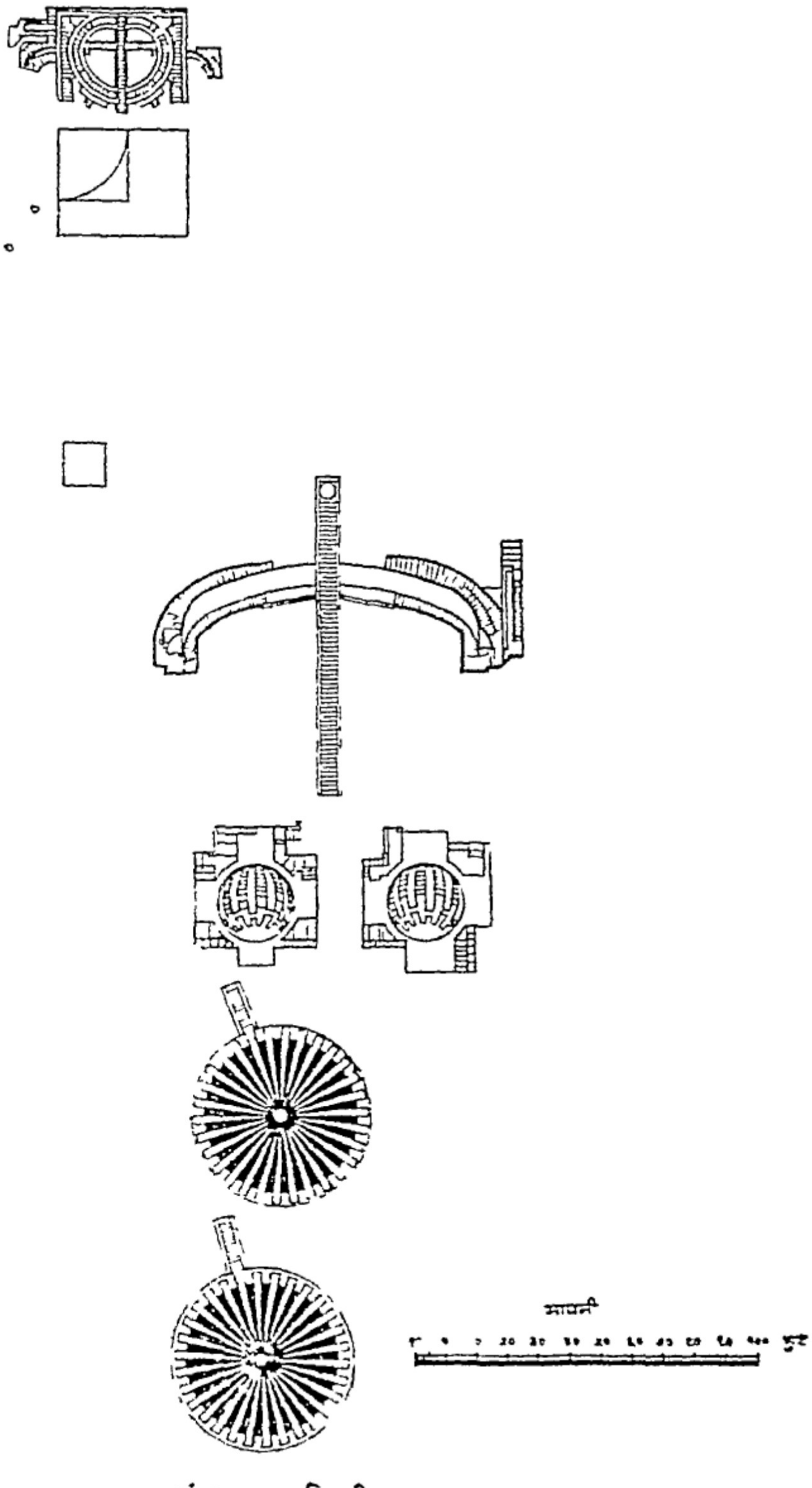
दक्षिणोवृत्ति-यंत्र

याम्योत्तर में बनी भीत पर कील लगी रहती है और इसे केंद्र मान कर दीवार पर एक अंशांकित वृत्त खिंचा रहता है, जिससे आकाशीय पिंडों का याम्योत्तर उन्नतांश



दक्षिणोवृत्ति-यंत्र, काशी।
इससे याम्योत्तर उन्नतांश नापा जाता है।

नापा जा सकता है। इसी को दक्षिणोवृत्ति-यंत्र कहते हैं। सुविधा के लिए पूरे वृत्त के बदले वृत्त का केवल चतुर्थांश ही खिंचा रहता है और शिरोबिंदु के उत्तर और



जंतर-मंतर, दिल्ली।

यह वेधशाला आज भी सुरक्षित अवस्था में है।

दक्षिण दोनों ओर वेध कर सकने के लिए दो कीलें रहती है और दो वृत्त-चतुर्थांश बने रहते है।

षष्ठांश-यंत्र

षष्ठांश-यंत्र में एक अँधेरी कोठरी में वृत्त का छठवाँ हिस्सा याम्योत्तर-समतल में बनी भीत पर अंकित रहता है। सूर्य की रश्मियाँ एक छिद्र से आती हैं। वे कहाँ पड़ती है, यह देखकर सूर्य का उन्नतांश जाना जा सकता है।

मिश्र-यंत्र

मिश्र-यंत्र सम्राट-यंत्र की तरह होता है, परन्तु बीच वाली सीढ़ी और भीतों की अगल-बगल दो या अधिक अंशांकित अर्धवृत्त होते हैं जिनके समतल क्षैतिज नहीं होते। दिल्ली में जो मिश्र-यंत्र है उसमें प्रत्येक ओर दो अर्धवृत्त हैं। एक अर्धवृत्त ग्रिनिच का याम्योत्तर प्रदर्शित करता है, दूसरा ज्यूरिच (जरमनी) का। इस प्रकार इस यंत्र से दिल्ली में बैठे-बैठे वे वेध किये जा सकते हैं जो ग्रिनिच या ज्यूरिच में सम्राट-यंत्र से हो सकते हैं।

दिल्ली और जयपुर की वेधशालाएँ

जयसिंह की प्रत्येक वेधशाला में पूर्वोक्त सब यंत्र नहीं है। दिल्ली में एक सम्राट-यंत्र, एक जोड़ी जयप्रकाश, एक जोड़ी राम-यंत्र और एक मिश्र-यंत्र केवल ये ही है। मिश्र-यंत्र की पूर्व भीत पर दक्षिणोवृत्ति-यंत्र भी बना है। मिश्र-यंत्र की उत्तर वाली भीत ऊर्ध्वाधर होने के बदले उससे ५° का कोण बनाती है। इस भीत पर एक बड़ा-सा अंशांकित वृत्त बना है। इसे कर्कराशि-वलय कहते है। जब सूर्य विषुवत से महत्तम उत्तर दूरी पर (कर्क राशि में) पहुँचता है तो वह इस भीत के धरातल से कुछ कला (लगभग १० कला) उत्तर चला जाता है और इसलिए कुछ दिनों तक इस भीत पर धूप पड़ती है और केंद्रीय कील की परछाहीं अंशांकित वृत्त पर पड़ती है। इस यंत्र से प्रत्यक्ष हो जाता है कि दक्षिणायन कब से आरंभ हुआ।

दिल्ली की वेधशाला बहुत कुछ टूट-फूट गयी थी, परन्तु १८५२ में जयपुर के राजा ने यंत्रों की मरम्मत करवा दी। १९१० में जयपुर के महाराजा ने वेधशाला का पुनरुद्धार कराया। इस कार्य में कुछ यंत्रों को फिर से बनवाना पड़ा और प्रायः सभी अंशांकनों को फिर से अंकित करना पड़ा। खेद है कि अधिकांश अंकन चूने में किये गये और फिर मिट रहे है।

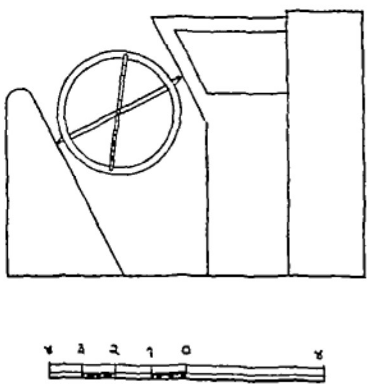
जयपुर की वेधशाला सुरक्षित दशा में है। वहाँ पत्थर आदि के बड़े यंत्रों के अतिरिक्त धातु के भी कई यंत्र है। संग्रहालय (म्यूज़ियम) में अन्य कई यंत्र भी हैं,

जो निस्सदेह जयसिंह द्वारा सगृहीत हुए थे। जयपुर में सम्राट-यत्र, षष्ठाश-यत्र, राशिवलय-यत्र, जयप्रकाश, कपाल, राम-यत्र, दिगश-यत्र, नाडीवलय-यत्र, दक्षिणोवृत्ति-यत्र, दो बडे यत्रराज, १७½ फुट व्यास का पीतल का उन्नताश चक्र यत्र और क्रातिवृत्त-यत्र है।

राशिवलय-यत्र सम्राट-यत्रो की तरह बने बारह यत्रो का समूह है। एक-एक राशि के लिए एक-एक यत्र बना है। इनमें चतुर्थांश बेलनाकार अशाकित खड विषुवत के धरातल में न होकर ऐसे धरातलो में है कि जब यत्र की विशेष राशि क्षितिज के ऊपर आती है तो उसका धरातल यत्र के धरातल में रहता है।

कपाल बहुत कुछ जयप्रकाश की तरह है, परतु इससे "उदय होते समय राशियो का वेध किया जाता है"।

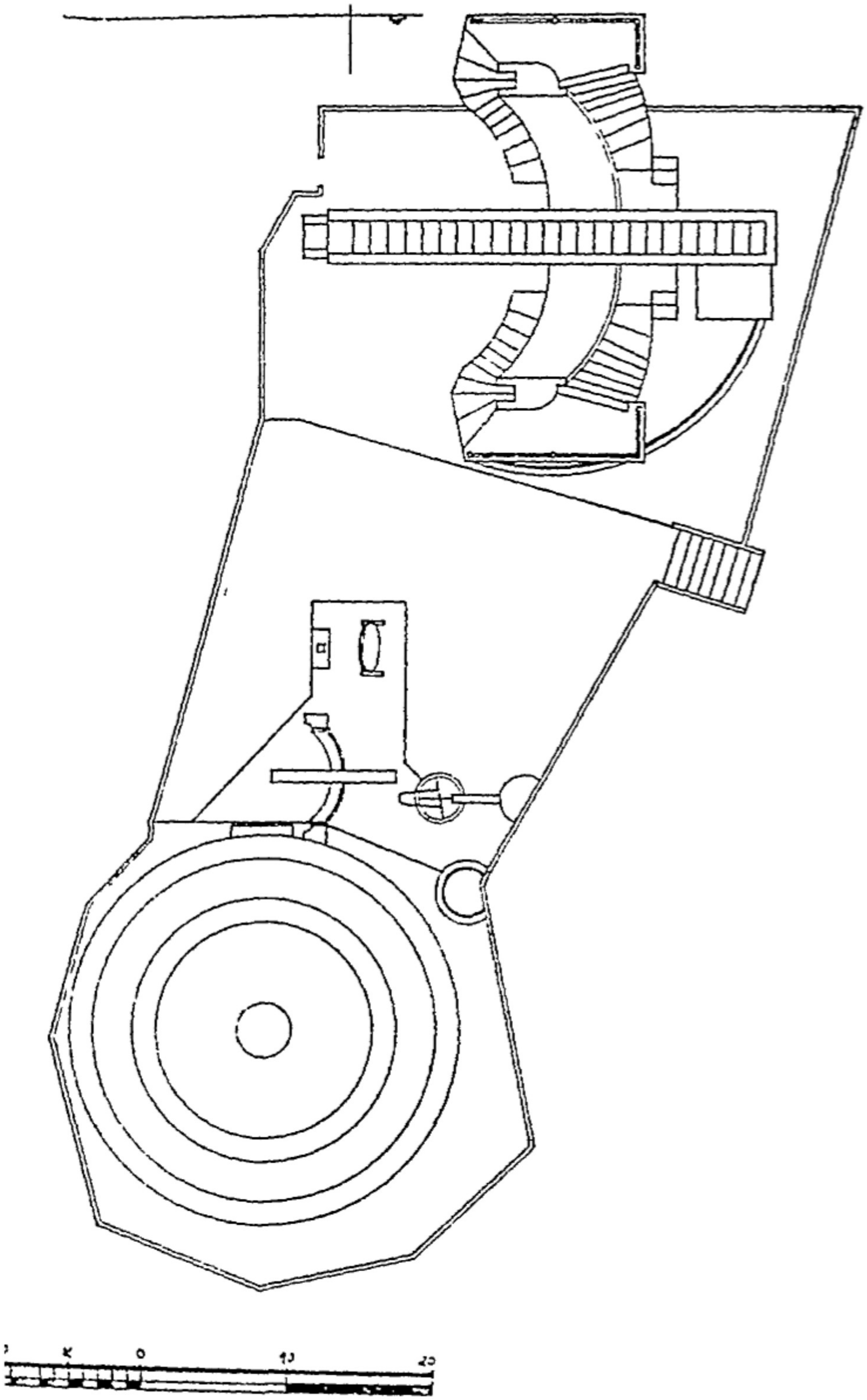
चक्र यत्र में छ फुट व्यास का धातु का एक अशाकित चक्र है, जिसकी धुरी पृथ्वी की धुरी के समानातर है। चक्र पर दर्शनी लगी है। वस्तुत यह आधु-



चक्र यत्र, काशी।
इस धातु के बने यत्र से विषुवाश और क्राति
की नाप हो सकती है।

निक इक्विटोरियल यत्र की तरह है, अतर केवल इतना ही है कि इसमें दूरदर्शी के बदले सरल दर्शनी है।

क्रातिवृत्त-यत्र में पीतल के दो वृत्त है, जिनमें से एक सदा विषुवत के धरातल में रहता है और दूसरा रविमार्ग के धरातल में लाया जा सकता है। सिद्धातत



मानमदिर, काशी।

इसमे भोगाश और शर नापे जा सकते है, परतु यह भद्दा यत्र है और इसमे नापे सूक्ष्म नही हो पाती है।

अन्य यत्रो का वर्णन पहले दिया जा चुका है। जयपुर का सम्राट-यत्र बहुत भव्य यत्र है। यह ९० फुट ऊँचा है और १४७ फुट लबा। इसके बेलनाकार चतुर्थांशो की त्रिज्या ४९ फुट १० इच है। इसके अशाकनो से एक विकला तक नाप सभव है, परतु वस्तुत इतनी सूक्ष्मता नही आ पाती, क्योकि परछाई पर्याप्त तीक्ष्ण नही पडती।

काशी की वेधशाला

काशी मे जयसिंह की बनवायी वेधशाला मानमदिर की छत पर है। मानमदिर को अबर-नरेश मानसिंह ने बनवाया था। वेधशाला मणिकर्णिका घाट के पास है और साधारणत वेधशाला ही को लोग अब मानमदिर कहते है। वहाँ ये प्रधान यत्र है. (१) सम्राट-यत्र, (२) नाडीवलय-यत्र, (३) दिगश-यत्र और (४) चक्र-यत्र।

सम्राट-यत्र काशी में वैसा ही बना है जैसा अन्य वेधशालाओ में, परतु नाप में यह जयपुर के सम्राट-यत्र से छोटा है। इसकी ऊँचाई २२ फुट ३½ इच है, और तिरछी कोर, जिसकी परछाई देखी जाती है, ३९ फुट ८½ इच लबी है। प्रत्येक चतुर्थांश की त्रिज्या ९ फुट १½ इच है। तिरछी कोर और चतुर्थांशो की वारियाँ पत्थर की है और अशाकन सावधानी से बने है। चतुर्थांशों पर आवे घटे वाले चिह्नो पर धातु के छोटे वृत्त लगे है जिस पर अक खुदे है। उत्तर वाली वारी पर देवनागरी अक है, दक्षिण वाली पर अँग्रेज़ी अक। चतुर्थांशो के अकन मिनट की चौथाई तक बने है, साथ ही वे अश और अश के दशम भी बताते है।

पूरब वाली खडी भीत पर दक्षिणोत्तर्वृत्ति-यत्र बना हुआ है। इस यत्र के प्रत्येक चतुर्थांश की त्रिज्या १० फुट ७ इच है। एक पृथक बना हुआ दक्षिणोत्तर्वृत्ति-यत्र भी है।

एक छोटा सम्राट-यत्र भी है, जिसकी ऊँचाई केवल सवा आठ फुट है।

अन्य यत्रो का ब्योरेवार वर्णन आवश्यक नही जान पडता। उनके निर्माण और प्रयोग की विधि पहले बतायी जा चुकी है।

काशी की यह वेधशाला लगभग सन १७३७ ई० में बनी थी, परतु विविध यात्रियो और प्राचीन लेखको ने विविध दिनाक बताये है, जिससे यह दिनाक बहुत पक्का नही माना जा सकता।

इति० १६

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य मे वेधशाला की एक बार मरम्मत हुई थी। १९१२ मे महाराजा जयपुर ने सारी वेधशाला का पुनरुद्धार कराया और कार्य बहुत सतोष-जनक रीति से हुआ।

आधुनिक यत्रो से तुलना

बहुधा लोग यह जानना चाहते है कि आधुनिक यत्रो की तुलना में जयसिह के यत्र कितने अच्छे ठहरते है। उत्तर यह है कि आधुनिक यत्र कही अधिक सूक्ष्म और शुद्ध मान देते है। सब से छोटा यत्र थियोडोलाइट भी, जिसमे दिगश और उन्नताश नापने के लिए चार इच या पाँच इच के वृत्त लगे रहते है, जयसिह के यत्रो मे अधिक उत्तम मान देता है। कारण यह है कि इन वृत्तो का अशाकन चाँदी पर किया जाता है जो पीतल की अपेक्षा कम रवादार होती है और ये अशाकन इतने घने होते है कि उन्हे प्रवर्धक ताल द्वारा पढना पडता है। फिर यत्र की धुरी छेद में नही पिरोयी रहती है। वह अग्रेजी अक्षर V की तरह द्विशूलो पर आरुढ रहती है। इससे धुरी में हचक हो ही नही पाती। फिर, यत्र घडी की तरह सच्चा बनाया जाता है, और तिस पर भी उसकी सचाई पर भरोसा न करके उसकी त्रुटियो को नापा जाता है और गणना से इन त्रुटियो के प्रभाव को दूर किया जाता है। इन त्रुटियो को नापने में एक आवश्यक क्रिया यह है कि यत्र के घूर्णशील भाग को उठाकर पलट दिया जाता है, जिसमें एक ओर की धुरी दूसरी ओर चली जाय। यह काम ईट-पत्थर के बने विशालकाय यत्रो से नही हो सकता। परतु सबसे अधिक सूक्ष्मता तो इससे आती है कि यत्र में दूरदर्शी लगा रहता है। दूरदर्शी में आँख लगाने पर तारा तो दिखायी पडता ही है, साथ ही समकोण पर परस्पर काटती हुई दो महीन रेखाएँ दिखायी पडती है, जिन्हें स्वस्तिक तार कहते है, और तारा तथा ये रेखाएँ दोनो पूर्णतया तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखायी पडती है। जब तारा ठीक स्वस्तिक के केंद्र पर रहता है तब दूरदर्शी ठीक तारे की दिशा में रहता है। स्वस्तिक और तारा दोनो के तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखायी पडने के कारण दूरदर्शी को तारे पर साधने का काम बडी सूक्ष्मता से किया जा सकता है। बिना दूरदर्शी के यत्रो में यत्र के दर्शनी नामक भाग के दोनो सिरे कभी भी स्पष्ट नही देखे जा सकते। जब निकट सिरे को स्पष्ट देखने की चेष्टा की जाती है तब केवल वही स्पष्ट दिखायी पडता है, जब दूर वाले सिरे को स्पष्ट देखने की चेष्टा की जाती है तब निकट वाला सिरा अस्पष्ट हो जाता है। यही कठिनाई सम्राट-यत्र, जयप्रकाश, राम-यत्र, इत्यादि सभी में पडती है और उनसे सूक्ष्म वेध नही किया जा सकता।

अध्याय १७

जयसिंह के बाद

जयसिंह के बाद पाश्चात्य ज्योतिष भारत मे सुगमता से आने लगा क्योकि यहाँ अँग्रेजो की शक्ति बढने लगी। नीचे केवल उन्ही ज्योतिषियो की चर्चा की जा रही है जो प्राचीन भारतीय ज्योतिष के विद्वान थे।

मणिराम

ग्रहगणितचिंतामणि मे शक १६९६ चैत्र शुक्ल १ रविवार के प्रातःकाल का क्षेपक दिया गया है, जो ग्रहलाघव से बहुत कुछ मिलता है और ध्रुवाङ्क उसमे सूक्ष्म है।[1] ग्रंथकार मणिराम सूर्य-सिद्धात के अनुयायी जान पडते है, परतु उन्होने ग्रहलाघव की पद्धति मे काम लिया है। इन्होने स्वय वेध करके ग्रथ मे ध्रुवाक शुद्ध किये है। अयनाश सूर्य-सिद्धात के अनुसार माना है। इस ग्रथ मे कुल १२ अधिकार है और श्लोकों की सख्या १२० है।

नृसिंह उपनाम बापूदेव शास्त्री

बापूदेव शास्त्री बनारस मे ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य थे और इस प्रान्त में अब तक प्रसिद्ध है। भारतीय और पाश्चात्य ज्योतिष के ये अगाध विद्वान थे। इनका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर जिले में गोदा नदी के किनारे टोंके गाँव में शक १७४३ (१८२१ ई०) में हुआ था। इन्होने नागपुर मे ढुढिराज मिश्र से बीजगणित, लीलावती और सिद्धातशिरोमणि का अध्ययन किया और अन्त मे काशी में आकर सस्कृत कालेज के प्रधान गणिताध्यापक हुए। आप बगाल एशिया-

[1]इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रंथ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी है।

टिक सोसाइटी के आदरणीय सभासद तथा कलकत्ता और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के सदस्य थे। आपको महामहोपाध्याय की पदवी भी मिली थी।

आप भारतीय ज्योतिष में सुधार करने की आवश्यकता समझते थे और चाहते थे कि पचागो की गणना शुद्ध वेधसिद्ध मूलाको से करनी चाहिए। इसका प्रचार करने के लिए आपने पुस्तकें लिखी और पचाग भी बनाना आरम्भ किया, परतु उस समय काशी के पडितो के दल ने इनका घोर विरोध किया। दैवदुर्विपाक से म० म० सुधाकर द्विवेदी इस विरोधी दल के अग्रणी थे, इसलिए ज्योतिष सबधी सुधार अब तक नही हो पाया। आश्चर्य तो यह है कि जिस सूर्य-सिद्धात को सुधाकर द्विवेदी स्वय आर्षग्रथ नही मानते थे[1] और कहते थे कि यह हिपार्कस नामक यवन ज्योतिषी के ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है[2] उसी को प्रामाणिक कह कर पचाग बनाने के लिए आवश्यक समझते थे और पहले के आचार्यो के चलाये हुए बीज-स्कार की पद्धति को भी त्याज्य समझते थे। सुधाकर द्विवेदी का मत था कि तिथियाँ अदृश्य घटनाएँ है, उन्हे सूर्य-सिद्धात के अनुसार बनाना चाहिए, ग्रहण दृश्य घटना है, उसकी गणना आधुनिक ज्योतिष से करनी चाहिए। उत्तर प्रदेश के कई पचाग आज भी इसी सिद्धात पर बनते है, जिसका मुख्य कारण यही जान पडता है कि सूर्य-सिद्धात का नाता लोगो ने धर्म से जोड रक्खा है और इसलिए पूजा-पाठ की गणना के लिए उसके बदले किसी अन्य ग्रथ को ठीक मानना अनुचित समझते है, परतु यदि वे ग्रहण की भी गणना सूर्य-सिद्धात से करते है तो घटो का अतर पड जाता है और जनता भी देख लेती है कि ज्योतिषीगण अज्ञानी ढोगी है।

बापूदेव शास्त्री के बनाये हुए ग्रथो के नाम नीचे दिये जाते है

रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति, सायनवाद, प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय-वर्णन, अष्टादश विचित्र प्रश्न सग्रह सोत्तर, तत्त्वविवेक परीक्षा, मानमन्दिरस्य यत्र वर्णन, और अकगणित। ये सब सस्कृत भाषा में है और छपकर प्रकाशित हुए है। कुछ सस्कृत ग्रथ अप्रकाशित है, जैसे चलन-कलन सिद्धात के २० श्लोक, चापीय त्रिकोणमिति सबधी कुछ सूत्र, सिद्धातग्रथोपयोगी टिप्पणी, यत्रराजोपयोगी छेद्यक, और लघुशकुच्छिन्न क्षेत्रगुण।

[1] 'भटोत्पलानान्तर भास्कराचार्यंत प्रागेव भारतवर्षेऽस्य सूर्यसिद्धान्तस्य प्रचारो जात'। सुधावर्षिणी टीका की भूमिका, पृ० १ (१९२५ ई० की छपी)।

[2] पचाग विचार, पृ० ११, १२।

हिंदी में इनके नीचे लिखे ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं अंकगणित, बीजगणित, फलित विचार और सायनवादानुवाद। सिद्धांतशिरोमणि के गोलाध्याय का अँग्रेजी अनुवाद इन्होंने विलकिनसन के सहयोग से किया है। सूर्यसिद्धांत का अँग्रेजी अनुवाद भी किया है। ये दोनो ग्रंथ ई० सन १८६१-६२ मे प्रकाशित हुए थे।

आपने सिद्धांतशिरोमणि के गणित और गोल दोनो अध्यायो का शोधपूर्वक टिप्पणी के साथ एक संस्करण शक १७८८ (१८६६ ई०) मे और लीलावती का १८०५ शक मे प्रकाशित किया था।

आप शक १७९७ मे १८१२ तक नॉटिकल अलमनक के आधार पर पंचांग बनाकर प्रकाशित करते थे। अब भी आपके नाम के पंचांग मे यही विशेषता पायी जाती है। १८१२ शक मे आप का देहावसान हुआ।

नीलांबर शर्मा

नीलांबर शर्मा का जन्म शक १७४५ (१८२३ ई०) में हुआ था और आप गंगा और गंडकी के संगम मे दो कोस पर पटना के रहने वाले मैथिल ब्राह्मण थे। आप ने यूरोपीय पद्धति के अनुसार गोलप्रकाश नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा है, जिसको १७९३ शक मे प० बापूदेव शास्त्री ने शोधकर छपाया था। इसमें पाँच अध्याय हैं ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमितिसिद्धांत, चापीयरेखागणितसिद्धांत, चापीय त्रिकोण-मितिसिद्धान्त और प्रश्न।

विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे)

विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे) का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में शक १७४६ (१८२४ ई०) में हुआ था। आप गणित, ज्योतिष और सृष्टि-विज्ञान में बड़े निपुण थे और आपने बम्बई प्रान्त के अनेक स्कूलों और कालेजो में उच्च पद पर काम किया। आपका लोकप्रिय नाम नाना था।

आपने फ्रांसीसी और अँग्रेजी ज्योतिष ग्रंथो के आधार पर ग्रहसाधनकोष्ठक नामक एक मराठी ग्रंथ शक १७७२ मे तैयार किया था, जो शक १७८२ मे छापा गया था। इस ग्रंथ में वर्षमान सूर्य-सिद्धांत के अनुसार लिया गया है परन्तु ग्रह-गतिस्थिति सायन लिया है, ज़ीटा पिनियम को रेवती का योगतारा माना है, जो शक ४९६ मे वसंत विषुव पर था। अयन की वार्षिक गति ५० १ विकला मानी है। शक १७८७ (१८६५ ई०) से आपने नाविक पंचांग के अनुसार पंचांग प्रकाशित करना आरंभ किया। इस बात में आपा साहब पटवर्धन ने आप की सहायता

की, जिससे यह पचाग खूब चलने लगा और इसका नाम पड गया नानापटवर्धनी पचाग।

तिथि-साधन के लिए तिथि चितामणि के समान एक ग्रथ नाना साहब ने लिखा था, परतु अब इसका प्रचार नही है।

आपने स्कूलो के लिए मराठी मे पदार्थविज्ञान-शास्त्र और अकगणित की पुस्तकें लिखी थी।

लेले

विसाजी रघुनाथ लेले का जन्म नासिक मे शक १७४९ (१८२७ ई०) मे हुआ था और शक १८१७ मे ६८ वर्ष की अवस्था मे देहान्त हुआ। आपने मराठी पत्रिकाओ मे इस बात का खूब आन्दोलन किया कि पचाग सायन पद्धति से बनाना चाहिए और इस बात मे केरोपत का विरोध किया। कई वर्ष तक ग्रहलाघव की सहायता से सायन पचाग बनाकर चलाते रहे। फिर नाविक पचाग की सहायता से काम लेते थे, परतु इस काम के लिए अपना कोई स्वतत्र ग्रथ नही बनाया।

रघुनाथ

चितामणि रघुनाथ आचार्य का जन्म शक १७५० (१८२८ ई०) मे तामिल प्रान्त में हुआ था। आप यूरोपीय ज्योतिष और गणित के अच्छे विद्वान थे और रायल एशियाटिक सोसायटी के फेलो थे। १८४७ ई० से आप मद्रास वेधशाला में काम करने लगे और उसके प्रथम असिस्टेंट के पद पर पहुँच गये थे। आपने यहाँ से तारो की एक सूची तैयार की और दो रूपविकारी तारो की खोज की। ज्योतिष-चिंतामणि ग्रथ आपका ही का लिखा हुआ है जिसके तीन भाग है। पहले में मध्यम गति, पृथ्वी आदि ग्रहो के आकार और उनके महत्त्व पर विचार किया गया है। दूसरे मे स्फुट गति आदि पर लिखा गया है और तीसरे का नाम करण-पद्धति है, जिसमे ग्रह-गणित करने के लिए बहुत से कोष्ठक है। यह ग्रथ तामिल भाषा मे लिखा गया था।

आप शक १७९१ से नाविक पचाग के आधार पर दृग्गणित पचाग बनाकर प्रकाशित करने लगे, जिसे आपके दो पुत्र शक १८०८ तक चलाते रहे। आपका वर्ष-मान सूर्यसिद्धात के अनुसार था और अयनाश २२°५′ था[१]।

[१] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ३०४-३०५।

गोडवोले

कृष्णशास्त्री गोडवोले का जन्म शक १७५३ (१८३१ ई०) मे ववई प्रात में हुआ था। उस प्रात के कई स्कूलो के शिक्षक के पद पर रह कर आप हेडमास्टरी से रिटायर हुए और पूना मे रहने लगे थे। आपने वम्वई की वेधशाला में भी कुछ दिन काम किया था। १८८६ ई० मे आपका स्वर्गवास हुआ।

शक १७७८ मे आपने वामनकृष्ण जोशी गद्रे के सहयोग से ग्रहलाघव का मराठी भापातर उदाहरण सहित किया, जो प्रधानत विश्वनाथ की टीका का भापातर है। इस पुस्तक का दूसरा सस्करण भी छपा है। कृष्ण शास्त्री ने ग्रहलाघव की उपपत्ति भी मराठी मे लिखी है। शक १८०७ मे एक छोटा-सा ज्योतिषशास्त्र का इतिहास लिखा था। आपने पाठशालोपयोगी वहुत-सी गणित की पुस्तको की रचना की थी।

चद्रशेखर सिह

चन्द्रशेखर सिंह सामन्त का जन्म शक १७५७ (१८३५ ई०) मे उडीसा प्रात में कटक मे ५०-६० मील पच्छिम खडपारा गांव के एक राजवश मे हुआ था। वचपन मे आपने सस्कृत, व्याकरण, स्मृति, पुराण, तर्कशास्त्र और आयुर्वेद की शिक्षा पायी थी और सभी महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रथो को पढ लिया था। जव आप दस वर्ष के थे तव आपके एक चाचा ने आपको फलित ज्योतिष का कुछ पाठ पढाया और आकाश के कुछ नक्षत्रो और ग्रहो को दिखाया। धीरे-धीरे इस वालक का मन आकाश का दर्शन करने और तारो की वदलती हुई स्थिति को देखने मे लग गया। इन्होंने घर के पुस्तकालय मे सस्कृत सिद्धात के जितने भी ग्रथ मिले सवको अपने-आप ही भाष्यो की सहायता से पढ डाला।

जव आप ग्रहो की स्थिति की गणना करने लगे तव आपको विदित हुआ कि गणना से ग्रहों की जो स्थिति निकलती थी, वह आकाश मे ग्रहों की प्रत्यक्ष स्थिति से नही मिलती थी, दोनो में वड़ा अन्तर पडता था।

अपने वनाये स्थूल यत्रो मे आपने सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के मूलाको का सशोधन करके एक पुस्तक लिख डाली, जिसका नाम है सिद्धातदर्पण। यह ज्योतिष-सिद्धात का एक सुन्दर ग्रथ है। जगन्नाथपुरी और उडीसा प्रात मे इसी के अनुसार वनाये हुए पंचाग शुद्ध माने जाते हैं।

सिद्धातदर्पण का मूल तालपत्र पर उडिया अक्षरो में लिखा गया था, जिसको कटक कालेज के गणित के अध्यापक श्री योगेशचन्द्र राय ने अपनी अँग्रेजी भूमिका

के साथ सन १८९९ ई० (श० १८२१) में छपाया है। यह ग्रथ उडीसा और बिहार के ज्योतिष के छात्रो को पढाया जाता है।

शकरबालकृष्ण दीक्षित

शकर बालकृष्ण दीक्षित का जन्म भी शक १७७५ मे आषाढ शुक्ल १४ भौमवार (ता० २०-२१ जूलाई, सन १८५३ ई०) को रत्नागिरी के मुरुड गांव में हुआ था। कठिनाई के कारण आपकी शिक्षा मैट्रिकुलेशन से अधिक नही हुई थी। महाराष्ट्र प्रान्त के अनेक मराठी और अँग्रेजी स्कूलो और ट्रेनिंग कालेजो में आपने शिक्षक का काम किया। आपकी बुद्धि बडी प्रखर थी। आपने मराठी में विद्यार्थी बुद्धिवर्धिनी (सन १८७६ ई०), सृष्टिचमत्कार (१८८२ ई०), ज्योतिर्विलास (१८९२ ई०) और धर्ममीमासा (१८९५ ई०) नामक पुस्तकें छपाई थी। डब्ल्यू० एम० सिवेल के सहयोग से आपने इडियन कैलेंडर नामक ग्रथ अँग्रेजी में लिखा था। परन्तु आपका सबसे उपयोगी और गभीर विद्वत्ता का ग्रथ मराठी का भारतीय ज्योतिषशास्त्र है, जिसे आपने सन १८८७ ई० (शक १८०९) नवम्बर मास में आरभ किया था और सन १८८८ (शक १८१०) के अक्टूबर तक समाप्त किया। इस पुस्तक पर आप को पूने की दक्षिण पुरस्कार कमेटी से ४५०) का पुरस्कार मिला था।

इस ग्रथ के पहले भाग के पहले विभाग में वैदिक काल का वर्णन है, जिसमें वैदिक सहिता और ब्राह्मण में आये हुए ज्योतिष सबधी वचनो का अवतरण देकर बताया गया है कि वैदिक ऋषियो को ज्योतिष सबधी बातो का कितना ज्ञान था।

दूसरे विभाग में वेदागकाल की ज्योतिष का वर्णन है। इसमें आर्च और याजुष ज्योतिष का विस्तृत वर्णन है। इसके कुछ श्लोको का अर्थ भी जो पहले नही ज्ञात था किया गया है। अथर्व ज्योतिष की भी चर्चा है। इसी विभाग में कल्पसूत्र, निरुक्त और पाणिनीय व्याकरण में आये हुए ज्योतिष सबधी वचनो का विवेचन है। यह पहले प्रकरण में है। दूसरे प्रकरण में स्मृति और महाभारत में आये हुए सब ज्योतिष सबधी वचनो का विवेचन किया गया है। इस प्रकार पहला भाग डिमाई अठपेजी नाप के १४७ पृष्ठो में समाप्त हुआ है।

दूसरे भाग में ज्योतिष सिद्धात-काल के ज्योतिष शास्त्र का इतिहास दिया गया है। पहले खड का नाम गणित-स्कध है, जिसके मध्यमाधिकार प्रकरण १ में प्राचीन सिद्धातपचक के पितामह-सिद्धात, वसिष्ठ-सिद्धात, रोमक-सिद्धात और पुलिश-सिद्धात का विवेचन बडी विद्वत्ता के साथ किया गया है। फिर वर्तमान काल के

मूर्य-मिद्धात, सोम-सिद्धात, वसिष्ठ-सिद्धात और शाकल्य-सहितोक्त ब्रह्म-सिद्धात का उत्तम वर्णन है। इसके बाद प्रथम आर्यभट (शक ४२१) से लेकर सुधाकर द्विवेदी (शक १८०६) तक के ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्यों और उनके ग्रथो का वर्णन १११ पृष्ठो में किया गया है। ग्रथो मे लिखे हुए काल की शुद्धता जाँचकर लिखी गयी है और यह भी बताया गया है कि किस ग्रन्थ में क्या विशेषता है।

इसके बाद भारतीय ज्योतिष पर मुसलमान ग्रथकारो, विशेषकर अलबीरूनी के मत का विवेचन किया गया है।

दूसरे प्रकरण मे भुवनसस्था के सबध में भिन्न-भिन्न आचार्यों के मतो का तुलनात्मक विवेचन है। तीसरे प्रकरण मे अयन (विषुव-चलन) पर विस्तृत विवेचन किया गया है। चौथा प्रकरण वेधप्रकरण है, जिसमें दिखाया गया है कि हमारे ग्रन्थो में वेध सबधी बातो और यत्रो का कैसा वर्णन है।

स्पष्टाधिकार के प्रकरण १ मे ग्रहो की स्पष्ट गति और स्थिति के सबध मे तुलनात्मक विवेचन है, प्रकरण २ मे पचाग और विविध सनो तथा सवतो का वर्णन किया गया है। इसी प्रकरण में पचागशोधन विचार नामक एक अध्याय है, जिसके ३२ पृष्ठो में दिखाया गया है कि पचाग का शोधन करना क्यो आवश्यक है, सायन-पचाग क्यो स्वाभाविक है।

इस प्रकार कुल ४४२ पृष्ठो में इतनी बाते लिखी गयी है। इसके आगे सक्षेप में त्रिप्रश्नाधिकार, चद्रसूर्य-ग्रहणाधिकार, छायाधिकार, उदयास्ताधिकार, शृगोन्नति, ग्रहयुति, भग्रहयुति और महापात अध्याय है। भग्रहयुति अध्याय में योगतारो के भोगाशो और शरो पर तुलनात्मक विचार विस्तार के साथ किया गया है।

सहितास्कध में सहिता और मुहूर्त सबधी पुस्तको का वर्णन है।

जातकस्कध में जातकशास्त्र सबधी पुस्तको का वर्णन है और बताया गया है कि जन्मपत्री क्या है, कैसे बनायी जाती है और उसका सिद्धात क्या है। अत मे ताजिक पर भी थोडा-सा विचार है, जिसमे वर्षफल बनाया जाता है। (ताजिक =फलित ज्योतिष के एक विभाग का मुसल्मानी नाम)

उपसहार में भारतीय ज्योतिष की तुलना अन्य देशो के ज्योतिष से की गयी है और इस सबध के अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानो के मतो का विवेचन किया गया है।

अत में सस्कृत और अन्य ज्योतिष ग्रन्थो की एक बृहत् सूची तथा ज्योतिष ग्रथकारो की सूची दी गयी है। ज्योतिष के अतिरिक्त उन अन्य पुस्तको की भी सूची है

जिससे ज्योतिष सबधी अवतरण लिये गये है। अत में विषयानुसार सूची देकर ५६० पृष्ठो मे पुस्तक समाप्त की गयी है।

केतकर

वेंकटेश बापूजी केतकर का जन्म पौष शुक्ल १४ शुक्रवार शक १७७५ (१८५४ ई०) मे हुआ था और १८७४ ई० से आप बबई प्रात के स्कूलो में शिक्षक का काम करने लगे थे। आप बागलकोट के अँग्रेजी स्कूल मे हेडमास्टर के पद पर भी रहे है। आप प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान और ग्रथकार थे। आपकी मृत्यु शक १८५२ (१९३० ई०) मे ७६½ वर्ष की अवस्था मे हुई।

आपने ज्योतिष पर कई ग्रथ लिखे है, जिनके नाम ये है सस्कृत मे ज्योतिर्गणित, केतकीग्रहगणित, वैजयन्ती, केतकी परिशिष्ट, सौरार्यब्रह्मपक्षीय तिथिगणितम्, केतकी वासना भाष्यम्, शास्त्रशुद्धपचागअयनाश निर्णय और भूमण्डलीय सूर्यग्रहणगणित, और मराठी मे नक्षत्र विज्ञान, ग्रहगणितम्, गोलद्वयप्रश्न, भूमडलीयगणित।

ज्योतिर्गणित

यह बडे आकार के लगभग ५०० पृष्ठो का ग्रन्थ है, जिसमे पचाग बनाने, ग्रहण की गणना करने, नक्षत्रो के उदय और अस्त का गणित करने की सभी आवश्यक बातो के लिए कोष्ठक दिये गये है, जिनके आधार पर पचाग सुगमता और शुद्धता पूर्वक बनाये जा सकते है। जिन पाश्चात्य गवेषणाओ और गणनाओ के आधार पर यह कोष्ठक बनाये गये है उनके सूत्र भी दे दिये गये है। दशमलव भिन्न का उपयोग कर के गुणा भाग करने का काम बहुत सरल कर दिया गया है। भुजज्या, कोटिज्या आदि की सारिणी दे दी गयी है। यह एक अपूर्व ग्रथ है, जिससे ग्रयकर्ता के गभीर परिश्रम और विद्वत्ता का पता चलता है। इसके ध्रुवाक शक १८०० के है। इस ग्रथ मे इन्होने रेवती योगतारा को नक्षत्र चक्र का आदि बिन्दु मानकर तथा चित्रा को नक्षत्र चक्र का मध्य मानकर दोनो प्रकार से अयनाश दे दिये है, क्योकि महाराष्ट्र प्रात मे इन दोनो पद्धतियो से पचाग बनाये जाते है और प्रत्येक के समर्थक बडे-बडे विद्वान है। परतु पीछे से ये केवल चित्रा मत के समर्थक हो गये और केतकी ग्रहगणित तथा पचाग अयनाश निर्णय मे यह सिद्ध किया कि प्राचीन परपरा के अनुसार चित्रातारा ही नक्षत्र चक्र का मध्य होना चाहिए, जिससे अश्विनी नक्षत्र या मेष का आदि बिंदु चित्रा से १८०° पर ठहरता है। यह ग्रथ शक १८१२ के लगभग लिखा गया था।

केतकी ग्रहगणित

यह ग्रहलाघव के ढग पर, सस्कृत श्लोको में, अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर पचांग बनाने के लिए उपयोगी ग्रथ है। पुराने ढग के पडित श्लोको को याद करके गणना करने का काम सुगमता से कर सकते है, अत उनके लिए यह बहुत उपयोगी है। इससे तिथि, नक्षत्र, आदि की तथा ग्रहो की, स्पष्ट गणना पर्याप्त शुद्ध होती है।

इस पर ग्रथकार ने अपनी अकविवृति व्याख्या भी की है, जिसमे उदाहरण देकर ग्रन्थ को और सुगम बना दिया है। इसके साथ ग्रथकार के सुयोग्य पुत्र दत्तराज वेकटेश केतकर ने केतकीपरिमलवासनाभाष्य नामक टीका लिखी है, जिसमे चित्र देकर वैज्ञानिक रीति से नियमो की उपपत्तियो का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यह पुस्तक शक १८१८ में लिखी गयी थी और शक १८५१ (१९३० ई०) में आर्य-भूषण मुद्रणालय से प्रकाशित हुई। सस्कृत में अर्वाचीन ज्योतिष पर यह अच्छी पुस्तक है।

वैजयन्ती—इसमे पचागोपयोगी तिथि, नक्षत्र और करणो की गणना करने के लिए सारणियाँ है जिनसे गणना बडी आसानी से की जा सकती है। इसमे चद्रमा में केवल ५ सस्कार देकर काम लिया गया है।

नक्षत्र-विज्ञान—इसमे आकाश के विविध प्रकार के तारो का वर्णन, उनकी सूची, भोगाश, शर तथा आकाश के मानचित्र दिये गये है। जिन नक्षत्रो के नाम भारतीय ज्योतिष मे नही है, उनके नाम इन्होने स्वय बनाये है, जैसे 'ओफियूकस' के लिए 'भुजगधारि', 'पेगासस' के लिए 'उच्चैःश्रवा', 'लायरा' के लिए 'स्वरमण्डल', आदि।

तिलक

बाल गगाधर तिलक का जन्म शक १७७८ (१८५६ ई०) मे हुआ। आप गणित, ज्योतिष, विज्ञान, प्राचीन इतिहास, दर्शन और वेद के अद्वितीय विद्वान थे। राजनीति के भी आप प्रकाड पडित और नेता थे जिसके कारण आप को कई बार जेल जाना पडा था। इससे आप देश-विदेश सभी जगह प्रसिद्ध है और आप को 'लोकमान्य' कहा जाता है। आप 'मराठा' नामक अँग्रेजी पत्र तथा 'केसरी' नामक मराठी पत्र के सफल सम्पादक थे। आप के लिखे तीन ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है: (१) ओरायन, (२) आर्कटिक होम इन दि वेदाज, और (३) गीता-रहस्य।

ओरायन

यह अँग्रेजी में ज्योतिष-सबधी ग्रथ है और सन १८९३ ई० में लिखा गया था। इसमें आप ने वेद, ब्राह्मण, सहिता तथा ज्योतिष के ग्रथो से सिद्ध किया है कि किसी समय वसत विषुव ओरायन (मृगशिरा) नामक नक्षत्र में था, जिससे वेद का काल ४५०० वर्ष ईसा पूर्व ठहरता है। इसके पहले पाश्चात्य विद्वान कहते थे कि वेदकाल २००० ईसा पूर्व से अधिक पुराना नही है। आप के मत का समर्थन प्रोफेसर याकोवी ने भी अपनी स्वतन्त्र गणना से किया। इस ग्रथ की गभीरता और नवीनता पर विदेशी पण्डित मैक्समूलर भी मुग्ध थे।

आर्कटिक होम इन दि वेदाज़ भी अँग्रेजी का ग्रथ है, जिसमे आपने वेदो, पुराणो तथा ईरान की पौराणिक कथाओ और भूगर्भविज्ञान के आधार पर सिद्ध किया है कि प्राचीन आर्य उत्तरी ध्रुव के पास निवास करते थे और वही से जैसे-जैसे जलवायु प्रतिकूल होता गया वे भारतवर्ष में आये। यह पुस्तक सन १९०३ ई० में लिखी गयी थी।

गीतारहस्य

यह दर्शनशास्त्र का एक अपूर्व ग्रथ है। इसमें भगवद्गीता के अनुवाद के साथ-साथ प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन की तुलना कर के दिखाया गया है कि भगवद्गीता का सिद्धान्त क्या है। इसी के एक श्लोक 'मासाना मार्गशीर्षोहम्' के अर्थ की खोज में आपने 'ओरायन' ग्रथ का निर्माण किया था।

इन पुस्तको के सिवा अपने केसरी समाचार पत्र के द्वारा महाराष्ट्र प्रात में ज्योतिष सबधी बातो की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया और बताया कि पचाग बनाने की रीति में किस प्रकार का सुधार करने की आवश्यकता है। आप के मत के अनुसार एक पचाग महाराष्ट्र प्रात में चलता है जिसमें अयनाश का मान रैवत पक्ष के अनुसार माना जाता है[१]। आप का देहावसान सन १९२१ ई० में हुआ।

सुधाकर द्विवेदी

सुधाकर द्विवेदी काशी के निकट खजुरी ग्राम के निवासी थे। आप का जन्म शक १७८२ (१८६० ई०) में हुआ था। प० बापूदेव शास्त्री के पेंशन लेने पर आप बनारस सस्कृत कालेज के गणित और ज्योतिष के मुख्य अध्यापक हुए। आप को सरकार से महामहोपाध्याय की पदवी मिली थी। आप शक १८४४ (१९२२ ई०) में स्वर्गवासी हुए।

[१] अर्थात रेवती (जीटा पिसियम) नामक तारे से नक्षत्र-चक्र का आरभ माना जाता है।

आप गणित और ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान थे। आपने अनेक प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों को शोध करके टीकाएँ लिखी हैं और अर्वाचीन उच्च गणित पर स्वतन्त्र ग्रंथ भी लिखे हैं। आपके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं

(१) दीर्घवृत्त लक्षण (शक १८००), (२) विचित्र प्रश्न (शक १८०१) जिसमें २० कठिन प्रश्न और उत्तर हैं, (३) वास्तव चंद्रशृंगोन्नतिसाधन (शक १८०२) इसमें लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर, बापूदेव आदि की लिखी रीतियों में दोष दिखा कर यूरोपीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वास्तव शृंगोन्नति साधन कैसे किया जाता है, दिखाया गया है। इसमें ९२ पद्य हैं।

४—द्युचरचार (शक १८०४) में ग्रह की कक्षा का विवेचन यूरोपीय ज्योतिष के अनुसार किया गया है।

५—पिंडप्रभाकर शक १८०७ में लिखा गया था, इसमें वास्तु (भवन-निर्माण) संबंधी बातें हैं।

६—भाभ्रमरेखा निरूपण में दिखाया गया है कि शंकु की छाया से कैसा मार्ग बनता है।

७—धराभ्रम में पृथ्वी के दैनिक भ्रमण का विचार किया गया है।

८—ग्रहणकरण में इस पर विचार किया गया है कि ग्रहणों का गणित कैसे करना चाहिए।

९—गोलीय रेखागणित।

१०—यूक्लिड की ६ठवीं, ११वीं और १२वीं पुस्तकों का संस्कृत में श्लोकबद्ध अनुवाद।

११—गणक-तरंगिणी में भारतीय ज्योतिषियों की जीवनी और उनकी पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय है, जिसकी चर्चा यहाँ कई जगहों पर आयी है। यह शक १८१२ में लिखी गयी थी।

ये सब ग्रंथ संस्कृत में हैं। सुधाकरजी की संस्कृत टीका के ग्रंथ ये हैं—

१—यंत्रराज पर प्रतिभाबोधक टीका, शक १७९५।

२—भास्कराचार्य की लीलावती पर सोपपत्तिक टीका, शक १८००।

३—भास्कराचार्य के बीजगणित की सोपपत्तिक टीका, शक १८१०।

४—भास्कराचार्य के करण-कुतूहल की वासनाविभूषण टीका, शक १८०३।

५—वराहमिहिर की पंचसिद्धान्तिका पर पंचसिद्धान्तिकाप्रकाश टीका, शक १८१० में, जो डाक्टर थीबो की अंग्रेजी टीका और भूमिका के साथ शक १८११ में प्रकाशित हुई थी।

अंश के अन्तर के स्थानो तथा बम्बई और कलकत्ता के वर्ष के प्रतिदिन के सूर्योदय का समय दिया गया है। चौदहवी मे नर्मदोत्तर भारत में व्यवहार किये जाने वाले ११६९ ई० से १९४० ई० तक के सवत्सरचक्र की सारणी है। पद्रहवीं मे आरभ से लेकर १४२१ हिजरी सनो के समानार्थक ईसवी सन और उन महीनो के नाम, जिनमें हिजरी वर्ष आरभ होता है, दिये गये है। सोलहवी में अर्वाचीन चाद्र गणना के अनुसार स्पष्ट तिथि निकालने के कोष्ठक है। सत्रहवी में सूर्य, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और राहु को स्पष्ट करने के कोष्ठक है। अठारहवी में उपर्युक्त ग्रहो की स्पष्ट स्थिति दस-दस दिन के अतर पर सन १८४० से १९१९ ई० तक की बतायी गयी है, जो जन्मपत्र मिलाने वालो के लिए बहुत ही उपयोगी है। उन्नीसवी में घडी और पल के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे तथा बीसवी में घटा और मिनट के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे लिखे गये है। एक्कीसवी में नवमाशो का (प्रत्येक नक्षत्र के एक-एक चरण का) मान बताया गया है। बाईसवी में कलियुग के आरभ से किसी दिन तक के दिनो की सख्या (अहर्गण) जानने के कोष्ठक है। अत में एक दृष्टि-सारणी है, जिससे तिथियो की स्पष्ट गणना मौखिक ही की जा सकती है।

यह ग्रथ ज्योतिष के विद्यार्थियो, इतिहासज्ञो, पुरातत्त्व के अन्वेषको और अदालतो के लिए अत्यत उपयोगी है। इसके विद्वान लेखक का देहावसान अभी हाल ही में हुआ है।

छोटेलाल

लाला छोटेलाल का जन्म कब और कहाँ हुआ था, यह नही ज्ञात हो सका। आप एक सुयोग्य इजीनियर थे। कुछ वर्ष हुए आप का देहावसान हो गया। वेदाग-ज्योतिष पर आपने अँग्रेजी में एक सुन्दर भाष्य लिखा है, जो १९०६-७ के हिंदुस्तान रिव्यू में प्रकाशित हुआ था। इसकी चर्चा वेदाग-ज्योतिष के सबध में आ चुकी है। उससे प्रकट होता है कि आपने भारतीय ज्योतिष का अच्छा अध्ययन किया था और इसके साथ यूनान, मिस्र, बैबिलन आदि के प्राचीन ज्योतिष का भी तुलनात्मक अध्ययन किया था। आपने वेदाग-ज्योतिष के कई श्लोको का अर्थ बडी विद्वत्तापूर्वक लगाया था और अपना उपनाम बार्हस्पत्य रक्खा था।

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी का जन्म सवत १९२० (शक १७८५) में अयोध्या से ८ कोस पच्छिम 'पण्डितपुरी' गाँव में हुआ था। आप जयपुर के सस्कृत पाठशाला

के अध्यक्ष बहुत दिन तक रहे और अपनी विद्वत्ता के लिए महामहोपाध्याय की पदवी प्राप्त की।

भास्कराचार्य की लीलावती और बीजगणित पर आप ने संस्कृत और हिंदी में उपपत्ति सहित टीका और सिद्धांतशिरोमणि का प्राचीन और नवीन विचारों से पूर्ण उपपत्तिन्दुशेखर नामक भाष्य लिखा है। चापीय त्रिकोणमिति, क्षेत्रमिति, सूर्य-सिद्धांतसमीक्षा, अधिमास परीक्षा, पचांग तत्त्व नामक पुस्तकें और अन्य पुस्तिकाएँ भी आप ने लिखी हैं। जैमिनिपद्यामृत नामक जैमिनि सूत्र का पद्यानुवाद सरस छन्दों में उदाहरण सहित किया है। ज्योतिष के अतिरिक्त दर्शन और साहित्य में भी आप ने ग्रंथ लिखे हैं। आप का देहावसान संवत १९९४ में हुआ।

चुलैट

दीनानाथ शास्त्री चुलैट एक अद्वितीय ज्योतिषी है, और वेदों के मर्मज्ञ भी। आप ने वेदों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि बहुत-से मंत्रों में गणित और ज्योतिष संबंधी बातें हैं। आप ने कई ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें वेदकाल-निर्णय और प्रभाकर-सिद्धांत मुख्य हैं।

वेदकाल-निर्णय—इस ग्रंथ में लेखक ने यह सिद्ध किया है कि वेदों का समय केवल छ या साढे छ हजार वर्ष ही पुराना नहीं है, जैसा लोकमान्य तिलक ने अपने 'ओरायन' ग्रंथ में सिद्ध किया है, वरन् इसके कुछ मंत्रों से सूचित होता है कि वे लाखों वर्ष पुराने हैं। लोकमान्य तिलक ने तो भगवद्गीता के 'मासाना मार्गशीर्षोऽहम्' से केवल यही सिद्ध किया, और बडी कठिनता से, कि मार्गशीर्ष पहला मास इसलिए समझा जाता था कि छ हजार वर्ष पहले इसी नाम के नक्षत्र में, अर्थात मृगशिरा नक्षत्र में, वसंत विषुव था। परंतु चुलैटजी ने इसके प्रतिकूल यह सिद्ध किया है कि मृगशिरा नक्षत्र में नहीं वरन् मार्गशीर्ष मास में ही वसंत का आरंभ होता था, अर्थात उस समय अनुराधा या ज्येष्ठा नक्षत्र में वसंत विषुव था, इस प्रकार वह समय १८००० वर्ष पुराना था।

इसी प्रकार कात्यायन श्रौतसूत्र के भाष्यकार कर्काचार्य के उद्धरणों से आप सिद्ध करते हैं कि उनके समय में वसंत-विषुव चित्रा और स्वाती नक्षत्रों के बीच में था, इसलिए कर्काचार्य का समय चौदह, पन्द्रह हजार वर्ष प्राचीन है। इस पुस्तक में आप भूगर्भविज्ञान के अनेक चित्र देकर यह सिद्ध करते हैं कि संस्कृत साहित्य में वर्णित जलप्रलयों और भूगर्भविज्ञान के विविध कालों में बड़ा सामंजस्य है। पुस्तक

अदभुत है और हिंदी भाषा में लिखी गयी है। भाषा सरल और शुद्ध नही है, इसलिए पढने वालो को कुछ कठिनाई पडती है।

प्रभाकर-सिद्धात—इसमे ग्रहलाघव के मूलाको मे अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर बीजसस्कार देकर ग्रहो की शुद्ध गणना करने की रीति बहुत सुगम कर दी गयी है। इसी के आधार पर शास्त्री जी पहले प्रभाकर पचाग बनाते थे, जिसमे ऐसा उपाय किया गया था कि वह सारे भारतवर्ष में काम दे सके। इसी के आधार पर बनाया हुआ भारतविजय पचाग इन्दौर के ज्योतिष सम्मेलन के बाद, जिसका आयोजन आप-ने ही इन्दौर सरकार की सहायता से किया था, सवत १९९५ मे प्रकाशित हुआ था। इस पचाग मे भी इतनी सामग्री भर दी गयी है कि यह एक उपयोगी ग्रथ-सा हो गया है।

इन्दौर के ज्योतिष सम्मेलन की रिपोर्ट भी एक वृहदाकार ग्रथ है, जिसमे दृग्गणना के पक्ष और विपक्ष दोनो ओर की बातें रखकर सिद्ध किया गया है कि दृग्गणना ही उचित है।

आप्ते

गोविन्द सदाशिव आप्ते का जन्म शक १७९२ (१८७० ई०) में महाराष्ट्र प्रात मे हुआ था। आप गणित के प्रोफेसर रहे है और अवकाश ग्रहण करने पर उज्जैन की वेधशाला के प्रधान बहुत दिन तक रहे। आप का देहावसान १९४१ मे हुआ। आप ने शक १८५१ (१९२९ ई०) में सर्वानन्द-करण नामक ज्योतिष ग्रथ की रचना प्रसिद्ध ग्रहलाघव के ढग पर की है। इसके पूर्व खड मे कुल ११ अधिकार है, जिनमे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की गणना करने की सरल रीतियाँ बतायी गयी है। चद्रमा मे केवल पाँच सस्कार करने को कहा गया है। इस ग्रथ की विशेषता यह है कि इससे ग्रहो के जो भोगाश आते है वे सायन होते है। सायन से निरयण बनाने के लिए अयनाश घटा देना पडता है, जो अपने-अपने मत के अनुसार लगाया जा सकता है। इसलिए यह पुस्तक प्रत्येक पक्ष के लिए उपयोगी हो सकती है। इस सबध में आप केतकर के चित्रापक्ष के प्रबल विरोधी है। आप ने एक अँग्रेजी पुस्तिका मे कई प्रमाणो से सिद्ध किया है कि भारतीय राशिचक्र का आदि स्थान वह नही है जहाँ से चित्रा तारा ठीक १८० अश पर है वरन् रेवती नक्षत्र का जीटा पिसियम तारा है, जिसके अनुसार अयनाश लगभग ४ अश कम ठहरता है। आप के इस मत के समर्थक महाराष्ट्र में कई विद्वान है। इस पक्ष के अनुसार वहाँ कई पचाग भी बनते है। चित्रा और रेवती पक्ष के पचागो में मलमास के सबध में बहुत भिन्नता

रहती है जिसके कारण पर्वों और त्योहारो के निश्चय करने में वहां बहुत गडबडी रहती है ।

इस खड मे एक उपकरणाधिकार है, जिसमे चद्रमा की सूक्ष्मगति निकालने की भी रीति वतायी गयी है । इससे चद्रग्रहण और सूर्यग्रहण का समय सूक्ष्मतापूर्वक वताया जा सकता है ।

सूर्यातिक्रमणाधिकार मे यह बताया गया है कि वुध और शुक्र सूर्य के विम्ब का वेध कब करते है । इस खड के परिशिष्ट मे आप ने दस-दस कलाओ की भुजज्या, कोटिज्या और स्पर्शज्या की सारणी दी है, जिसमे त्रिज्या १०००० मानी गयी है ।

उत्तर खड में आपने पहले दशमलव भिन्नो के गुणा-भाग की रीति वता कर नवीन रीति से ग्रहगणना करने की विधि लिखी है, जिसमे त्रिकोणमिति, और गोलीय त्रिकोणमिति के अनुसार गणना करने की रीति वतायी गयी है, क्योंकि यह उन्ही को प्रिय हो सकता है जो उच्च गणित का ज्ञान रखते है । इसलिए इस खड का नाम प्रौढ-रजन रक्खा गया है ।

इसमे सौरार्यतिथि-साधन, सूक्ष्म नक्षत्रानयन, तिथि-तारिखानयन और उपपत्तिकथन नामक अध्याय बहुत महत्त्व के है ।

यह ग्रथ उज्जैन में लिखा गया था, जिसकी वेधशाला का आपने फिर से उद्धार किया है ।

उपसंहार

भारतीय ज्योतिप और ज्योतिपियो के सवध मे यहाँ तक जो कुछ लिखा गया है उसकी वहुत-सी सामग्री महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी की गणक-तरगिणी और आचार्य शकर बालकृष्ण दीक्षित के मराठी भारतीय ज्योतिपशास्त्र से ली गयी है । इनमें आये हुए कुछ ज्योतिपियो और उनके ग्रथो की चर्चा विस्तार-भय से छोड दी गयी थी, जो नीचे की तालिका मे दी जाती है .

ग्रथकर्ता	ग्रथ	रचनाकाल शक	विशेप
वलभद्र	?	८८८ ?	कोई ग्रथ उपलब्ध नही है । भटोत्पल और पृथूदक स्वामी की टीकाओ में कुछ श्लोको के अवतरण है ।

ग्रथकर्ता	ग्रथ	रचनाकाल शक	विशेष
वरुण	खण्डखाद्यक की टीका	९६२ ?	इस टीका में ९६२ शक के उदाहरण हैं ।
दशबल	करणकमल मार्तण्ड	९८०	राजमृगाकोन्त वीजसस्कृत ब्रह्म-सिद्धात के अनुसार करणग्रथ।
राजा ?	करणोत्तम	१०३८	इसकी चर्चा महादेव कृत श्रीपति रत्नमाला मे कई वार आयी है और जातक-सार में भी एक श्लोक है ।
सोमेश्वर	अभिलषितार्थ-चितामणि	१०५१	अनेक विषयो का सग्रह जिसमें ज्योतिष का भी विषय है और १०५१ शक के क्षेपक है ।
भूलोकमल्ल	मानसोल्लास	?	
माधव	सिद्धातचूडामणि	?	भास्कराचार्य के सिद्धात शिरोमणि मे उल्लेख है परतु पुस्तक का अब पता नही है ।
ब्रह्मा	वीजगणित	?	भास्कराचार्य के वीजगणित में उल्लेख है परतु पुस्तक का पता नही है ।
विष्णुदैवज्ञ	वीजगणित	?	
अनन्त दैवज्ञ	ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के छदश्चित्युत्तर और वृहज्जातक पर टीकाएँ	?	शक ११४४ के एक शिलालेख से ज्ञात।
भोजराज ?	आदित्यप्रताप-सिद्धात	?	श्रीपति की रत्नमाला की महादेवी टीका (शक ११८५) में इसके कुछ वाक्यो का उल्लेख है और आफ्रेच सूची में इसके कर्ता भोजराज कहे गये है ।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
चक्रेश्वर	ग्रहसिद्धि ?	?	
नार्मद	सूर्य-सिद्धांत की टीका या इसके आधार पर कोई ग्रंथ जिसका पता नहीं है	१३०० के लगभग	ये पद्मनाभ के पिता थे।
सूर्यदेव यज्व	आर्यभटीय प्रकाशिका टीका	?	ईसवी की १२वीं शताब्दी (दत्त और सिंह)।
रामचन्द्र	कल्पद्रुम करण	?	करण-कुतूहल की १४८२ शक की टीका में यह नाम है।
अनन्त	महादेवकृत कामधेनु की टीका, जातक पद्धति	१४८० ?	
रघुनाथ	सुबोधमंजरी (करण)	१४८४	ब्रह्मपक्षीय ग्रंथ
कृपाराम	वास्तुचंद्रिका	शक १४२० के बाद	बीजगणित, मकरंद, यंत्रचिंतामणि पर उदाहरण सहित टीका तथा सर्वार्थ चिंतामणि, पंचपक्षी और मुहूर्त-तत्त्व की टीका भी लिखी है।
रघुनाथ शर्मा	मणिप्रदीप (करण)	१४८७	सिद्धांतशिरोमणि और सूर्य-सिद्धांत के आधार पर।
नारायण	मुहूर्तमार्तण्ड और इस पर टीका, मार्तण्ड वल्लभ	१४९३-९४	मुहूर्त ग्रंथ।
दिनकर	खेटकसिद्धि, चंद्रार्की	१५००	ब्रह्मसिद्धान्त के अनुसार करणग्रंथ।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
गंगाधर	ग्रहलाघव की मनोरमा टीका	१५०८	
श्रीनाथ	ग्रहचिंतामणि (करण)	१५१२	
गणेश	जातकालंकार	१५३५	जातक पर प्रसिद्ध पुस्तक।
नाग या नागेश	ग्रहप्रबोध	१५४१	दृग्गणितानुसार करणग्रंथ।
विट्ठल दीक्षित	मुहूर्तकल्पद्रुम और उसकी टीका, मुहूर्त कल्पद्रुम मंजरी	१५४९ ?	मुहूर्तग्रंथ।
नारायण	केशवपद्धति टीका, नारायणीबीजम्		ये मुनीश्वर के गुरु थे, जो शक १५२५ में पैदा हुए थे। दूसरी पुस्तक बीजगणित पर है।
शिवदैवज्ञ	अनन्तसुधारसविवृति (गणित), मुहूर्तचूडामणि (मुहूर्त)	जन्मकाल १५२८	कृष्ण दैवज्ञ के पुत्र और नृसिंहदैवज्ञ के अनुज।
बलभद्रमिश्र	हायनरत्न (ताजिक ग्रंथ)	१५६४	रामदैवज्ञ के शिष्य, शाहजहां के द्वितीय पुत्र शाहसुजा के आश्रित।
सोमदैवज्ञ	कल्पलता	१५६४	संवत्सर के राजा, मंत्री, आदि, के शुभाशुभ फल पर विचार।
रंगनाथ	सिद्धांत-शिरोमणि की मितभाषिणी टीका, सिद्धांत-चूडामणि	१५६२	ये नृसिंहदैवज्ञ के पुत्र और कमलाकर के भाई थे। सूर्यसिद्धांत के अनुसार करण-ग्रंथ की रचना की थी।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
कृष्ण	करणकौस्तुभ	१५७५	महाराज शिवाजी के समय में ग्रहकौतुक, ग्रहलाघव तथा निज वेध के अनुसार करण ग्रंथ बनाया।
यादव	ग्रहप्रबोध पर उदाहरण सहित टीका	१५८५	
रत्नकंठ	पंचांगकौतुक	१५८०	खण्डखाद्यक के अनुसार पंचांग बनाने के लिए उपयोगी।
विट्ठण	वार्षिक तंत्र	१६००से पूर्व	वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार।
जटाधर	फत्तेशाह-प्रकाश	१६२६	श्रीनगर के चंद्रवंशी राजा के नाम पर।
दादाभट	किरणावलि	१६४१	सूर्यसिद्धांत की टीका।
शंकर	वैष्णव करण	१६८८	भास्कराचार्य के अनुसार।
परमानन्द-पाठक	प्रश्नमाणिक्यमाला	१६७०	जन्मकुंडली के भावों का शुभाशुभ फल विचार है। यह काशिराज बलवन्तसिंह के प्रधान गणक थे।
भुला	ब्रह्मसिद्धांतसार	१७०३	ब्रह्मपक्षानुसार सिद्धान्तग्रंथ, सिद्धान्त-शिरोमणि और ग्रहलाघव के आधार पर लिखा गया।
मथुरानाथ शुक्ल	१—यंत्रराज घटना, २—नक्षत्र स्थापन विधि	१७०४	राजा शिवप्रसाद, सितारे-हिंद, के बाबा डालचंद के आश्रित थे।

ग्रथकर्ता	ग्रथ	रचनाकाल शक	विशेप
चिंतामणि दीक्षित	१—सूर्यसिद्धात की सारणी २—गोलानन्द (वेधग्रथ)	 १७१३	
राघव (खाडेकर)	१—खेटकृति २—पचागार्क ३—पद्धति-चद्रिका	१७३२ १७३९ १७४०	पहली पुस्तक ग्रहलाघव के अनुमार है, दूसरी सिद्धात ग्रथ है और तीसरी जातक पर है ।
शिवदैवज्ञ	तिथिपारिजात	१७३७	ग्रहलाघव के अनुमार।
यज्ञेश्वर (बाबा जोशी रोडे)	१—ज्योति पुराण-विरोध-मर्दन २—यत्रराज-वासना टीका ३—गोलानद की अनुभावकी टीका ४—मणिकाति टीका ५—प्रश्नोत्तरमालिका	१७५९ १७६४	
विनायक पाडुरग	वैनायिकी ताजिकग्रथ		
खानापूरकर	सिद्धातसार		

भारतीय ज्योतिष का प्रसार (अरब देशो मे)

ब्रह्मगुप्त के वर्णन में यह चर्चा की गयी थी कि इनके दोनो ग्रथो का अनुवाद अरबी में कराया गया था । यहाँ इस सबध में कुछ विशेप बातें बतायी जाती है । रोम के प्रोफेसर सी० ए० नलिनो 'इन्साक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स' अध्याय १२, ९५ में लिखते है,[१] 'ज्योतिष के प्रथम वैज्ञानिक मूलाकों के लिए मुसलमान

[१] जी० आर० के की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी, पृष्ठ ४९ की पाद-टिप्पणी ।

भारतवर्ष के ऋणी हैं। ७७१ ई० में भारतवर्ष की एक विद्वन्मंडली बगदाद गयी; इसके एक विद्वान ने अरबों को ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत का परिचय कराया, जिसे ब्रह्मगुप्त ने संस्कृत में ६२८ ई० में लिखा था। इस ग्रंथ से (जिसे अरब वाले अल सिंदहिंद कहते थे) इब्राहीम इब्न हबीब-अल-फजारी ने मूलांकों और गणना की रीतियों को लेकर अपने ज्योतिष की सारणियाँ मुसलमानी चांद्र वर्ष के अनुसार तैयार कीं। प्रायः इसी काल में याकूब इब्न तारीक ने अपनी 'तरकीब-अल-अफलाक' (खगोल की रचना) लिखी, जो ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के मूलांकों और रीतियों पर तथा उन ध्रुवांकों पर जिन्हें एक दूसरे भारतीय वैज्ञानिक ने एक दूसरी मंडली के साथ १६१ हिजरी (७७७-७७८ ई०) में बगदाद आकर दिया था, आश्रित था। ऐसा जान पड़ता है कि प्रायः उसी समय खण्डखाद्यक का भी अरबी में 'अलअर्कंद' के नाम से अनुवाद किया गया, जिसे ६६५ ई० में ब्रह्मगुप्त ने ही रचा था परंतु जिसके मूलांक उसके पहले ग्रंथ के मूलांकों से भिन्न थे। अलफजारी और याकूब इब्न तारीक के समकालीन अबुल हसन अल अहवाजी ने विद्वान भारतवासियों के शायद मौखिक शिक्षाओं से प्रभावित होकर 'अल अर्जभद' (अर्थात आर्यभट) के अनुसार ग्रहगतियों का परिचय अरबों को कराया। मुसलिम संसार में हिजरी की पंचम शताब्दी के पूर्वार्द्ध (ईस्वी की ११वीं शताब्दी) के अन्त तक इन भारतीय ग्रंथों के बहुत से अनुगामी हुए। कुछ ज्योतिषियों ने (जैसे, हबश, अननैरीजी, इब्न अस्सभ ने) भारतीय मूलांकों और प्रणालियों के आधार पर भी पुस्तकें लिखीं और यूनानी-अरबी मूलांकों के अनुसार भी। दूसरों ने (जैसे मुहम्मद इब्न इसहाक अस सरहसी, अबुलवफा, अलबीरूनी, अलहजीनी ने) उन मूलांकों को ग्रहण किया, जिनकी गणना मुसलमान ज्योतिषियों ने भारतीय ज्योतिषियों के अनुकरण में कृत्रिम दीर्घ युगों के अनुसार की थी।"

इस संबंध में अलबीरूनी ने भारत पर अपने अरबी ग्रंथ में जिसका अंग्रेजी भाषान्तर बर्लिन के प्रोफेसर एडवर्ड सी० साचो ने किया है और जिसका हिंदी अनुवाद इंडियन प्रेस ने प्रकाशित किया है, बहुत कुछ लिखा है। यह विद्वान ९७३ ई० में खीवा में उत्पन्न हुआ था और महमूद गजनवी के साथ भारतवर्ष में आकर यहाँ सन १०१७ ई० से लेकर १०३१ ई० तक रहा था और संस्कृत भाषा सीख कर उसके साहित्य की बहुत-सी, विशेषकर ज्योतिष की, बातें जान कर अरबी में पूर्वोक्त ग्रंथ का निर्माण किया था। वह लिखता है कि पूर्वकालीन मुसलिम ज्योतिषियों ने आर्यभट और अन्य सिद्धांत ग्रंथों की चर्चा की है। आर्यभट का एक अरबी रूपान्तर आर्जबहु था जो और बिगड़ कर 'अज्जभर' हो गया। अलबीरूनी लिखता है कि 'सिंद-हिंद' नाम की अरबी पुस्तक को हिंदू लोग सिद्धांत कहते हैं।

यूरोप और अमेरिका मे

ईसा की १७वी शताब्दी के अन्त मे यूरोप मे भारतीय ज्योतिष की चर्चा आरभ हुई, जिसमें लाप्लास बेली, प्लेफेयर, डीलाम्बर, सर विलियम जोन्स, जान बेंटली, आदि ने भाग लिया। १६९१ ई० में फ्रास के प्रसिद्ध ज्योतिषी जियोवनी डोमिनिको कैसिनी ने डी० ला० लूबियर के आसाम से लाये हुए कुछ ज्योतिष सबधी नियमो का प्रकाशन किया और उसके थोडी ही देर बाद 'हिस्टोरिया रेग्नी ग्रीकोरम बैक्ट्रीयानी' के परिशिष्ट में टी० एस० बेयर ने हिंदू ज्योतिष की चर्चा की, जिसमें लियोनार्ड ऑयलर का एक निबध ३६५ दिन ६ घटा १२ मिनट और ३० सेकेंड के हिंदू वर्ष पर था। १७६९ ई० में लीवेंटिल नामक ज्योतिषी पांडीचेरी में शुक्र की वेधयुति देखने के लिए आया और १७७२ ई० में उसने 'त्रिवेलोर' सारणी और हिंदू ज्योतिष पर एक लेख प्रकाशित किया। इस प्रकाशन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पडा कि जीन सिलवेन बेली (पेरिस का पहला मेयर और नेशनल एसेंबली का सभापति, जिसने १७३६ ई० में जन्म लिया और जो १७९३ ई० मे शूली पर चढाया गया) इस ओर आकर्षित हो गया और १७८७ ई० में भारतीय ज्योतिष पर एक ग्रथ[1] प्रकाशित किया। बेली की पुस्तक से लाप्लास और प्लेफेयर का ध्यान इस ओर बहुत आकर्षित हुआ। प्लेफेयर ने १७९२ ई० में एशियाटिक सोसाइटी में व्याख्यान देकर सुझाया कि हिंदू गणित और ज्योतिष का नियमपूर्वक अनुशीलन किया जाय।

इसी बीच में एस० डेविस ने १७८९ ई० में सूर्य-सिद्धात का विश्लेषण किया और लिखा कि इस ग्रथ मे रविमार्ग की परम क्रांति २४ अश है, जो आकाश के प्रत्यक्ष अवलोकन से जानी गयी होगी और यह अवलोकन २०५० ई० पूर्व किया गया होगा। सर विलियम जोन्स ने इसका समर्थन किया और कहा कि भारतीय नक्षत्र-चक्र अरब या यूनान से नही लिया गया। १७९९ ई० में जॉन बेंटली ने बेली की इस बात का विरोध किया कि भारतीय ज्योतिष बहुत प्राचीन है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सूर्य-सिद्धात १०९१ ई० के आसपास का बनाया हुआ है। इस सबध में कोलब्रुक, डीलाम्बर और बेंटली ने १८२५ ई० तक अच्छा वादविवाद किया। परतु इसके साथ-साथ भारतीय ज्योतिष का अनुशीलन भी होता रहा। बगाल के सेनानायक सर डबल्यू० बार्कर ने काशी के जयसिंह-निर्मित मान-मन्दिर के यत्रो का अध्ययन किया और इसके कुछ बाद ही प्लेफेयर ने अपना सुझाव उपस्थित किया।

[1] ट्रेट डी ला ऐस्ट्रॉनोमी इडियन एट ओरियटल।

१७९९ ई० में हटर ने उज्जैन की वेधशाला का ब्योरेवार वर्णन लिखा। परन्तु भारतीय ज्योतिष के इतिहास का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेबर (१८६०-६८ ई०), व्हिटनी (१८५८) और थीवो (१८७७-१८८९) ने नीव डाली। वेबर ने वेदाग-ज्योतिष, व्हिटनी ने सूर्य-सिद्धात का अनुवाद अपनी आलोचनात्मक टिप्पणियो के साथ और थीवो ने वराहमिहिर की पच-सिद्धातिका अपने अनुवाद और टिप्पणियो के साथ प्रकाशित किया। इनके साथ साचौ ने अलबीरूनी के भारत विषयक ग्रथ का अनुवाद किया और यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मध्यकालीन हिंदू ज्योतिष और यूनानी ज्योतिष में घनिष्ठ सबध है। इसलिए प्राच्यविद्या विशारदो का ध्यान वैदिक और वेदोत्तर कालो की ओर गया। १८९३ ई० मे जैकोबी और तिलक ने अलग-अलग सुझाव उपस्थित किये कि वैदिक ग्रथो मे ऐसे प्रमाण मिलते है जिनसे सिद्ध होता है कि वैदिक-काल बहुत प्राचीन है, परतु व्हिटनी, ओल्डेनबर्ग और थीवो ने इसका घोर विरोध किया[1]।

बरजेस का कार्य

इस वादविवाद के बीच मे रेवरेंड ई० बरजेस ने सन १८६० ई० मे सूर्य-सिद्धात का प्रसिद्ध अनुवाद अमेरिकन ओरिएटल सोसायटी के जरनल मे प्रकाशित किया, जिसमें भारतीय ज्योतिष के पक्ष और विपक्ष मे कहने वालो का वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया और दिखाया गया कि भारतीय ज्योतिष का महत्त्व क्या है। इस सुन्दर अनुवाद का दूसरा सस्करण कलकत्ता विश्वविद्यालय के फणीन्द्रलाल गगोली द्वारा सम्पादित होकर प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की भूमिका के साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा सन १९३५ ई० में प्रकाशित हुआ।

भारतीय ज्योतिष का एक दूसरा ग्रथ डब्लू ब्रेनैंड ने सन १८९६ ई० मे लिखा था, जिसके प्रथम भाग के १३ अध्यायो मे हिंदू ज्योतिष पर यूनान, मिस्र, चीन और अरब के ज्योतिष के साथ तुलनात्मक विचार किया गया है और कई पौराणिक कथाओ का, जैसे शिव और दुर्गा का विवाह, सती की मृत्यु आदि का, सबध ज्योतिषिक घटनाओ से बताया गया है और दूसरे भाग मे सूर्य-सिद्धात का अँग्रेजी मे अनुवाद किया गया है। इस विद्वान का विश्वास था कि यूरोपवालो ने हिंदुओ को इनके साहित्य और गणितीय विज्ञान के लिए उतना श्रेय नही दिया जितने के वे अधिकारी है। यह ग्रथ लदन में १८९६ ई० में मुद्रित और प्रकाशित हुआ था। ब्रेनैंड महाशय बगाल में बहुत दिन तक किसी कालेज के अध्यक्ष रह चुके थे।

[1] जी० आर० के की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी की भूमिका का साराश।

इन ग्रथो के होते हुए भी जी० आर० के महाशय अपने विविध लेखो और हिंदू एस्ट्रॉनोमी में हिंदू ज्योतिष के सबध में कुछ बातें ऐसी लिखते है जिससे सिद्ध होता है कि ये भी भारतीय ज्योतिष को उतना श्रेय नही देना चाहते थे जितने का वह अधिकारी है। इसका उत्तर प्रयाग के श्री नलिनविहारी मित्र ने १९१५-१६ के माडर्न रिव्यू में और कलकत्ता विश्वविद्यालय के कई आचार्यों ने, विशेषकर डाक्टर विभूतिभूषण दत्त और प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त ने, भारतीय और यूनानी ज्योतिष का तुलनात्मक अध्ययन करके दिया है।

आधुनिक खोज

वर्तमान समय मे ज्योतिष मे बहुत लगन के साथ खोज जारी है। सारी दुनिया के ज्योतिषी इसी में लगे है कि कोई नवीन बात निकालें। वह बात केवल एक देश के लिए ही नही, सारे ससार के लिए नवीन होनी चाहिए। ज्योतिषियो की खोज के परिणाम ज्योतिष और वैज्ञानिक पत्रिकाओ में छपते रहते है और प्रति वर्ष कई हजार पृष्ठ नवीन खोजो के विवरण में छपते है। हमारे भारतीय ज्योतिषी भी इसमें सहयोग देते है, यद्यपि बडी वेधशालाओं के अभाव से और प्रोत्साहन न मिलने से पिछले वर्षो में अन्य देशो से भारत पिछडा हुआ था। तो भी डॉक्टर मेघनाथ साहा, प्रोफेसर एस० चद्रशेखर, इत्यादि ने ऐसा काम किया है कि विदेश में भी भारत का नाम है। यो तो वे सभी जो ज्योतिष विषय लेकर विश्वविद्यालयो से डॉक्टर की उपाधि लेते है, थोडी-बहुत खोज अवश्य करते है और ज्योतिष में नवीन बातो का पता लगाते है। उदाहरणत, इन पक्तियो के लेखक ने भी इस पर खोज की कि तारो की निजी गति और उनकी चमक में क्या सबध रहता है। उत्तर प्रदेश के डॉक्टर चद्रिकाप्रसाद, डॉक्टर हरिकेशव सेन और डॉक्टर रामसिंह कुशवाहा ने, तथा अन्य कुछ व्यक्तियो ने भी, ज्योतिष में खोज की है और कर रहे है।

हमारे प्राचीन ज्योतिषी इसी में जुटे रहते थे कि सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्थितियो की गणना कैसे की जाय। परतु यह विषय अब प्राय पूर्ण समझा जाता है। इस विषय पर सारे ससार में इने-गिने ही व्यक्ति काम करते होगे। इन दिनो अधिकतर खोज तारो के सबध में हो रही है और गत पचास वर्षों में आश्चर्य-जनक ज्ञानवृद्धि हुई है। उदाहरणत, अब यह प्रमाणित हो गया है कि हमारे तारो की दुनिया का विस्तार सीमित है और हमारी ही जैसी तारो की बस्तियाँ असख्य है। वे एक दूसरे से दूर-दूर पर बसी है। अब यह चेष्टा की जा रही है कि पता चले

कि तारो की भीतरी सरचना कैसी है[1]। इसमे भी बहुत-कुछ सफलता मिली है। इस खोज मे इन दिनो ज्योतिष का भौतिक विज्ञान और रसायन से बहुत घना सबध हो गया है। एक प्रकार से ऐटम बम के बनने का सूत्रपात वहा से होता है जब से ज्योतिषियो ने इस प्रसग को उठाया कि सूर्य ठढा क्यो नही हो जाता, और यदि वह आग का गोला है तो अब तक जलकर भस्म क्यो नही हो गया।

ज्योतिष के अब कई विभाग हो गये है। वर्णनात्मक ज्योतिष मे आकाशीय पिडो के रूप-रग का अध्ययन किया जाता है, उनकी गति अथवा रासायनिक तथा भौतिक सरचना से विशेष सरोकार नही रहता। गतिक ज्योतिष मे इस विषय का अध्ययन किया जाता है कि आकाशीय पिडो के परस्पर आकर्षण से उनमे क्या गति उत्पन्न होगी। सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्थितियाँ बता सकने का काम इसी विभाग के आधार पर सभव है। भौतिक ज्योतिष मे आकाशीय पिडो की रासायनिक तथा भौतिक सरचना पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भौतिक विज्ञान की उस शाखा को ज्योतिष-भौतिकी कहते है, जिसमे तारो आदि की सरचना का अध्ययन किया जाता है। इसमे और भौतिक ज्योतिष में कोई भेद नही है। गोलीय ज्योतिष में आकाशीय पिडो की स्थितियो पर विशेष ध्यान दिया जाता है—उनकी स्थितियाँ कैसे नापी जायँ, इन नापो मे क्या-क्या त्रुटियाँ रह जाती है, और वे कैसे दूर की जाती है, ग्रहणादि क्यों और कब लगते है, और समय कैसे नापा जा सकता है, इन सब विषयो पर ज्योतिष की इसी शाखा मे विचार किया जाता है।

[1] देखें. गोरखप्रसाद कृत 'नीहारिकाएँ' (बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना)।

अध्याय १८

भारतीय पंचांग

पचाग

पूर्वगामी अध्यायों को पूर्णतया समझने के लिए यह आवश्यक है कि पाठक को भारतीय पचाग का कुछ ज्ञान हो। इसलिए इस अध्याय में इस विषय को सरल रीति से समझा दिया गया है।

पचाग बताता है कि वर्ष का आरभ कब हुआ, किसी दिन क्या दिनाक (तारीख) है, इत्यादि। पचाग के सबध में प्राचीन समय के लोगो को कठिनाई इसलिए पडती थी कि लोग वर्षमान—वर्ष की लबाई—ठीक-ठीक नही नाप पाते थे। फिर, तब और अब भी, एक कठिनाई इसलिए उत्पन्न होती है कि एक वर्ष में दिनो की सख्या, या चाद्र मासो की सख्या, कोई पूर्ण सख्या नही है, और न एक चाद्र मास में ही दिनो की सख्या कोई पूर्ण-सख्या है।

यदि उद्देश्य यह हो कि वर्षारभ सदा एक ही ऋतु में हो तो वर्षमान ठीक-ठीक सायन होना चाहिए, अन्यथा गडबडी पडेगी। उदाहरणत, मुसलिम धार्मिक वर्ष ठीक १२ चाद्र मासो के बराबर होता है, अर्थात उसका मान, मोटे हिसाब से २९½ × १२, अर्थात ३५४ दिन, होता है। परतु सायन वर्ष ३६५.२४२२ दिन का होता है। इसलिए किसी एक वर्ष मे यदि मुसलिम वर्ष का आरभ उस दिन से हुआ जब वसत में दिन रात बराबर होते है, अर्थात वसत विषुव पर, तो आगामी वसत विषुव से लगभग ३६५¼—३५४, अर्थात ११¼, दिन पहले ही मुसलिम वर्ष का अत हो जायगा और नया वर्ष आरभ हो जायगा। अगली बार नया वर्ष वसत विषुव आने के २२½ दिन पहले ही आरभ हो जायगा, और इसी प्रकार आगे भी। यही कारण है कि मोहर्रम या रमज़ान का महीना किसी भी ऋतु में पड सकता है। यदि किसी वर्ष रमज़ान जाडे में है तो कुछ ही वर्ष बाद वह बरसात में

पडेगा। अधिक समय वीतने पर वह गर्मी के ऋतु में पडेगा और लगभग ३६५$\frac{1}{4}$ — ११$\frac{1}{4}$ वर्षों के बाद वह फिर जाडे मे पडेगा।

भारतीय पंचांग

सस्कृत मे पचाग का नाम इसलिए पडा है कि इसमे पाँच वस्तुएँ बतायी जाती है (१) तिथि (जो दिनाक अर्थात तारीख का काम करती है), (२) वार, अर्थात कोई दिन रविवार, सोमवार, . मे से कौन-सा दिन है, (३) नक्षत्र (जो बताता है कि चद्रमा तारो के किस समूह मे है), (४) योग (जो बताता है कि सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का योग क्या है), और (५) करण (जो तिथि का आधा होता है)।

पूर्वोक्त पाँच बातो के अतिरिक्त हिंदी पचागो मे साधारणत यह भी दिया रहता है कि अँग्रेजी दिनाक (तारीख) क्या है, मुसलिम तारीख क्या है, दिनमान क्या है (अर्थात सूर्योदय से सूर्यास्त तक कितना समय लगेगा), चद्रमा का उदय और अस्त किन-किन समयो पर होगा, चुने हुए दिनो पर आकाश में ग्रहो की क्या स्थितियाँ रहेंगी और इनके अतिरिक्त फलित ज्योतिष की बहुत-सी बातें दी रहती है। नीचे हम तिथि आदि को अधिक ब्योरे के साथ समझायेंगे।

तिथि और वार

चद्रमा और सूर्य के भोगाशो के अतर से तिथि का निर्णय होता है, जब यह अतर 0° और 12° के बीच रहता है तो तिथि को प्रतिपदा कहते है, अतर के 12° और 24° के बीच रहने पर तिथि को द्वितीया कहते है, इसी प्रकार तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और चतुर्दशी होती है। आगामी तिथि अमावस्या या पूर्णिमा होती है। इस प्रकार एक चाद्र मास में ३० तिथियाँ होती है। परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथि दिन या रात के किसी भी समय बदल सकती है। इसलिए पचाग मे लिखा रहता है कि अमुक तिथि का अत अमुक समय होगा। पचागो में समय की एकाई साधारणतः १ घटी होती है (जो २४ घटे के एक दिन के $\frac{1}{60}$ के बराबर होती है)। घटी के ६०वें भाग को पल और पल के ६०वें भाग को विपल कहते है। पचागो में समय साधारणत सूर्योदय से नापा जाता है। उदाहरणत, यदि किसी विशेष तिथि (जैसे पचमी) के सम्मुख समय ४ घटी ५१ पल लिखा है तो इस का अर्थ है कि पचमी का अत उस दिन सूर्योदय के ४ घटी ५१ पल बाद हुआ।

लौकिक कार्यों के लिए सूर्योदय के क्षण की तिथि, उस क्षण से लेकर आगामी सूर्योदय तक, बदली नहीं जाती है। इस प्रकार, ऊपर बताये गये उदाहरण में उस

दिन, जिसमे पचमी का अत सूर्योदय के लगभग २ घटे वाद हुआ, महाजन सारे दिन और सारी रात को पचमी मानेगा, यद्यपि उस दिन सूर्योदय के लगभग २ घटे वाद मे ज्योतिष की परिभाषा के अनुसार पष्ठी का आरभ हो गया था।

ऊपर की परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथियो की अवधि (घटो या घटीयो मे नाप) वरावर नही होती, क्योकि चद्रमा और सूर्य के भोगाश समान अर्घ (दर) से नही वढते। वे तो केपलर के नियमो के अनुसार वढते है और ऊपर मे कई विक्षोभ भी होते है। इसलिए तिथि की अवधि एक सूर्योदय मे आगामी सूर्योदय तक के समय से छोटा भी हो सकता है, वडा भी। इसलिए ऐसा हो सकता है कि कोई तिथि इतनी छोटी हो कि किसी दिन सूर्योदय के थोडे ही समय वाद उसके आरभ होने पर आगामी सूर्योदय के पहले ही उसका अत हो जाय। इस से स्पष्ट है कि वैध (लौकिक) तिथियां क्रमागत नही होती। उदाहरणत, पचाग के अनुसार वुध, १३ दिसवर १९५०, को चतुर्थी का अत सूर्योदय के १ घटी के ५ पल वाद हुआ और आगामी तिथि का (अर्थात पचमी का) अत आगामी सूर्योदय होने के ५ घटी २५ पल पहले ही हो गया। इस प्रकार वुध के दिन सूर्योदय के समय ज्यौतिष तिथि चतुर्थी थी और अगले दिन वृहस्पति को सूर्योदय के समय तिथि पष्ठी थी। इसलिए वुध को सारे दिन वैध तिथि चतुर्थी थी और वृहस्पति को सारे दिन पष्ठी थी। इस प्रकार इस पक्ष (अर्धमास) में पचमी किसी दिन थी ही नही।

फिर, ऐसा भी हो सकता है कि कोई तिथि २४ घटे से अधिक की हो और वह किसी दिन सूर्योदय के थोडे समय पहले आरभ हो और आगामी दिन के सूर्योदय के कुछ समय वाद उसका अत हो। इसका परिणाम यह होगा कि दो क्रमागत दिनो में एक ही तिथि रहेगी। उदाहरणत, सोमवार, १९ दिसवर १९५०, और मगल, २० दिसबर १९५०, दोनो ही दिन एकादशी थी। परतु चाद्र मास की अवधि लगभग २९½ दिन है और उतने में ३० तिथियां है। इसलिए अधिकतर तिथियो का क्षय ही होता है, पुनरावृत्ति कम होती है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वैध तिथि सूर्योदय के समय पर भी निर्भर है, और इसलिए ऐसा हो सकता है, और होना भी है, कि विभिन्न स्थानो में एक ही दिन विभिन्न तिथियां हो। परतु एक क्षेत्र के लोग साधारणत किसी केंद्रीय स्थान का पचाग मानते है और ठीक अपने स्थान का पचाग आवश्यक नही समझते। इसलिए व्यवहार में वस्तुत कठिनाई नही उत्पन्न होती।

अको से तिथि वताने की दो पद्धतियां है, या तो अमावस्या के वाद से आरभ करके उनकी सख्या १ से ३० तक दिखायी जाती है, या, पक्ष वता कर और

अमावस्या या पूर्णिमा के बाद से आरंभ करके, १ से १५ तक। पक्ष आधे चांद्र माम को कहते हैं। एक पक्ष कृष्ण पक्ष कहलाता है जिसमें सध्या के समय चद्रमा का उदय नहीं हुआ रहता, दूसरा शुक्ल पक्ष कहलाता है।

वार सात होते हैं रविवार, सोमवार, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवार। मगल, बुध, बृहस्पति और शुक्र को क्रमानुसार मगलवार, बुधवार, इत्यादि भी कहते हैं। रविवार को आदित्यवार (या हिंदी मे एतवार) भी कहते हैं।

नक्षत्र

रविमार्ग को २७ बराबर भागो मे बाँट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहते हैं। चद्रमा का तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७$\frac{1}{3}$ दिन मे लगता है। इसलिए चद्रमा (वस्तुत चद्रमा से रविमार्ग पर डाले गये लब का पाद) एक नक्षत्र मे लगभग १ दिन तक रहता है। नक्षत्रो के नाम अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि है। अश्विनी का प्रथम विंदु मेष के प्रथम विंदु को ही माना जाता है (नीचे भी देखो)।

जब कहा जाता है कि इस क्षण अश्विनी नक्षत्र है तो साधारणत अर्थ यही रहता है कि चद्रमा अश्विनी नामक नक्षत्र मे है। परतु कभी-कभी यह अर्थ भी होता है कि सूर्य अश्विनी मे है। उदाहरणार्थ, जब कहा जाता है कि कृष्ण भगवान का जन्म रोहिणी नक्षत्र मे हुआ था तो अभिप्राय यह है कि उस समय चद्रमा रोहिणी नक्षत्र मे था, परतु जब कहा जाता है कि वर्षा का आरभ आर्द्रा नक्षत्र मे होता है तो अभिप्राय यह होता है कि वर्षा का आरभ तब होता है जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र मे रहता है। नक्षत्र का अत कब होगा (अर्थात चद्रमा उस नक्षत्र को छोड कर आगामी नक्षत्र मे कब जायगा) यह पचागो में दिया रहता है।

नक्षत्र का एक अर्थ तारा भी है, कुछ तारो के समूह को भी नक्षत्र कहते हैं, विशेषकर तारो के उन छोटे-छोटे समूहो को जो चद्रमा के मार्ग मे पडते हैं। ये समूह तारामडलो से छोटे हैं और इनके वे ही नाम हैं जो ऊपर रविमार्ग के खडो के लिए बताये गये हैं, अर्थात अश्विनी, भरणी, आदि। ऐसा जान पडता है कि अत्यत प्राचीन समय मे अश्विनी, भरणी आदि से तारो के समूह ही समझे जाते थे और आँख से देख कर पता लगाया जाता था कि चद्रमा किस नक्षत्र मे, अर्थात किस तारका-पुज में है। पीछे गणना की सुविधा के लिए नक्षत्र को रविमार्ग का ठीक सत्ताईसवाँ भाग मान लिया गया।

इति० १८

योग और करण

सूर्य और चद्रमा के भोगाशो के योगफल से योग ज्ञात किया जाता है। योगफल को सख्याओ मे न बताना पडे इस अभिप्राय से यह मान लिया गया है कि २७ योग होते है और उनके नाम रख दिये गये है, जैसे विष्कभ, प्रीति, इत्यादि। योग ज्ञात करने के लिए सूर्य और चद्रमा के भोगाशो के योगफल को कलाओ मे व्यजित करना चाहिए और तब उसे ८०० से भाग देना चाहिए। भजनफल के पूर्ण सख्या मे एक जोड देने से योग की क्रमसख्या प्राप्त होगी। उदाहरणत, यदि भजनफल १ ३७२ मिले तो योग की क्रमसख्या २ होगी और इसलिए उस क्षण प्रीति नामक योग होगा। पचागो मे योगो के अतिम क्षण दिये रहते है। योग देने का उद्देश्य यही जान पडता है कि तिथि और नक्षत्र की गडबडी की जाँच हो सके।

करण—आधी तिथि का एक करण होता है। उदाहरणत, प्रतिपदा के पहले आधे को बालव नामक करण माना जाता है, दूसरे आधे को कौलव, इत्यादि। परतु ३० × २ नाम होने के बदले नाम थोडे ही है और करणो का क्रम जानने के लिए एक नियम है, जिसे यहाँ देना आवश्यक नही जान पडता।

लग्न

किसी क्षण क्या लग्न है यह इससे पता चलता है कि उस क्षण रविमार्ग का कौन-सा खड पूर्वीय क्षितिज को पार कर रहा है। लग्न के उल्लेख से वही उद्देश्य सिद्ध होता है जो आधुनिक प्रणाली में घटा बताने से।

मास

पूर्वोक्त पाँच बातें प्रतिदिन (और कुछ तो दिन मे कई बार) बदलती है। इसलिए किसी घटना का समय बताने के लिए इनके अतिरिक्त अवश्य ही मास और वर्ष भी बताना पडता है। हिंदू पचागो में चाद्र मासो का उपयोग होता है और नियमानुसार समय-समय पर एक वर्ष में १२ के बदले १३ मास रख कर ऐसा प्रबंध किया जाता है कि महीनो और ऋतुओ का सबध टूटने नही पाता। तेरहवे मास, अर्थात अधिमास, के जोडने के लिए वैज्ञानिक नियम बने है। यूरोप के लोगो के महीनो का अमावस्या-पूर्णिमा से कोई सबध नही रह गया है और उन्होने महीनो में इच्छानुसार दिन रखकर १२ महीनो को एक वर्ष के बराबर बना लिया है। मुसलिम वर्ष, जैसा हम देख चुके है, १२ चाद्र मासो का होता है, जिससे मास और ऋतु में कोई अचल सबध नही रहता। यह उनका धार्मिक वर्ष है। लगान वसूल करने के लिए मुसलमान

बादशाहो को एक अन्य वर्ष का प्रयोग करना पडता था जिसे वे फसली (=फसल वाला) वर्ष कहते थे और जिस की लबाई लगभग सायन थी।

वर्ष मे चाद्र मासो के नाम, और यदि अधिमास लगे तो उसका भी नाम, हिंदू पचाग में सौर महीनो के नाम पर पडते है। एक विशेष बिंदु से आरभ करके रविमार्ग को १२ भागो मे बाँटा गया है, जिनमे से प्रत्येक को एक राशि कहते है। जब तक सूर्य प्रथम राशि मे रहता है उतने समय तक प्रथम सौर मास रहता है, दूसरी राशि मे जब तक सूर्य रहता है उतने समय तक द्वितीय सौर मास रहता है, इत्यादि।

इस प्रकार ज्योतिष सौर मास, जिसकी परिभाषा ऊपर दी गयी है, दिन-रात के किसी क्षण पर आरभ हो सकता है। सुविधा के लिए वैध (अर्थात लौकिक व्यवहार वाला) सौर मास ज्योतिष सौर मास के प्रथम सूर्योदय से आरभ होता है।

राशि नामो के अर्थ वे ही है जो यूरोपीय नामो के। वे यो है

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुभ, मीन।

उस क्षण को सक्राति कहते है जब सूर्य एक राशि से आगामी राशि मे जाता रहता है। मेष-सक्राति उस क्षण को कहते है जब सूर्य मेष राशि मे प्रवेश करता है। ज्योतिष सौर मास एक सक्राति से आगामी सक्राति तक चलता है।

सौर महीनो के वे ही नाम है जो राशियो के है, परतु विकल्प से उनके वे नाम भी है जो चाद्र मासो के है। उदाहरणत , मेष सौर मास को वैशाख सौर मास भी कहते है।

सौर मासो में दिनाक १ से २९, ३०, ३१, या ३२ तक हो सकते है, क्योकि सूर्य के न्यूनाधिक कोणीय वेग के कारण सौर मासो की लबाइयाँ विभिन्न होती है। बगाल, उडीसा और मद्रास के कई जिलो मे सौर मास ही अधिक चलते है, परतु इन स्थानो मे भी धार्मिक कृत्य, त्यौहार और फलित ज्योतिष की गणनाएँ चाद्र तिथियो पर आश्रित है।

ज्योतिष के काम के लिए उत्तर भारत मे चाद्र मास पूर्णिमा के क्षण के ठीक बाद से आरभ होकर आगामी पूर्णिमा के क्षण तक (और उस क्षण को सम्मिलित करके) चलता है। परतु लौकिक कार्यों के लिए चाद्र मास ज्योतिष चाद्र मास के प्रथम सूर्योदय से आरभ होता है। दक्षिण भारत मे चाद्र मासो की गणना अमावस्या से अमावस्या तक होती है, यही प्रथा पहले उत्तर मे भी चलती थी। अब केवल शुक्ल पक्ष मे उत्तर और दक्षिण के महीनो मे एकता रहती है। कृष्ण पक्ष मे उत्तर भारत मे चाद्र मास का नाम दक्षिण की तुलना मे एक मास आगे बढा रहता है।

चाद्र मासो का नाम २७ नक्षत्रो मे से चुने हुए १२ नक्षत्रों पर पड़ा है। ये १२ नक्षत्र इस प्रकार चुने गये है कि वे यथासभव बराबर-बराबर कोणीय दूरी पर रहें और उनमे कोई चमकीला तारा रहे। महीने का नाम उस तारे या नक्षत्र पर पड जाता है जहाँ चद्रमा के रहने पर उस मास पूर्णिमा होती है। उदाहरणत, उस मास को चैत्र कहते है जिसमें पूर्णिमा तब होती है जब चद्रमा चित्रा (प्रथम कन्या, ऐल्फा वर्जिनिस) के पास रहता है। चैत्र को हिंदी मे चैत कहते है।

अधिमास का लगना सौर और चाद्र मासो के सबध पर आश्रित है। इसे समझने के लिए चाद्र और सौर मासो की लबाइयो पर ध्यान देना चाहिए

हम जानते है कि एक वर्ष में लगभग ३६५$\frac{1}{4}$ दिन होते है। इसलिए एक सौर मास इसका बारहवाँ भाग, अर्थात लगभग ३० दिन और १०$\frac{1}{2}$ घटे का होता है। यह चाद्र मास (२९$\frac{1}{2}$ दिन) से अधिक है। इसलिए बहुधा ऐसा होगा कि एक ही सौर मास मे दो अमावस्याएँ पडेंगी। ऐसे अवसरो पर दो क्रमागत चाद्र मासो को एक ही नाम दे दिया जाता है। उस चाद्र मास को (अमावस्या से अमावस्या तक के समय को) अधिमास (या मलमास) कहा जाता है जिसमें सक्राति नहीं होती। इस प्रकार उस वर्ष १३ महीने होगे। स्पष्ट है कि चाद्र मास वस्तुत सौर मासो के आधीन होते है और अधिमासो का नियम अपने-आप चाद्र मासो और ऋतुओ का सबध बनाये रखता है, यदि अतर पडता है तो अधिक-से-अधिक १५ दिन इधर या १५ दिन उधर[1]।

सूर्य विभिन्न राशियो को बराबर समयो में नही पार करता। कुछ सौर महीने २९$\frac{1}{2}$ दिन के चाद्र महीने से छोटे होते है। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस छोटे सौर मास मे कोई अमावस्या नही पडती। ऐसे अवसर पर एक महीना पडता ही नही, परतु ऐसा विरले अवसरो पर ही होता है।

वर्ष

समय की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एकाई वर्ष है। आप्टेकृत अँग्रेज़ी-सस्कृत कोष में वर्ष के अँग्रेज़ी शब्द के लिए वर्ष, सवत्सर, वत्सर, अब्द, हायन, समा, शरद और सवत ये शब्द दिये है, और इन सब शब्दो का सबध ऋतुओ से है। वर्ष और वर्षा का सबध तो स्पष्ट है ही, सवतसर का अर्थ है वह आवर्तकाल जिसमे सब ऋतुएँ

[1]यहाँ यह मान लिया गया है कि सौर मास स्वय ऋतुओ के साथ चलते है, अर्थात वर्ष का मान ठीक सायन है।

एक वार आ जायँ, इत्यादि। प्रत्यक्ष है कि भारत में प्राचीन काल मे ही वर्ष का अर्थ सायन वर्ष समझा जाता है। इसका प्रमाण इससे भी मिलता है कि वर्ष को दो भागो मे वाँटा जाता था, एक वह जिसमे सूर्य उत्तर जाता है (उत्तरायण) और दूसरा वह जिसमे सूर्य दक्षिण जाता है (दक्षिणायन)।

परतु हमारे प्राचीनतम ज्योतिषी अयन (विषुव-चलन) को नहीं जानते थे। वाद वाले ज्योतिषियो मे यह निर्विवाद नही था कि वसत विषुव एक मध्यक स्थिति के इधर-उधर दोलन करता है या वरावर एक ओर चलता रहता है। वात यह है कि गतिविज्ञान का उनका ज्ञान इतना अधिक नही था कि वे निश्चयात्मक रूप मे जान सके कि वसत विषुव सदा एक दिशा मे चलता रहेगा। परिणाम यह हुआ कि भारतीय ज्योतिषी नाक्षत्र और सायन वर्षो में वहुत समय तक भेद नही मानते थे, और यद्यपि वे सायन वर्ष का मान जानना चाहते थे, उन्होने नाक्षत्र वर्ष का मान नाप पाया। सूर्य-सिद्धात के अनुसार एक वर्ष ३६५ दिन ६ घटे १२ मिनट ३६ ६५ सेकड का होता है। परतु आधुनिक नापो के अनुसार सायन वर्ष की नाप इससे लगभग २४ मिनट छोटी है। सूर्य-सिद्धात और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष में कुल ३ मिनट का अतर है।

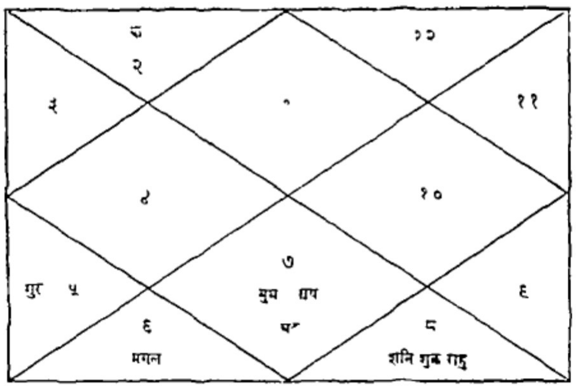
दुर्भाग्य की वात है कि आज के भारतीय पचागकार एकमत नहीं है। उनमे से रूढि को न मानने वालो ने नाक्षत्र और सायन वर्षो के लिए आधुनिक मानो को काम में लाना आरभ कर दिया है, परतु रूढिवादी पचागकार नाक्षत्र वर्ष का प्रयोग करते है और प्राचीन ग्रथो मे से किसी एक के मान को ठीक समझते है। इसके अतिरिक्त मतभेद की एक वात और भी है, मेष के प्रथम विंदु के लिए भी झगडा है। भारत की केंद्रीय सरकार ने पचाग-सशोधन के लिए एक समिति वनायी थी। उसने हाल मे (१९५५ मे) अपना निश्चय सरकार के सम्मुख उपस्थित किया है। यदि सरकार, पचागकार, और सारे भारत की जनता इस समिति की वात स्वीकार करे तो वहुत अच्छा होगा। जनता के दैनिक जीवन मे पचाग का इतना घनिष्ठ सवध है कि वर्तमान व्यवहार मे कोई तीव्र विभिन्नता जनता ग्रहण नही करेगी। पचाग-सशोधन समिति ने इस पर ध्यान रक्खा है।

इस सवध में स्मरण रखना चाहिए कि यदि हम सायन वर्ष को नही अपनायेंगे तो महीनो के सापेक्ष ऋतुओं में अतर वढता चला जायगा और कुछ समय मे वडा अनर्थ हो जायगा। आज-कल सावन भादो वर्षा के लिए प्रसिद्ध है, परन्तु यदि हम सूर्य-सिद्धांत के ही वर्षमान का प्रयोग कुछ हजार वर्षो तक करते चले जायगे तो उन महीनो में जिन्हे हम सावन और भादो कहेंगे कडाके का जाडा पड़ेगा। कालिदास के समय से आज २५ दिन का अतर ऋतुओं में पड़ गया है। जैसी ऋतु कालिदास के समय मे कुआर के महीने के प्रथम पचीस दिनो मे रहती थी वैसी अब भादो के

अतिम पचीस दिनो में रहती है, दूसरे शब्दो मे जिस महीने को ऋतु के अनुसार हमें कुआर कहना चाहिए उसे हम वपमान की अशुद्धि के कारण भादो कहते हैं। वेदाग-ज्योतिष के समय से तो लगभग ४४ दिन का अतर पड गया है।

कुडली

कुडली में, एक विशेप रूप से वारह घर (कोष्ठ) वना कर, सूर्य, चद्रमा और पाँच प्राचीन ग्रह तथा चद्रकक्षा के पातो (राहु और केतु) की स्थितियाँ, किसी विशेप क्षण पर, विशेषकर किसी व्यक्ति के जन्म के क्षण पर, दिखायी जाती हैं। कुडली के वारह घर वारह राशियो को निरूपित करते हैं। ऊपरी पक्ति के वीच वाले घर मे उस राशि का क्रमाक लिखा जाता है जो अभीष्ट क्षण पर लग्न था, अर्थात पूर्वीय क्षितिज को काट रहा था। इसके वाद अन्य घरो में क्रमानुसार अन्य राशियो की सख्या लिख दी जाती है (चित्र देखो)। इस प्रकार प्रत्येक घर अव उस राशि को निरूपित करता है जिसकी सख्या उस घर में लिखी है (अवश्य ही, मेप को प्रथम राशि माना जाता है)। अव जिस राशि में जो ग्रह उस क्षण आकाश में था कुडली के उसी घर में उसका नाम लिख दिया जाता है।



नूतन वर्ष २०१२ विक्रमी के आदिक्षण की कुडली।

('जन्मभूमि' नामक खगोलसिद्ध निरयन कार्तिकी पचाग के अनुसार)

कुडलियाँ फलित ज्योतिष में भविष्य वताने के काम में आती है, परतु गणितज्ञो और इतिहासज्ञो के लिए भी वे महत्त्वपूर्ण है, क्योकि कुडली में दी गयी ग्रहो और सूर्य

आदि की स्थितियो मे उस क्षण के दिनाक और समय का पता चल सकता है जिनके लिए कुडली बनायी गयी थी[1]।

भारतीय पचाग-पद्धति वैज्ञानिक सिद्धातो पर आश्रित है और इनके अनुसार चाद्र मास और वर्षारभ दोनो ऋतु के अनुसार चलते है। एक दोष इसमे यह अवश्य है कि ज्योतिष न जानने वाली जनता स्वय दिनाको की गणना नही कर सकती, परतु मध्यकालीन दिनाको की सत्यता की जांच मे यह अवगुण वस्तुत महान गुण सिद्ध हुआ है। यह खेद की बात है कि सारा भारत एक ही पचाग नही मानता, परतु इस बात का सुधार करने के लिए उपाय किया जा रहा है।

भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति

काउसिल ऑव सायटिफिक ऐड इडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली से प्रकाशित, भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति की रिपोर्ट अब जनता भी खरीद सकती है। इसमे लगभग ३०० पृष्ठ है और आकार बहुत बडा है। आरभ मे श्री जवाहरलाल नेहरू का सदेश है। भूमिका मे सभापति डॉक्टर मेघनाथ साहा ने बताया है कि पचाग और सरकार मे क्या सबध है, फिर पचाग की मोटी-मोटी बाते बता कर समिति की विविध बैठको का विवरण है। इन समिति के परामर्शो से सब सदस्य सहमत थे, केवल एक सदस्य, डाक्टर दफ्तरी, एक बात मे नही सहमत हुए उनका विचार था कि उन धार्मिक त्योहारो की गणना सायन[2] नक्षत्रो से करनी चाहिए, जिनका सबध धर्मशास्त्रो के अनुसार नक्षत्रो मे है, उनकी गणना निरयन[3] नक्षत्रो से करना अनुचित होगा। परिशिष्ट ४ मे डाक्टर दफ्तरी का लिखा हुआ इस मतभेद का समर्थन छपा है। परिशिष्ट ५ मे उन पचागो की सूची है जो पचाग-सशोधन समिति की विज्ञप्ति के अनुसार सारे भारत से आये थे। परिशिष्ट ६ मे इन सब पचागो के कर्त्ताओ का वह उत्तर है जो उन्होने समिति की प्रश्नावली पाने पर भेजा था। इन उत्तरो से पता चलता है कि ३६ पचाग आधुनिक रीति से बनते है; शेष १५ प्राचीन रीति से। परिशिष्ट ७ मे उन सब व्यक्तियो के सुझावो का सारांश है जिन्होने समिति को पत्र लिखने का कष्ट उठाया था (समिति की ओर से सुझाओं की

[1] कभी-कभी दिनांक में तीन दिन का अंतर पड सकता है, क्योंकि चंद्रमा एक राशि से दूसरे में जाने में दो दिन से अधिक समय लेता है।

[2] अर्थात वसंत विषुव के साथ चलने वाले।

[3] अर्थात तारो के हिसाब से स्थिर।

माँग सब समाचार पत्रो मे छपी थी)। इसके बाद शक १८७६ से शक १८८० तक (१९५४ मार्च से १९५९ मार्च तक) के लिए आधुनिक पचाग है। इसके बाद त्यौहारो के लिए नियम विविध धर्मशास्त्रो या लोकाचारो के आधार पर बनाये गये है। साथ मे विविध प्रातो के लिए छुट्टियो की सूचियाँ भी सलग्न है।

यहाँ तक की सामग्री खड क और ख मे है। इसके बाद खड ग है जिसे डाक्टर मेघनाथ साहा और श्री निर्मलचद्र लहिरी ने मिलकर लिखा है। इसमे विविध देशो मे प्राचीनतम समय से आधुनिक समय तक पचाग का इतिहास दिया गया है।

समिति के परामर्श निम्नलिखित है

(१) वर्ष ३६५.२४२२ दिन का हो। इसका परिणाम यह होगा कि ऋतुओ के हिसाब से महीने भविष्य मे न खिसकेगे। जिन महीनो मे जैसा ऋतु आज रहता है वैसा भविष्य मे भी बना रहेगा। जो गड़बड़ी पड चुकी है उसे ठीक करने की चेष्टा नही की गयी है। वर्षमान का बदल जाना जनता को पता ही न चलेगा, क्योकि अतर बहुत सूक्ष्म है।

(२) भारतीय वर्ष का आरभ वसत-विषुव दिवस से (अर्थात २२ मार्च से) हो। सौर महीनो का उपयोग करने वाले प्रातो मे इससे विशेष कठिनाई न पडेगी, केवल एक वर्ष कुछ असुविधा होगी। उत्तर प्रदेश मे इन दिनो हिंदू वर्ष चैत से आरभ होता है, जो आगे-पीछे हटा करता है।

(३) वर्ष के दूसरे से लेकर छठे सौर महीनो मे ३१ दिन रहे, शेष मे ३० दिन, अधिवर्षो मे सातवे महीने मे भी ३१ दिन रहेगे। भारतीय प्रथा मे अधिवर्ष उसी वर्ष होगा जब यूरोपीय वर्ष मे अधिवर्ष (लीप इयर) होगा। यह बगाल आदि मे प्रचलित प्रथा के इतना निकट है कि वहाँ कोई कठिनाई न पडेगी।

(४) दिन का आरभ अर्ध-रात्रि से माना जाय।

(५) भारत सरकार का पचाग उज्जैन के अक्षाश और ग्रिनिच से ५½ घटा पूर्व देशातर के लिए बना करे।

(६) शक वर्षो का प्रयोग किया जाय।

भारतीय ज्योतिष संबंधी संस्कृत ग्रंथ

१. वेदांग-ज्योतिष—ग्रंथकार लगध महात्मा।

(क) मूल और संस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९०६।

(ख) मूल, अँग्रेजी अनुवाद और संस्कृत टीका, शामशास्त्री, मैसूर, १९३६।

२. सूर्य-सिद्धांत—ग्रंथकार अज्ञात।

(क) मूल और रंगनाथ कृत संस्कृत टीका, संपादक जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, १८९१।

(ख) मूल और संस्कृत टीका, कपिलेश्वर चौधरी, बनारस, १९४६।

(ग) मूल और संस्कृत टीका, सीताराम झा, बनारस १९४२।

(घ) मूल और संस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता १९२५।

(ङ) मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका, संपादक डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल, लखनऊ, १९५६।

(च) अँग्रेजी अनुवाद और टीका, बापूदेव शास्त्री, कलकत्ता १८६१।

(छ) अँग्रेजी अनुवाद और टीका, ई० बरजेस, पुनर्मुद्रित, कलकत्ता, १९३५

(ज) हिंदी अनुवाद और टीका, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, इलाहाबाद, १९४०।

३. आर्यभटीय—ग्रंथकार आर्यभट प्रथम (जन्म ४७६ ई०)

(क) मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका, संपादक एच० कर्न, लाइडेन (हॉलैंड), १८७४।

(ख) मूल और नीलकंठ कृत संस्कृत टीका, संपादक के० एस० शास्त्री, ट्रिवैण्ड्रम १९३०-३१

(ग) अँग्रेजी अनुवाद, पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९२७।

(घ) अँग्रेजी अनुवाद, डब्ल्यू० ई० क्लार्क, शिकागो, १९३०।

(ङ) हिंदी अनुवाद, उदय नारायन सिंह, इटावा, १९०६।

४. पंच-सिद्धांतिका—ग्रंथकार वराहमिहिर (लगभग ५५० ई०)।

मूल, संस्कृत टीका और अँग्रेजी अनुवाद, जी० थीबो और सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८८९।

इति० १९

५ **ग्रहचार-निवधन**—ग्रथकार हरिदत्त ।
के० वी० शर्मा द्वारा सपादित, मद्रास, १९५४ ।

६ **महाभास्करीय**—ग्रथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ।
मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४५ ।

७ **लघुभास्करीय**—ग्रथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ।
मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४६ ।

८ **ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत**—ग्रथकार ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) ।
मूल और स्वय ग्रथकार कृत सस्कृत टीका, सपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९०२ ।

९ **खडखाद्यक**—ग्रथकार ब्रह्मगुप्त (६६५ ई०) ।
(क) मूल और पृथूदक कृत सस्कृत टीका, सपादक पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९४१ ।
(ख) मूल और आमराज कृत सस्कृत टीका, सपादक वबुआ मिश्र, कलकत्ता, १९२५ ।
(ग) अँग्रेजी अनुवाद, पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९३४ ।

१० **शिष्यधीवृद्धिद**—ग्रथकार लल्ल ।
सुधाकर द्विवेदी द्वारा सपादित, बनारस, १८८६ ।

११ **लघुमानस**—ग्रथकार मजुल (९३२ ई०) ।
(क) मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, १९४४ ।
(ख) अँग्रेजी अनुवाद, एन० के० मजूमदार, कलकत्ता, १९५१ ।

१२ **महासिद्धात**—ग्रथकार आर्यभट द्वितीय (लगभग ९५० ई०) ।
मूल और स्वय ग्रथकार कृत सस्कृत टीका, सपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९१० ।

१३ **राजमृगाक**—ग्रथकार किंवदती के अनुसार राजा भोज (१०४२ ई०) ।
सपादक के० माधव कृष्ण शर्मा, आद्यार, १९४० ।

१४. **सिद्धात-शेखर**—ग्रथकार श्रीपति (लगभग १०३९ ई०) ।
सपादक वबुआ मिश्र सस्कृत टीका सहित, अशत मक्कि भट्ट कृत और अशत सपादक कृत, कलकत्ता, १९३२, १९४७ ।

१५. **करण-प्रकाश**—ग्रथकार ब्रह्मदेव (१०९२ ई०)।
मूल और सस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९९।

१६. **भास्वती**—ग्रथकार शतानद (१०९९ ई०)।
मूल और स्वय ग्रथकार कृत सस्कृत तथा हिंदी टीकाएँ, सपादक एम० पी० पाडे, बनारस, १९१७।

१७. **सिद्धात-शिरोमणि**—ग्रथकार भास्कर द्वितीय (११५० ई०)।
(क) बापू देव शास्त्री द्वारा सपादित और गणपति देव शास्त्री द्वारा संशोधित, बनारस, १९२९।
(ख) भाग १, मूल और गणेश दैवज्ञ कृत टीका, सपादक वी० डी० आप्टे, पूना, १९४३।
(ग) भाग २, अँग्रेजी अनुवाद, एल० विल्किनसन, कलकत्ता, १८६१।
(घ) हिंदी अनुवाद, गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, लखनऊ, भाग १ (१९२६), भाग २ (१९११)।

१८. **करण-कुतूहल**—ग्रथकार भास्कर द्वितीय (११५० ई०)।
मूल और सुमति हर्ष कृत टीका, सपादक माधव शास्त्री, बबई, १९०१।

१९. **यंत्रराज**—ग्रथकार महेंद्र सूरी।
मूल और मलयेन्दु सूरी कृत टीका, सपादक कृष्णशकर केशव वर्मा रैवक, बंबई, १९३६।

२०. **गोलदीपिका**—ग्रथकार परमेश्वर (१४३० ई०)।
संपादक टी० गणपति शास्त्री, ट्रिवैण्ड्रम, १९१६।

२१. **राशिगोलस्फुटानीति**—ग्रथकार अच्युत।
मूल और सस्कृत टीका, के० वी० शर्मा, आद्यार, १९५५।

२२. **सिद्धात-दर्पण**—ग्रथकार नीलकठ (लगभग १५०० ई०)।
मूल तथा अँग्रेजी अनुवाद, के० वी० शर्मा, आद्यार, १९५५।

२३. **ग्रहलाघव**—ग्रथकार गणेश दैवज्ञ (१९४५ ई०)।
मूल और मल्लारि कृत, विश्वनाथ कृत तथा अपनी टीकाएँ, सुधाकर द्विवेदी, बबई, १९२५।

२४. **सिद्धांत-सार्वभौम**—ग्रथकार मुनीश्वर।
संपादक, मुरलीधर ठाकुर, बनारस, १९३२, १९३५।

२५. **सिद्धांत-तत्व-विवेक**—ग्रथकार कमलाकर।
(क) सपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८८५।
(ख) मूल और सस्कृत टीका, भाग १, लखनऊ, १९२८, भाग २, भागलपुर, १९३५, भाग ३, बनारस, १९४१।

अन्य ग्रंथ

१. **गणक-तरगिनी**—सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९२।
२. **वृहत्संहिता**—वराहमिहिर कृत—मूल और भट्टोत्पल कृत सस्कृत टीका सहित, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९५, १८९७।
३. **सिद्धात-दर्पण**—चद्रशेखर सिंह कृत—योगेशचद्र राय।
४. **भारतीय ज्योतिषशास्त्र** (मराठी में)—शकर वालकृष्ण दीक्षित, पूना, १९३१।
५ **एनशेण्ट इडियन मैथिमैटिक्स ऐंड वेघ**—एल० वी० गुर्जर, पूना, १९४७।
६. **हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी**—जी० आर० के।
७ **ऐस्ट्रोनॉमिकल ऑबजरवेटरीज ऑफ जयसिह**—जी० आर० के।
८. **दि जयपुर ऑवजरवेटरी ऐंड इट्स बिल्डर**—आर० ई० गैरट।
९. **गाइड टु दि ऑवजरवेटरीज ऑफ जयसिह**—जी० आर० के (१९२०)।
१०. **अस्ट्रोनोमी, अस्ट्रोलोजी उड मथिमटीक** (जरमन में)—जी० थीबो।*

---

*सपूर्ण सूची डाक्टर कृपाशकर शुक्ल की थीसिस से सकलित।

अनुक्रमणिका